परम-आत्महित-सत्य-गीताञ्जली

[अहं (मैं-स्व-आत्मा) का विश्वरूप]

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

पुण्य-स्मरण

जिनवाणी महोत्सव श्रुतपंचमी पर्व के उपलक्ष्य में तथा मुनिसंघ दर्शन की यात्रा के उपलक्ष्य में...

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

श्रीमती प्रेरणा w/o नरेन्द्र शाह
प्राशु-सुचि, आशीष - सुरभि, ओन्शी, क्यान, आरना,
सागवाडा 09414280164

ग्रंथांक-295 प्रतियाँ - 500
संस्करण-प्रथम 2018 मूल्य - 101/-रू.

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418
(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

परम आत्महित सत्य है क्या! ?

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- क्या मिलिए...आत्मशक्ति...)

आत्मा को परमात्मा बनाना ही परमहित, परमात्मा ही है परमसत्य।
परमात्मा में ही है परमसुख, इसका लक्ष्य है परम लक्ष्य।।
इस हेतु पुरुषार्थ परम पुरुषार्थ, जिसका अपर नाम मोक्षमार्ग।
रत्नत्रयमय होता मोक्षमार्ग, रत्नत्रय युक्त आत्मा ही मोक्षमार्ग।। (1)

कालादि पंचलब्धि पाकर भव्य जीव, तत्वार्थ श्रद्धान से पाते सम्यक्त्व।
देव-शास्त्र-गुरु प्रति होता है श्रद्धान, स्व शुद्धात्मा प्रति निश्चय श्रद्धान।।
निश्चय से मानते स्वयं को शुद्ध-बुद्ध, व्यवहार से मानते कर्म आबद्ध।
कर्म नाशकर बनना शुद्ध-बुद्ध, ऐसा लक्ष्य निर्धारण है सम्यक्त्व।। (2)

सम्यक्त्व से होता ज्ञान भी सुज्ञान, संशय-विभ्रमादि रहित सुज्ञान।
श्रद्धा-प्रज्ञा से युक्त होता है लक्ष्य, इस हेतु पुरुषार्थ में लगाते चित्त।।
अष्टमद रिक्त होता है सम्यक्त्व, सप्त भय, व्यसन मुक्त।
अष्टगुण तथाहि अष्ट अंग सहित, ज्ञान वैराग्य शक्ति से युक्त।। (3)

भाव विशुद्धि से बढता पुरुषार्थ, दयादान सेवा परोपकार सहित।
अन्याय-अत्याचार-पापाचार रिक्त, देव-शास्त्र-गुरु सेवा रत।।
उक्त पुरुषार्थ से होता भाव विशुद्ध, ज्ञान-वैराग्य से होते संबद्ध।
संसार-शरीर-भोग से विरक्त, दोनों परिग्रह से होते विरक्त।। (4)

शिक्षा-दीक्षा पाकर बनते श्रमण, ध्यान-अध्ययन में होते लीन।
समता-शान्ति-निस्पृहता युक्त, आत्मविशुद्धि हेतु सतत प्रयत्न।।
जिससे (वे) आरोहण करते क्षपक श्रेणी, घाती कर्म क्षय से बनते केवली।
अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य-सम्पन्न, अठारह दोष रहित भगवान्।। (5)

विश्व को देते वे दिव्य संदेश, परम सुख प्राप्त करने का संदेश।
सात सौ अठारह भाषा में देते संदेश, निस्पक्ष-अनेकान्त सिद्धान्त युक्त।।
अघातीकर्म क्षय से वे बनते सिद्ध, शुद्ध-बुद्ध व आनन्द कन्द।
जन्म-जरा-मरण रहित अमूर्त, सच्चिदानन्दमय स्वयं पूर्ण।। (6)

यह अवस्था ही है परमसत्य, यहाँ ही मिलता है परमसुख (हित)।

भव्य जीवों का यह है परमलक्ष्य, 'कनक सूरी' का यह ही परम हित।। (7)

संदर्भ- आत्मा व्यवहार से पुद्गल कर्म आदि का कर्त्ता है, निश्चय से चेतन कर्म का कर्त्ता है और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि।।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स।।9।।

आत्मा व्यवहार से सुख दुःखरूप पुद्गल कर्मों को भोगता है और निश्चयनय से आत्मा चेतन स्वभाव को भोगता है।

जयसेनाचार्य ने टीका में इस विषय पर बल दिया है कि यदि द्रव्य कर्म के उदय से भी जीव भाव कर्म रूप से परिणमन नहीं करेगा तब प्राचीन द्रव्यकर्म उदय में आकर नष्ट हो जायेंगे तथा नवीन द्रव्य कर्म का बन्ध नहीं होगा जिसके कारण जीव को मोक्ष हो जायेगा। इसलिये मुमुक्षु को सर्व प्रयत्न से भाव कर्म (वैभाविक भाव) नहीं करना चाहिये। योगीन्दु देव ने कहा भी है-

भुंजतु विणिय कम्म-फलु जो तहिं राउण जाइ।
सोणवि बंधइ कम्मु पुणु संचिउ जेण विलाइ।।80।।

अपने बाँधे हुए कर्मों के फल को भोगता हुआ भी उस फल के भोगने में जो जीव राग-द्वेष को नहीं प्राप्त होता वह फिर कर्म को नहीं बाँधता। जिस कर्म बंधाभाव परिणाम से पहले बाँधे हुए कर्म भी नाश हो जाते हैं।

पुरुषार्थसिद्धि का स्वरूप

सर्व विवर्त्तोत्तीर्ण, यदा स चैतन्यमचलमाप्नोतिः,
भवति तदा कृतकृत्य, सम्यक् पुरुषार्थ-सिद्धिमापन्नः।।11।।पुरु.

When Jiva, having got rid of all illusion, attains everiasting consciousness, it then becomes one who has accomplished all that was to be accomplished, and is possessed of the success resulting from right exertion.

व्याख्या-भावानुवादः- जब वह आत्मा सर्व विकार रहित मोक्ष को प्राप्त कर लेता है तब वह सर्व कर्म रहित कृत-कृत्य अवस्था को प्राप्त कर लेता है। कैसी आत्मा उस सम्यक् पुरुषार्थ सिद्धि को प्राप्त करता है? सम्यक् शुभ पुरुषार्थ से सिद्धि को प्राप्त करता है। कैसा चैतन्य समस्त विकारों से परिभ्रमण से उत्तीर्ण होता है? समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव स्वरूप पंच परिवर्तन रूप अथवा देव, नारकी, तिर्यंच, मनुष्य रूप गतियों से रहित समस्त क्लेश समूह से उत्तीर्ण मोक्ष को प्राप्त होता

है। ऐसा वह कृतकृत्य शुद्ध चैतन्य होता है यह इसका भावार्थ है। चौरासी लक्ष विभाव, द्रव्य-व्यंजन-पर्याय, मति आदि विभावगुण-पर्याय इनका आत्यन्तिक वियोग ही मोक्ष है। वही कृतकृत्यापना है। विभाव-गुण एवं विभाव-पर्यायों से युक्त कृतकृत्यपना नहीं है।

परमात्मा की मोक्षावस्था

नित्यमपि निरूपलेपः, स्वरूप समवस्थितो निरूपघातः।
गगनमिव परम पुरुषः परमपदे स्फुरति विशदतमः।।223।।

Ever free from (karmic) contact, free from obstruction, fully absorbed in own's self, the highest supremely pure soul is effulgent, like the sky, in the highest stage.

व्याख्या-भावानुवादः- समस्त पुरुषार्थ सिद्धि को प्राप्त करने वाला परम पुरुष परम पद रूप सिद्ध पद में स्फुरायमान होता है। वह परम पुरुष सदा कर्मादि लेप से रहित, स्वस्थ्य रूप में स्थित, समस्त घात प्रतिघात बाधाओं से रहित गगन के समान लेप से रहित चिज्ज्योति रूप से सिद्ध पद में अतिशय रूप से स्फुरायमान होता है।

परमात्मा का स्वरूप

कृतकृत्यः परमपदे, परमात्मा सकल-विषय विरतात्मा।
परमानन्द-निमग्नो, ज्ञानमयो नन्दति सदैव।।224।।

Quite contented, all knowables being reflected in him, immersed in supreme bliss, the emodiment of knowledge, the Paramatma is eternally happy in the highest stage.

व्याख्या-भावानुवादः-परमपद स्वरूप प्रकृष्ट सिद्ध पद में वह परम पुरुष/शुद्धात्मा कृतकार्य होकर, सकल विषय से विरक्त होकर परमानंद में अर्थात् अनन्त सुख में लीन रहता है। वह परमात्मा पूर्णतया ज्ञानघन स्वरूप होकर मुक्त अवस्था में विराजमान होता है।

समीक्षा :- कर्मबन्ध से रहित होने के बाद जीव के सम्पूर्ण वैभाविक भाव नष्ट हो जाते हैं क्योंकि वैभाविक भाव के निमित्त भूत कारणों का अभाव हो जाता है। वैभाविक भाव के नष्ट होने पर स्वाभाविक भाव नष्ट नहीं होते परन्तु स्वाभाविक भाव पूर्ण शुद्ध रूप में प्रगट हो जाते हैं। तत्वार्थ सार में कहा भी है-

ज्ञानावरणहानाते केवलज्ञानशालिनः।

दर्शनावरणच्छेदादुद्यात्केवलदर्शनाः।।37।।
वेदनीयसमुच्छेदादव्याबाधत्वमाश्रिताः।
मोहनीयसमुच्छेदात्सम्यक्त्वचलं श्रिताः।।38।।
आयुः कर्मसमुच्छेदादवगाहनशालिन।
नामकर्मसमुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः।।39।।
गोत्रकर्मसमुच्छेदाऽगौरवलाघवाः।
अन्तरायसमुच्छेदादनन्तवीर्यमाश्रिताः।।40।।

वे सिद्ध भगवान ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान से सुशोभित रहते है, दर्शनावरण कर्म का क्षय होने से केवलदर्शन से सहित होते है, वेदनीय कर्म का क्षय होने से अव्यबाधत्वगुण को प्राप्त होते हैं, मोहनीय कर्म का विनाश होने से अविनाशी सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं, आयुकर्म का विच्छेद होने से अवगाहना को प्राप्त होते हैं, नामकर्मका उच्छेद होने से सूक्ष्मत्वगुण को प्राप्त हैं, गोत्रकर्म का विनाश होने से सदा अगुरुलघुगुण से सहित होते हैं और अन्तराय का नाश होने से अनन्त वीर्य को प्राप्त होते हैं।

तादात्म्यादुपयुक्तास्ते केवलज्ञानदर्शन।
सम्यक्त्वसिद्धतावस्था हेत्वभावाच्च निः क्रियाः।।43।।

वे सिद्ध भगवान् तादात्म्यसम्बन्ध होने के कारण केवलज्ञान और केवलदर्शन के विषय में सदा उपयुक्त रहते हैं तथा सम्यक्तव और सिद्धता अवस्था को प्राप्त हैं। हेतु का अभाव होने से वे निःक्रिया से रहित हैं।

सिद्धों के सुख का वर्णन

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः।। 45।।

सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अविनाशी, अव्याबाध तथा परमोत्कृष्ट है ऐसा परमऋषियों ने कहा है।

शरीर रहित सिद्धों के सुख किस प्रकार हो सकता है?

स्यादेतशरीरस्य जन्तोर्नष्टाष्टकर्मणः।
कथं भवति मुक्तस्य सुखमित्युतरं श्रृणु।। 46।।
लोके चतुर्ष्विहार्थेषु सुखशब्दः प्रयुज्यते।
विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एव च।। 47।।

सुखो वह्निः सुखो वायुर्विषयेष्विह कथ्यते।
दुःखाभावे च पुरुषः सुखितोऽस्मीति भाषते।। 48।।
पुण्यकर्मविपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम्।
कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम्।। 49।।

यदि कोई यह प्रश्न करे कि शरीर रहित एवं अष्टकर्मों को नष्ट करने वाले मुक्तजीव के सुख कैसे हो सकता है तो उसका उत्तर यह है, सुनो! इस लोक में विषय वेदना का अभाव, विपाक और मोक्ष इन चार अर्थों में सुख शब्द कहा जाता है। अग्नि सुख रूप है, वायु सुख रूप है, यहाँ विषय अर्थ में सुख शब्द कहा जाता है। दुःख का अभाव होने पर पुरुष कहता है कि मैं सुखी हूँ यहाँ वेदना के अभाव में सुखशब्द प्रयुक्त हुआ है। पुण्यकर्म के उदय से इन्द्रियों के इष्ट पदार्थों से सुख उत्पन्न हुआ है। यहाँ विपाक-कर्मोदय में सुखशब्द का प्रयोग है। और कर्मजन्यक्लेश से छुटकारा मिलने से मोक्ष में उत्कृष्ट सुख होता है। यहाँ मोक्ष अर्थ में सुख का प्रयोग है।

मुक्तजीवों का सुख सुषुप्त अवस्था के समान नहीं है।

सुषुप्तावस्थाया तुल्यां केचिदिच्छन्ति निर्वृतिम्।
तदयुक्तं क्रियावत्वात्सुखातिशयतस्तथा।। 50।।
श्रमक्लेममदव्याधिमदनेभ्यश्च संभवात्।
मोहोत्पत्तिर्विपाकाश्च दर्शनध्यस्य कर्मणः।। 51।।

कोई कहते हैं कि निर्वाण सुषुप्त अवस्था के तुल्य हैं परन्तु उनका वैसा कहना अयुक्त है- ठीक नहीं है क्योंकि मुक्तजीव क्रियावान् है जबकि सुषुप्तावस्था में कोई क्रिया नहीं होती तथा मुक्तजीव के सुख की अधिकता है जबकि सुषुप्त अवस्था में सुख का रञ्चमात्र भी अनुभव नहीं होता है। सुषुप्तावस्था की उत्पत्ति श्रम, खेद, नशा, बीमारी और कामसेवन से होती है तथा उसमें दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से मोह की उत्पत्ति होती रहती है जबकि मुक्त जीव के लिये यह सब सम्भव नहीं है।

मुक्तजीव का सुख निरूपम है

लोकेतत्सदृशो ह्यार्थः कृत्स्नेऽप्यन्यो न विद्यते।
उपमीयते तद्येन तस्मान्निरूपमं स्मृतम्।। 52।।
लिङ्गप्रसिद्धेः प्रामाण्यमनुमानोपमानयोः।
अलिङ्गं चाप्रसिद्धं यत्तेनानुपमं स्मृतम्।। 53।।

समस्त संसार में उसके समान अन्य पदार्थ नहीं है जिससे कि मुक्तजीवों के

सुख की उपमा दी जा सके, इसलिये वह निरूपम माना गया है। लिङ्ग अर्थात् हेतु से अनुमान में और प्रसिद्धि से उपमान में प्रामाणिकता आती है परन्तु मुक्तजीवों का सुख अलिङ्ग है - हेतु रहित है तथा अप्रसिद्ध है इसलिये वह अनुमान और उपमान प्रमाण का विषय न होकर अनुपम माना गया है।

अर्हन्त भगवान् की आज्ञा से मुक्तजीवों का सुख माना जाता है।

प्रत्यक्षं तभ्दगवतामर्हतां तैः प्रभाषितम्।
गृह्यतेऽस्तीत्यतः प्राज्ञैर्न च छद्मस्थपरीक्षया।। 54।।

मुक्त जीवों का वह सुख अर्हन्त भगवान् के प्रत्यक्ष है तथा उन्हीं के द्वारा उसका कथन किया गया है इसलिये 'वह है' इस तरह विद्वज्जनों के द्वारा स्वीकृत किया जाता है, अज्ञानी जीवों की परीक्षा से वह स्वीकृत नहीं किया जाता।

स्व-उपलब्धि ही सर्व उपलब्धि

आध्यात्म रहस्यवादी कविता

(स्व-आत्म सम्बोधन एवं मेरा अन्तिम लक्ष्य)
(चाल : कसमें वादे प्यार वफा सब बातें हैं...)

तू ही तेरा परम सत्य है - अन्य सब सहयोग है
तू ही तेरा आदि अन्त - मध्य शाश्वत/(सार्वभौम).सत्य है...(स्थायी/धत्ता)
जब से हैऽऽ ब्रह्माण्ड भी यह.... तब से तेरा भी अस्तित्वऽऽ
अनादि अनन्तऽऽशाश्वतिक यह.... तेरा भी हैऽऽ सह अस्तित्व
तू ही तेरा परम सत्य है....(1)....
तू तो चेतनऽऽ ज्ञानानन्दमय.... विश्व/(ब्रह्माण्ड) उभय रूप हैऽऽ
तेरे समान हीऽऽ अनन्त चेतन... और भी अचेतन रूप हैऽऽ
तू ही तेरा परम सत्य है....(2)....
अणु से लेकर ऽऽ निहारिका तक.... अनन्त अचेतन रूप हैऽऽ
निगोदिया से ऽऽ नित्यानन्दमय .... अनन्त चिन्मय रूप हैऽऽ
तू ही तेरा परम सत्य है....(3)....
तेरा अस्तित्व ऽऽ यदि न होता.... अन्य से (तेरा) क्या लाभ हैऽऽ
तुझे तू ही ऽऽ यदि न पाया/(मिला) तो.... अन्य लाभ क्या लाभ हैऽऽ

तू ही तेरा परम सत्य है....(4)....

यदि शरीर में ऽऽ तू न रहा तो .... शरीर जड़ का पिण्ड हैऽऽ
जलाओ गाढो ऽऽऽया फेंक दो.... तुझ से नहीं सम्बन्ध हैऽऽ
तू ही तेरा परम सत्य है....(5)....

ऐसा ही तेरा ऽऽ अस्तित्व कारण .... विश्व/(ब्रह्माण्ड) अस्तित्ववान हैऽऽ
अन्यथा स्व ऽऽ अस्तित्व बिन .... तेरे लिए सत्ता शून्य हैऽऽऽ
तू ही तेरा परम सत्य है....(6)....

तू है ज्ञाता ऽऽ ब्रह्माण्ड ज्ञेय .... ज्ञाता बिना न ज्ञेय हैऽऽऽ
ज्ञाता-ज्ञेय ऽऽ उभय सम्बन्ध .... ज्ञाता से ज्ञेय अनुबन्ध हैऽऽ
तू ही तेरा परम सत्य है....(7)....

यथा दीप ऽऽ स्व-पर प्रकाशी..... ज्योति से प्रकाशित द्रव्य हैऽऽ
द्रव्य से दीप ऽऽ न प्रकाशित है .... तथा ही ज्ञान व ज्ञेय है
तू ही तेरा आदि अन्त....(8)....

इसीलिये तो ऽऽ स्वयं को जानो....ब्रह्माण्ड/(विश्व) बनेगा ज्ञेय हैऽऽ
स्वज्ञान हेतु ऽऽ अनन्त ज्ञान .... जिससे ब्रह्माण्ड ज्ञेय है
तू ही तेरा आदि अन्त....(9)....

स्वात्मोपलब्धि ऽऽ सर्वोपलब्धि.... यह आध्यात्मिक सार हैऽऽ
'कनकनन्दी' का ऽऽ सर्वस्व यह .... अन्य तो मिथ्या मोह हैऽऽ
तू ही तेरा आदि अन्त....(10)....

हे दिलदार! स्वयं को पाओ! (आह्वान गीत)

(विश्व के दिलदारों के लिए आह्वान!)
(मेरी दृष्टि में दिलदार)

चलो दिलदार चलो - संकीर्णता दूर करो/(संकीर्ण से पार चलो)ऽऽऽऽ
भेद-भाव दूर करो - उदार भाव धरो ऽऽऽ (स्थायी)
अपना कोई नहीं - पराया कोई नहीं
उदार जनों को - वसुधा गृह होई ....चलो....
बड़ों की भक्ति करो - छोटों से नेह धरो

सभी से मैत्री करो - जीवों की रक्षा करो....चलो....
रोगी की सेवा करो - वैश्विक भाव धरो
आध्यात्मिकता युक्त - समस्त क्रिया करो....चलो...
पवित्र भाव धरो - कषाय दूर करो
सत्य व समता से - कष्टों को पार करो ....चलो....
संकट आने पर - धैर्य को नहीं छोड़ों
धैर्य से संकटों को - कुचल कर चलो ....चलो....
मोह व अज्ञान को - आत्म-ज्योति/(बल/शक्ति) से नाशो/(हनो)
भौतिकता से परे - आत्मिक सुख पाओ....चलो....
अनादिकाल से तो - अनन्त जन्म लिया
राग-द्वेष व मोह - अज्ञानता को पाला ....चलो....
तन मन धन को - अपना रूप माना
इसके निमित्त से - अनेक पाप किया....चलो....
शोषण अत्याचार - अनाचार भी किया
भौतिक सुख हेतु - बहु अनर्थ किया ....चलो....
परम सत्य जानो - आत्मा/(स्वयं) को पहिचानों
स्वयं की प्राप्ति हेतु - शोध-बोध भी करो....चलो....
आत्मिक साधना से - स्वयं की प्राप्ति करो
स्वयं की प्राप्ति हेतु - सर्वविभाव छोड़ो....चलो....

'मैं' हूँ अमृत स्वरूप

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : शास्त्रीय राग...., मन तड़पत...., बिन गुरु....)

'मैं' अमृत हूँ... कभी न मरता...
'मैं' अविनाशी ... तन तो विनाशी ....
मेरा मरण ... कभी न होता ... (ध्रुवपद)...

यथा आकाश में बादल की स्थिति... उमड़-घुमड़ कर नाश होती ...
किन्तु आकाश तो शाश्वत रहता... तथाहि मैं कभी न मरता...(1)...
जन्म-मरण व बालक वृद्ध दशा... यह सब तन की होती अवस्था...

कर्मजनित यह सब अवस्था... मेरी तो सच्चिदानन्द दशा... (2)...
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध सभी... मेरी न होती शुद्ध दशा...
तन-मन-इन्द्रिय परे मेरी दशा... शुद्ध-बुद्ध-आनंद अवस्था... (3)...
अज्ञान-मोह से 'मैं' मुझे न जाना...तन-मन-अक्ष को 'मैं' माना...
सत्ता-सम्पत्ति व प्रसिद्धि डिग्री को... 'मैं' मानकर भरम कीना... (4)...
इसी से ही मुझे प्राप्त हुए तन... अनंत जन्म-मरण भी कीना...
अभी 'मैं' मुझको 'मैं' रूप जाना... अतः 'कनक' 'मैं' को अमृत माना...(5)...

निरूपम आचार्यश्री कनकनन्दीजी गुरुदेव

-बा.ब्र.रोहित जैन

(चाल :- पायोजी मैंने राम रतन...)

पायोजी मैंने 'कनक गुरु' पायो...
समता-शान्ति-निस्पृहता से ... युक्त गुरुवर पायो ।।(ध्रुव)
निर्मल रूप, निराडम्बर रूप, निर्विकल्प सन्त है पायो।
आत्मज्ञान-आत्मानुभव युक्त, श्रेष्ठ गुरु है पायो।।(1)(पायोजी..)
संसार में कोई सार नहीं...कनक गुरु ने बतायो।
संसार से बचने का मार्ग...आतम धर्म बतायो।।(2)(पायोजी...)
हिंदी भाषा हमें न आती... गुरुवर से है जान्यो।
गुरुवर की भाषा क्लिष्ट... सब ने स्वीकार्यो।।(3)(पायोजी...)
जिनार्चना-पूजा काव्य... गुरुवर ने रच्यो।
भाव संग्रह-पूजा से मोक्ष-पुण्य व पाप भी होय।।(4)(पायोजी...)
व्यवहार से ही निश्चय होता... गुरुवर से ये जान्यो।
मेरे गुरु का आगम ज्ञान... इन ग्रन्थों से जान्यो।।(5)(पायोजी...)
स्वयं से परे भटकता रहे... संसार चक्कर होय।
आत्मा को न जानने पर... संसार भ्रमण होय।।(6)(पायोजी...)
चैतन्यानन्द-चिन्मयानन्द-ज्ञानानन्द है जान्यो।
स्वआत्म स्वभाव में रहने से... मोक्षसुख है जान्यो।।(7)(पायोजी...)
पुरुष अर्थात् आत्मा है... सम्यक् अर्थ है जान्यो।

पुरुष का व्युत्पत्तिपरक अर्थ... पूर्व में कभी न जान्यो।।(8)(पायोजी...)
कनक गुरु को 'रोहित' पाकर... धन्य-धन्य होय।
ऐसे गुरु सबको मिले... सतत भावना भायो।।(9)(पायोजी...)

पूर्वाह्न 08:35 07/02/2018 ओबरी

गुरु गुण स्मरण

प्रभुवर-
जय पारस पारस गूंज रही, हर टोक यहाँ से पूज रही
नरनाथ जजे, सुरनाथ जजे, मुनिनाथ भजे, ऋषिनाथ भजे,
हर टोक कहे, हर कूट कहे, अघ छूट रहे, अघ छूट रहे।
कबसे कितने मुनि मोक्ष गये, सिद्ध शिला पर जाय बसे।
मुनिवर,
अनन्त भवों को व्यर्थ गमाया, धर्म रागमय पहचाना
भवतन भोगासक्त रहा मैं वीतराग पथ ना जाना,
प्रबल सातिशय पुण्योदय से कनकनन्दी गुरु दर्शन पाया,
सांसारिक सुख नहीं चाहता कनक शरण में मैं आया-

'मै' का बोध कराने वाले मेरे गुरुवर को शत-शत कोटिशः नमन। गुरुवर को हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करती हूँ।

गुरु वर का रत्नत्रय संयम से सुरभित रहे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन मनन अविरल बढ़ता रहे, गुरु अपना जीवन सार्थक करते हुए सिद्धत्व पद की प्राप्ति करे। चारित्रिक वृद्धि होवे, सुसमाधि होवे।

जिस प्रकार समवशरण में सभी जीवों को समान अवसर प्राप्त होता है उसी प्रकार कनकनन्दीजी के समवशरण में कोई बड़ा-छोटा, ज्ञानी-अज्ञानी, शिक्षित-अशिक्षित, गरीब-धनवान् नहीं होता है। संसार के सभी जीवों में ईश्वरत्व के दर्शन करते हैं। प्रत्येक जीव भावी भगवान् है। गुरुवर के दोनों हाथ आशीर्वाद हेतु तैयार रहते है। गुरुदेव प्रत्येक आत्मा का विकास चाहते हैं।

ग.पु. कॉलोनी में मुझे 6 माह तक सानिध्य प्राप्त हुआ।

गुरुवर ने प्रवचनसार के माध्यम से ज्ञान गंगा बहाई। मैंने उसमें अवगाहना की उसके कुछ उद्गार मैं प्रस्तुत करना चाहती हूँ-

1. हमें किसी की नवकोटि से निन्दा नहीं करनी चाहिये-क्योंकि अणुव्रतों में दोष लगता है जैसे पांचव्रतों में, सत्यानुव्रत में, पाँच समिति में भाषा समिति, तीन गुप्ती में, वचन में दोष लगता है।
2. हमें ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये-ईर्ष्या कैसे उत्पन्न होती है उसका कारण - जब हम दूसरे के गुणों को स्वीकार नहीं करते हैं
3. हमें किसी व्यक्ति के बारे में कुछ कहने का अधिकार नहीं है।
4. 'मैं' को मैं घमण्ड मानती थी - गुरुवर ने हमें बताया कि 'मैं'. एक सकारात्मक सोच है हम जो भी अच्छा कार्य करे उसे बताना चाहिए।
5. 'प्रवचनसार' में आया है कि हमें आचार्यों के विचारों के अनुसार चलना चाहिये, पंचम काल में हम आचार्यों को अपने अनुसार चलाते है।

इस प्रकार गुरुवर के चरणों में निरन्तर स्वाध्याय किया-

मैं जिस अन्धकार में अपना जीवन यापन कर रही थी वह धूमिल हो गया। नई सोच, नई उर्जा, नया प्रकाश, नई दिशा प्राप्त हुई। मुझे धर्म में जोड़ रूप ज्ञान नहीं था। रूढ़िगत पूजा-पाठ कर घर लौट आना ही धर्म था। पूजा-पाठ व स्वाध्याय करते हुए अपनी आत्मा के साथ जोड़रूप ज्ञान गुरु ने सिखाया, इस उपकार को कभी नहीं भूलूँगी।

वर्तमान समय में गुरुवर की लेखन क्रिया प्रांसगिक है, धर्म के नाम पर दिखावा, ढ़ोंग, पाखण्ड, आडम्बर, भीड़ जुटाना, ख्याति-पूजा किसी में भी गुरुवर विश्वास नहीं रखते हैं। धर्म के नाम पर एक दूसरों को नीचा दिखा रहे हैं ऐसे समय में गुरुवर की नई-नई कविताएँ हमें नई सोच पर, नई ऊर्जा देती है। हम उनका भावार्थ समझ कर अपनी बुराईयाँ दूर कर सकते हैं।

हे गुरुवर मैं आपका सानिध्य चाहती हूँ पर शारीरिक स्थिति ठीक नहीं है। फिर भी निरन्तर आपके पास होने का आभामण्डल बनाती हूँ, स्वाध्याय के बाद आप हमें आशीर्वाद देते है।

1. गुरुवर का गुणगान करूँ मेरे गुरुवर का गुणगान
   सूरी गुणों का बहुमान करुँ, हृदय धरूँ ग्रहण करुँ मैं...
   मैं तो अज्ञानी गुरुवर आपसे ज्ञान पाया, आत्म तत्व को मैं स्वरूप जाना...
   बोध हुआ गुरुवर अलौकिक ज्ञान पाया... गुणगान
2. श्रावक ढूंढ रहे, किसी ने मेरा कनक देखा, श्रावक तेरे कनक को ओबरी में देखा
   बैठे हैं चतुर्विध संघ, श्रावको ने गुरुवर को देखा...
   जब तक सूरज चाँद रहेगा, मेरे गुरुवर का नाम रहेगा।
   ऐसी भावना भाती हूँ, चरणों में शीश झुकती हूँ
3. वातावरण सुहाना है, पर्यावरण बचाना है
   चलो 'कनक' गुरु के पास गुणगान करना है।
   निज स्वरूप को ध्याओगे, अपने भीतर पाओगे...
   भाव समर्पण करता हूँ, माथा चरणों में धरता हूँ।
4. अहो भाग्य है मेरा गुरुवर, दर्शन करु दो नयनों से।
   'कनक' गुरु के ही गुण गाऊँ, तन-मन व वचनों से।

आज के इस पावन दिवस पर यही कामना करती हूँ कि मरण समय गुरु पादमूल हो, सन्त समूह नित्य रहे। अपने लिए समाधिमरण की भावना भाती हूँ।

-मधुबाला जैन (भूतपूर्व शिक्षिका)

विषयाणुक्रमणिका

1.	परम आत्महित सत्य है क्या!?	2
2.	स्व-उपलब्धि ही सर्व उपलब्धि	7
3.	हे दिलदार! स्वयं को पाओ!	8
4.	'मैं' हूँ अमृत स्वरूप	9
5.	निरूपम आचार्यश्री कनकनन्दीजी गुरुदेव	10
6.	गुरु गुण स्मरण	11

परम आत्महित सत्य

1.	महान् कार्य हेतु प्रतिज्ञा की घोषणा	15
2.	सुकवि-सुकविता व गुणग्राही-श्रोता का सुफल	24
3.	सत्य सनातन (शाश्वत)	46
4.	मैं मेरे निश्चय से परमतीर्थ आदि हूँ	70
5.	मैं ही मेरे हेतु मोक्षमार्ग व मोक्ष	80
6.	मैं ही मेरा सर्वस्व	90
7.	मैं हूँ जीव-द्रव्य-तत्व-पदार्थमय	99
8.	मेरी आत्माश्रित धर्म साधना	112
9.	मैं हूँ मेरे दशधाधर्म	126
10.	स्व/(मैं) में केन्द्रित है 12 अनुप्रेक्षायें	130
11.	मेरी षोडशकारण भावना मैं ही हूँ	140
12.	मैं ही मेरे 14 गुणस्थान रूप हूँ व सिद्ध रूप हूँ	145
13.	अचौर्य की आत्मकथा	156
14.	निर्माल्यका व्यापक स्वरूप व उसके अपहरण के कुफल	189
15.	मेरा विश्वरूप	194
16.	तू(मैं) कौन हूँ!?	195
17.	सच्ची-अच्छी भावना अवश्य फल देती	196
18.	आत्मविशुद्धि बिन बाह्य तप त्याग संयम से मोक्ष नहीं	198
19.	सांसारिक कामों के त्यागी श्रमण	199
20.	निस्पृह स्वपरउद्धारक श्रमण	200

आत्मा ही परमहित सत्य

आदा खु मज्झ णाणे, आदा मे संवरे जोगे।
आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे ।।(58)(भाव पाहुड)

निश्चय से मेरे ज्ञान में आत्मा है, दर्शन और चरित्र में आत्मा है, प्रत्याख्यान में आत्मा है, संवर और योग में आत्मा है।

एगो में सस्सदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।(59)(आ.कुन्दकुन्द)

नित्य तथा ज्ञान दर्शन लक्षणवाला एक आत्मा ही मेरा है, उसके सिवाय परद्रव्य के संयोग से होने वाले समस्त भाव बाह्य हैं... मुझसे पृथक् हैं।।

महान् कार्य हेतु प्रतिज्ञा की घोषणा (प्रभावना हेतु)

(यम-नियम-व्रतादि गुरु व संघ साक्षी से ग्रहणीय)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः- जय हनुमान... आत्मशक्ति...)

यम-नियम ग्रहण की पद्धति जानो, गुरु से ग्रहण होते हैं व्रत-नियम।
जीवन पर्यन्त प्रतिज्ञा होता है यम, कालावधि प्रतिज्ञा होता नियम।।
गुरु साक्षी पूर्वक ग्रहण अधिक उत्तम, महान् प्रतिज्ञा (तो) गुरु से ही होती ग्रहण।
श्रावक प्रतिमा-क्षुल्लक-ऐल्लक-आर्यिका, साधु-उपाध्याय-आचार्य पदवी दीक्षा।।(1)
श्रीफल अर्पण सहित होता गुरु निवेदन, विधिपूर्वक करते गुरु व्रतारोपण।
गणधरवलय विधान आदि का होता पूजन, पंचपरमेष्ठी साक्षी पूर्वक (होता) व्रतारोपण।।
अनुमति भी प्राप्त करते बन्धुवर्गसे, अनुमोदना भी करते स्व-पर हित से।
पुण्य सम्पादन करते हैं नवकोटि से, मन-वचन-काय-कृत-कारित-अनुमत से।।(2)
इससे स्वयं में भी आती है दृढ़ता, गुरु से मिलता मार्गदर्शन व शिक्षा।
अन्यको मिलती प्रेरणा व शिक्षा, सहयोग-समर्थनादि से होती प्रभावना।।
हर महान् कार्य में भी ऐसा ही होता, राष्ट्रीय क्रान्ति से अन्तर्राष्ट्रीय में होता।
प्रतिज्ञा हेतु विभिन्न नारे भी होते, आह्वान से सहयोग-समर्थन मिलते ।। (3)।।
''स्वतंत्रता हमारे जन्मसिद्ध अधिकार'', ''कलियुग में संगठन में बल अपान''

''तुम खून दो मैं दूँगा स्वतंत्र राष्ट्र'', ''दुनिया के सभी मजदुर हो संगठित''।।
''आत्मदीप परदीपं बनो'' बुद्ध ने कहा, ''आदहिदं परहिदं कादव्वं'' केवली ने कहा।
''उत्थिष्ठ-जाग्रत-प्राप्य वेदान्त'' कहा/(सत्यमेव जयते वेदान्त कहा)
''जीओ और जीनो दो'' सर्वज्ञों ने कहा।। (4)
विकृत रूप भी इसके होते विभिन्न, ख्याति-पूजा-प्रसिद्धि हेतु विज्ञापन।
माईक-मंच-पत्रिका निमंत्रण कार्ड, समाचार पत्र से ले T.V. में विज्ञापन।।
विकृत रूप से तो करते विशेष, संस्कृत रूप को भी मानते विकृत।
आडम्बर-ढोंग से अनावश्यक करते, सही रूप को भी अहंकार मानते/(कहते)।। (5)
विशेष मंत्र व मंत्रणा आदि कार्य में, संकट आने की विशेष परिस्थिति में।
भले एकान्त में कुछ कार्य विधेय, समाधि प्रतिज्ञा प्रतिक्रमणादि भी संघसमक्ष देय।।
सुकथा से ले आत्मतत्त्व की चर्चा/(चर्या), नवकोटि से करना ही होती प्रभावना।
विकथा-परनिन्दा व अष्टमद की चर्चा, स्थितिकरण उपगूहण दृष्टि से न हो चर्या।। (6)
ऐसा ही सर्वत्र भी करना विधेय, (ग्रन्थ रचना-स्वाध्यायादि में करना विधेय)
जिससे स्व-पर-विश्व में हो कल्याण।
ऐसा सत्य-तथ्य-शिक्षा न जानते सभी, सत्य प्रकाशन हेतु काव्य बनाये 'कनकनन्दी'।।(7)

ओबरी 14/02/2018 पूर्वाह्न 11:10

संदर्भ - ग्रन्थ रचना हेतु वन्दना व प्रतिज्ञा

वंदित्तु सव्वसिद्धे, धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समय पाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं।। (1) (स.सा.)

मैं ध्रुव, अचल अथवा निर्मल और अनुपम गति को प्राप्त हुए समस्त सिद्धों को नमस्कार कर हे भव्यजीवो! श्रुतकेवलियों के द्वारा कहे हुए इस समयप्राभृत नामक ग्रन्थ को कहूँगा।

दीक्षार्थी एवं बन्धु वर्ग

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने भी सुखेच्छु मुमुक्षु का कर्त्तव्य दीक्षा लेने के पूर्व क्या होता है उसका वर्णन प्रवचन सार में निम्न प्रकार से किया है-

अथ श्रमणो भवितुमिच्छ्न पूर्व किं किं करोतीत्युपदिशति।
आपिच्छ बंधुवग्गं विमोचिदो गुरूकलत्तपुत्तेहिं।
आसिज्ज णाणदंसणचरित्ततववीरियायारं।। (202)

अब श्रमण होने का इच्छुक पहले क्या-क्या करता है, उसका उपदेश करते हैं-

श्रामण्यार्थी बंधुवर्ग से पूछकर बड़ो से तथा स्त्री और पुत्र से मुक्त होता हुआ ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार को अंगीकार करके विरक्त होता है।

जो मुनि होना चाहता है पहले ही बंधुवर्ग से (सगे-सम्बधिंयों) पूछता है, गुरु जनों (बड़ों) से तथा स्त्री और पुत्रों से अपने को छुड़ाता है ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार को अंगीकार करता है। वह इस प्रकार है

बंधुवर्ग से इस प्रकार कहता है अहो! इस पुरुष के शरीर के बंधुवर्ग में प्रवर्तमान आत्माओं! इस पुरुष का मेरा आत्मा किंचित् मात्र भी तुम्हारा नहीं है- इस प्रकार तुम निश्चय से जानों इसलिए मैं तुमसे विदा लेता हूँ। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है ऐसा यह मेरा आत्म आज अपने आत्मारूपी अपने अनादि बंधु के पास जा रहा है।

अहो! इस पुरुष के शरीर के जनक (पिता) अहो! इस पुरुष के शरीर की जननी माता के आत्मा! इस पुरुष का मेरा आत्मा तुम्हारे द्वारा जनित (उत्पन्न) नहीं है, ऐसा तुम निश्चय से जानो इसलिए तुम इस आत्मा को छोड़ो। जिसे ज्ञान ज्योति प्रगट हुई है ऐसा यह मेरा आत्मा आज आत्मारूपी अपने अनादिजनक के पास जा रहा है।

अहो! इस पुरुष के शरीर में रमणी (स्त्री) के आत्मा तू इस पुरुष के मेरे आत्मा को रमण नहीं कराता ऐसा तू निश्चय से जान। इसलिए तू इस आत्मा को छोड़। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है ऐसा यह मेरा आत्मा आज अपनी स्वानुभूति रूपी अनादि रमणी के पास जा रहा है।

अहो! इस पुरुष के मेरे शरीर के पुत्र के आत्मा! तू इस पुरुष के मेरे आत्मा का जन्य (उत्पन्न किया गया पुत्र) नहीं है, ऐसा तू निश्चय से जान। इसलिए तू इस आत्मा को छोड़। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, ऐसा यह मेरा आत्मा आज आत्मरूपी अपने अनादि जन्य के पास जा रहा है इस प्रकार बड़ों से, स्त्री से और पुत्र से अपने को छुड़ाता है।

जो सकल णयररज्जं पुव्वं चइऊण कुणइ य ममत्तिं।
सो णवरि लिंगधारी संजमसारेण णिस्सारो।।

आगे जो श्रमण होने की इच्छा करता है उसको पहले क्षमाभाव करना चाहिए।

''उवट्ठिदो होदि सो समणो'' इस छठी गाथा में जो व्याख्यान है, उसी को मन में धारण करके पहले क्या-क्या काम करके साधु होवेगा उसी का व्याख्यान करते हैं।

वह साधु होने का इच्छुक इस तरह बंधुवर्गों को समझाकर क्षमाभाव करता व कराता है कि अहो बन्धुजनों! मेरे पिता माता स्त्री पुत्रो ! मेरे आत्मा में परमभेद ज्ञानरूपी ज्योति उत्पन्न हो गयी है इससे यह मेरा आत्मा अपने ही चिदानन्दमयी एक स्वभावरूप परमात्मा को ही निश्चयनय से अनादिकाल के बन्धुवर्ग, पिता, माता, स्त्री, पुत्र रूप मानकर उन्हीं का आश्रय करता है इसलिए आप सब मुझे छोड़ दो-मेरा मोह त्याग दो व मेरे दोषों को क्षमा करो, इस तरह क्षामाभाव कराता है। उसके पीछे निश्चय पंचाचार को और उसके साधक आचारादि ग्रंथों में कहे हुए व्यवहार पंचाचर को आश्रय करता है। परम चैतन्यमात्र निज आत्मतत्व ही सब तरह से ग्रहण करने योग्य है ऐसी रूचि सो निश्चय सम्यग्दर्शन है, ऐसा ही ज्ञान सो निश्चय से सम्यग्ज्ञान है, उसी निज स्वभाव में निश्चलता से अनुभव करना सो निश्चय सम्यक्चारित्र है, सर्व परमद्रव्यों की इच्छा से रहित होना सो निश्चय तपश्चरण है तथा अपनी आत्मशक्ति को न छिपाना सो निश्चयवीर्याचार है। इस तरह निश्चय पंचाचार का स्वरूप जानना चाहिए।

यहां जो यह व्याख्यान किया गया कि, अपने बन्धु के साथ क्षमा करावे सो यह कथन अतिप्रसंग अर्थात् अमर्यादा के निषेध के लिए है। दीक्षा लेते हुए इस बात का नियम नहीं है कि क्षमा कराए बिना दीक्षा न लेवे। क्यों नियम नहीं है? इसके लिए कहते हैं कि पहले काल में भरत, सगर, राम पांडवादि बहुत से राजाओं ने जिनदीक्षा धारण की थी। उनके परिवार के मध्य में जब कोई भी मिथ्यादृष्टि होता था तब धर्म में उपसर्ग भी करता तथा यदि कोई ऐसा माने कि बन्धुजनों की सम्पत्ति करके ही पीछे तप करूँगा तो उसके मन में अधिकतर तपश्चरण ही न हो सकेगा क्योंकि जब किसी तरह से तप ग्रहण करते हुए यदि अपने सम्बन्धी आदि से ममता भाव करे तो तपस्वी ही नहीं हो सकता। जैसा कहा है-

जो पहले सर्वनगर व राज्य छोड़ करके फिर समता करे वह मात्र वेषधारी है, संयम की उपेक्षा से रहित है अर्थात् संयमी नहीं है।

अथातः कीदृशो भवतीत्युपदिशति-

समण गणिं गुणड्ढं कुलरूववयोविसिट्ठमिट्ठदरं।

समणेहि तं पि पणदो पडिच्छड मं चेदि अगुगहिदो।। (203)

जो श्रमण है, गुणाढ्य है, कुल रूप तथा वय से विशिष्ट है और श्रमणों को अति इष्ट है ऐसे गणी को मुझे स्वीकार करो ऐसा कहकर प्रणाम करता है और आचार्य द्वारा ग्रहण किया जाता है।

पश्चात् मुनि दीक्षा लेने वाला प्रणाम करता है और आचार्य द्वारा ग्रहण किया जाता है। वह इस प्रकार है कि आचरण करने में और आचरण कराने में आने वाली समस्त विरति की प्रवृत्ति के समान आत्मरूप ऐसे यतिधर्म का कारण जो 'श्रमण है, ऐसे यतिधर्म आचरण करने में और आचरण कराने में प्रवीण होने से जो गुणाढ्य है, सर्वलौकिकजनों के द्वारा निःशंकतया सेवा करने योग्य होने से ओर कुलक्रमागत क्रूरतादि दोषों से रहित होने से जो रूपविशिष्ट है, बालकत्व और वृद्धत्व से होने वाली बुद्धिविक्लवता का अभाव होने से तथा यौवनोद्रेक के विकार रहित बुद्धि होने से जो वय विशिष्ट है, पूर्ण यथोक्तयतिधर्म के चारित्र को आचरण करने सम्बन्धी पौरुषेय दोषों को (जिन दोषों का पुरुष के द्वारा लगाना सम्भव है) के कारण नष्ट (प्रायश्चित्तादि) के लिए जिनका बहुआश्रय लेते हैं इसलिए जो श्रमणों को अति इष्ट है ऐसे गणी के निकट शुद्धात्मतत्व की उपलब्धि के साधक आचार्य के निकट-शुद्धात्म तत्व की उपलब्धि सिद्धि के लिए मुझे ग्रहण करो। ऐसा कहकर (श्रामण्यार्थी) नमस्कार करता है। इस प्रकार यह तुझे शुद्धात्मतत्व की उपलब्धि सिद्धि हो ऐसा (कहकर) वह गणी उस मुनिदीक्षा लेने वाले को प्रार्थित अर्थ से संयुक्त करते है। अनुग्रहीत करते हैं अर्थात् यतिधर्म की दीक्षा देते हैं।

आगे जिनदीक्षा को लेने वाला भव्यजीव जैनाचार्य की शरणग्रहण करता है। ऐसा कहते हैं जिनदीक्षा का अर्थी जिस आचार्य के पास जाकर दीक्षा की प्रार्थना करता है उसका स्वरूप बताते हैं। वह निन्दा व प्रंशसादि में समताभाव को रखकर पूर्व सूत्र में कहे गये निश्चय और व्यवहार पंच प्रकार आचार के पालने में प्रवीण होते हैं, चौरासी लाख गुण और अठारह हजार शील के सहकारी कारणरूप जो अपने शुद्धात्मा का अनुभवरूप उत्तम गुण उससे परिपूर्ण होते हैं। लोगों की घृणा से रहित जिनदीक्षा के योग्य कुलवाले होते हैं। अन्तरंग शुद्धात्मा का अनुभव रूप निर्ग्रन्थनिर्विकार रूप वाले होते है। शुद्धात्मानुभव को विनाश करने वाले वृद्धपने, बालपने व यौवनपने के उद्धतपने से पैदा होने वाली बुद्धि की चंचलता रहित होने से वयवाले होते हैं। इन कुल रूप या वय से श्रेष्ठ तथा अपने परमात्मत्व की भावना सहित समचित्तधारी अन्य

आचार्यों के द्वारा सम्मत होते हैं। ऐसे गुणों से परिपूर्ण परमभाव साधक दीक्षा के दाता आचार्य का आश्रय करके उनको नमस्कार करता हुआ प्रार्थना करता है।

हे भगवन्! अनन्तज्ञान आदि अरहंत के गुणों की सम्पदा को पैदा करने वाली व जिसका लाभ अनादिकाल में भी अत्यन्त दुर्लभ रहा है ऐसे भाव सहित जिनदीक्षा का प्रसाद देकर मेरे को अवश्य स्वीकार कीजिए। तब वह उन आचार्य के द्वारा इस तरह स्वीकार किया जाता है 'हे भव्य इस असार संसार में दुर्लभ रत्नत्रय के लाभ को प्राप्त करके अपने शुद्धात्मा की भावना रूप निश्चय चार प्रकार आराधना के द्वारा तू अपना जन्म सफल कर।'

गृहत्याग क्रिया

ततः कृतार्थमात्मनं मन्यमानो गृहाश्रमे।
यदोद्यतो गृहत्यागे तदाऽस्यैष क्रियाविधिः।। (150)

तदनन्तर गृहस्थाश्रम में अपने-आपको कृतार्थ मानता हुआ जब वह गृहत्याग करने के लिए उद्यत होता है तब उसके यह गृहत्याग नाम की क्रिया विधि की जाती है।

सिद्धार्चनां पुरस्कृत्य सर्वानाहूय संमतान्।
तत्साक्षि सूनवे सर्वं निवेद्यातो गृहं त्यजेत्।। (151)

इस क्रिया में सबसे पहले सिद्ध भगवान् का पूजन कर समस्त इष्टजनों को बुलाना चाहिए और फिर उनकी साक्षीपूर्वक पुत्र के लिए सब कुछ सौंपकर गृहत्याग कर देना चाहिए।

कुलक्रमस्त्वया तात संपाल्योऽस्मत्परोक्षतः।
त्रिधा कृतं च नो द्रव्यं त्वयेत्थं विनियोज्यताम्।। (152)
एकोऽशो धर्मकार्येऽतो द्वितीयः स्वगृहव्यये।
तृतीयः संविभागाय भवेत्तत्सहजन्मनाम्।। (153)
पुत्रश्च संविभागार्हाः समं पुत्रैः समांशकैः।
त्वं तु भूत्वा कुलज्येष्ठ सन्ततिं नोऽनुपालय।। (154)
श्रुतवृत्तक्रियामन्त्रविधिज्ञस्त्वमतन्द्रितः।
प्रपालय कुलाम्नान्यं गुरुं देवाश्च पूजयन्।। (155)
इत्येवमनुशिष्य स्वं ज्येष्ठं सूनुमानकुलः।

ततो दीक्षामुपादातुं द्विजः स्वं गृहमुत्सृजेत्।। (156)

गृहत्याग करते समय ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर उससे इस प्रकार कहना चाहिए कि पुत्र, हमारे पीछे यह कुलक्रम तुम्हारे द्वारा पालन योग्य है। मैंने जो अपने धन के तीन भाग किये हैं उसका तुम्हे इस प्रकार विनियोग करना चाहिए कि उसमें से एक भाग धर्मकार्य में खर्च करना चाहिए , दूसरा भाग अपने घर खर्च के लिए रखना चाहिए और तीसरा भाग अपने भाइयों में बाँट देने के लिए है। पुत्रों के समान पुत्रियों के लिए भी बराबर भाग देना चाहिए। हे पुत्र तू कुल का बड़ा होकर मेरी सब सन्तान का पालन कर। तू शास्त्र, सदाचार क्रिया मन्त्र और विधि को जानने वाला है इसलिए आलस्यरहित होकर देव और गुरुओं की पूजा करता हुआ अपने कुलधर्म का पालन कर। इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्र को उपदेश देकर वह द्विज निराकुल होवे और फिर दीक्षा ग्रहण करने के लिए अपना घर छोड़ दे क्योंकि जब तक सम्पूर्ण परिग्रह त्याग करके मुनि नहीं बनता है तब तक महाव्रत रूपी रत्नत्रय को पालन नहीं करवाता है। जब तक पूर्ण रत्नत्रय को जीव प्राप्त नहीं करता है तब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर पाता है। इसलिए गृहस्थाश्रम मोक्ष के लिए पूर्ण साधक नहीं है बल्कि बाधक है तथापि आत्म विशुद्धि के अभाव के कारण जीव गृहस्थाश्रमादि में रहता है।

कहा भी है-

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
इत्याश्रमास्तु जैनानामुत्तरोत्तरशुद्धितः।। (152)

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ आश्रम और भिक्षुक ये जैनियों के चार आश्रम है जो कि उत्तरोत्तर होने से प्राप्त होते हैं।

व्रत प्रदान क्रिया-

वदसमिदींदियरोधो, लोचोवासय मचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च।।
एदेखलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता। ---

पंच महाव्रत पंचसमिति पंचेन्द्रियरोध
लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशतिमूलगुणाः
उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि
दशलाक्षणिक धर्मः, अष्टादशशीलसहस्त्राणि चतुरशीतिलक्षणगुणाः,
त्रयोदशविधं चारित्रं, तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय

सर्वसाधु साक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं समारुढं ते मे भवतु! ते मे भवतु!! ते मे भवतु !!!

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, उवट्ठावण-मंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महापुरिसाणु-चिण्णे, अरहंत-सक्खियं, सिद्ध-सक्खियं, साहु-सक्खियं, अप्प-सक्खियं, पर-सक्खियं, देवता-सक्खियं, उत्तमट्ठम्हि। ''इदं मे महव्वदं, सुव्वदं, दिढव्वदं होदु, णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु।।''

अन्वयार्थ - (भंते!)हे भगवन्! (तत्थ) उन पाँच महाव्रतों में (पढमे महव्वदे) प्रथम अहिंसा महाव्रत में (सव्वं) सब सूक्ष्म और स्थूल (पाणादिवादं) प्राणातिपात का (जावज्जीवं) जीवनपर्यंत (तिविहेण) तीन प्रकार (मणसा, वचसा, काएण) मन से, वचन से, काय से (पच्चक्खामि) त्याग करता हूँ।

(महत्थे) महार्थ (महागुणे) महान् गुणों में (महाणुभावे) महानुभाव (महाजसे) महायश (महापुरिसाणु-चिण्णे) महापुरुषानुचिह्न ऐसे (पढमे-महव्वदे) प्रथम अहिंसा महाव्रत में (पाणादिवादादो वेरमणं) प्राणातिपात विरति लक्षण में (उवट्ठावण मंडले) व्रत-आरोपण होने पर मैं श्रमण होता हूँ। (अरहंत-सक्खियं) अरहंत साक्षिक (सिद्ध सक्खियं) सिद्ध साक्षिक (साहु-सक्खियं) साधु साक्षिक (अप्प सक्खियं) आत्मा साक्षिक (पर-सक्खियं) पर साक्षिक (देवता-सक्खियं) देवता साक्षिक (उत्तमट्ठह्मि) उत्तमार्थ के लिये धारण किया गया (इदं मे महव्वदं,) यह मेरा अहिंसा महाव्रत (सुव्वदं) सुव्रत हो (दिढव्वदं होदु) दृढ़व्रत हो (णित्थारयं पारयं तारयं) संसारसमुद्र से निस्तारक, पार करने वाला, तारने वाल हो (आराहियं) आराधित यह व्रत (चावि ते मे भवतु) मेरे और शिष्य गणों के लिये संसार का तारक हो।

भावार्थ - हे भगवन्! प्रथम अहिंसा महाव्रत में मैं सूक्ष्म-स्थूल सभी प्रकार जीवों के प्राणातिपात का त्याग करता हूँ। जीवनपर्यन्त मन-वचन-काय से त्रिधा प्रकार से एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक, अण्डज, पोतज, जरायुज, रसायिक, संस्वेदिम, सम्मूर्छिम, उद्भेदिम और उपपादिम, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, पर्याप्त, अपर्याप्त चौरासी लाख योनि के प्रमुख जीवों का प्राणों का मैं स्वयं घात नहीं करता हूँ, अन्य जीवों से भी इनका घात नहीं कराता हूँ। अर्थात् मैं मन-वचन-काय, कृत, कारित अनुमोदना से चौरासी लाख योनियों के

जीवों के घात का त्याग करता हूँ।

हे भगवन! मैं उस अहिंसा महाव्रत में लगे अतीचारों का प्रतिक्रमण करता हूँ। अपनी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। हे भगवन्! अतीत काल में व्रतों में उपार्जित अतीचारों का मैं त्याग करता हूँ।

अपनी रचनात्मकता को व्यक्त करना

जब हमारा आंतरिक दर्शन खुलता है तो हमारी सीमाएँ विस्तृत होती हैं। हमारा कार्य दैवी अभिव्यक्ति है

जब लोग मुझसे जीवन में मेरे उद्देश्य के विषय में पूछते हैं तो मैं उन्हें बताती हूँ कि मेरा कार्य ही मेरा उद्देश्य है। यह जानकर बड़ा दुःख होता है कि अधिकतर लोग अपने कामों से नफरत करते हैं या उनके प्रति अरुचि रखते हैं। और उससे भी बदतर है उनका यह न जानना कि वे क्या चाहते हैं। अपने जीवन के उद्देश्य को पा लेना, आपके अपनी पसंद के काम को हासिल कर लेना स्वयं से प्रेम करना हैं।

आपका काम आपकी रचनात्मकता की अभिव्यक्ति है। आपको बहुत अच्छे होने या बहुत ज्यादा जानने की भावनाओं से परे जाने की आवश्यकता है। ब्रह्मांड की रचनात्मक ऊर्जा को स्वयं से होकर इस तरह प्रवाहित होने दें, जो आपको गहनतापूर्वक संतुष्टि देती है। जब वह आपके हाने को संतुष्ट करती है और आपको परिपूर्ण रखती है तो आप क्या करते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप जहाँ काम करते हैं, उस जगह से और जो काम करते हैं, उससे यदि नफरत करते हैं तो जब तक आप स्वयं को भीतर से नहीं बदलेंगे तब तक अपने काम-धंधे को लेकर आप हमेशा वैसा ही महसूस करेंगे। यदि आप अपने नए काम के प्रति भी उसी रुख को बरकरार रखते हैं तो पुनः आपको वैसा ही महसूस होगा।

समस्या यह है कि बहुत से लोग जो चाहते हैं, उसकी माँग नकारात्मक तरीके से करते हैं। एक महिला जो सकारात्मक रूप से थी, उसे व्यक्त करने में काफी कठिनाई महसूस करती थी। वह हमेशा यही कहती रहती थी, ''मैं इस काम (नौकरी) में इस या उस चीज को पसंद नहीं करती'' या ''मैं नहीं चाहती कि ऐसा हो'' या ''मुझे वहाँ नकारात्मक ऊर्जा महसूस करना पसंद नहीं है।'' आप समझ सकते हैं कि वह जो चाहती थी, उसे व्यक्त नहीं कर पा रही थी। हम जो चाहते हैं, उस बात के प्रति हमारी अपनी सोच स्पष्ट होनी चाहिए।

हम जो चाहते हैं, कभी-कभी उसे व्यक्त करना बड़ा कठिन होता है। हम जो नहीं चाहते, उसे बताना बड़ा सहज है। आप अपने कार्य को कैसा चाहते हैं, उसकी घोषणा करना शुरू कीजिए। ''मेरा काम गहन रूप से परिपूर्णता देने वाला है। मैं लोगों की मदद करता हूँ। उनकी जरूरत के प्रति भी मैं काफी सजग हूँ। मैं ऐसे लोगों के साथ काम करता हूँ, जहाँ मुझे पसंद किया जाता है। मैं हर समय सुरक्षित महसूस करता हूँ।'' या शायद ''मेरा काम स्वतंत्र रूप से मुझे अपनी रचनात्मकता को व्यक्त करने का मौका देता है। जो काम मुझे पसंद है उसे करते हुए मेरी अच्छी आमदनी हो जाती है।'' या ''काम से मैं हमेशा खुश रहता हूँ।'' मेरा कॅरियर खुशी व हँसी और समृद्धि से परिपूर्ण है।

अपनी घोषणाओं को हमेशा वर्तमान काल में व्यक्त कीजिए। आप वही पाते हैं जिसकी आप घोषणा करते हैं। यदि आप घोषणा नहीं करते तो फिर आपके भीतर आपकी नकारात्मक सोच ही बचती है जो आपकी अपेक्षित अच्छाइयों को रोकती है। अपने कार्य में मेरा क्या मानना है उसकी एक सूची तैयार कर लीजिए। आप अपने अंदर की नकारात्मक सोच को जानकर हैरान हो जाएँगे। जब तक आप इस सोच को नहीं बदलते, आप समृद्धिशाली नहीं होंगे।

जब आप किसी ऐसे काम को करते हैं, जो आपको पसंद नहीं हैं तो आप स्वयं को व्यक्त करनेवाली शक्ति को रोक रहे होते हैं। जिस काम को आप करना चाहते हैं, उसकी गुणवत्ताओं के विषय में विचार कीजिए। यदि आप में पूर्ण अपना कोई मनपसंद कार्य आप कर रहे होते तो आप कैसा महसूस करते? आप जो चाहते हैं, उसके प्रति आपका स्पष्ट भाव होना जरूरी है। आपका 'उच्चतर स्वयं' वह कार्य आपको खोजकर दे देगा, जो आपके लिए उपयुक्त है। यदि आप नहीं जानते तो जानने की इच्छा कीजिए। स्वयं को उस ज्ञान-ऊर्जा के लिए खोलिए, जो आपके भीतर विद्यमान है।

सुकवि-सुकविता व गुणग्राही-श्रोता का सुफल

(सुगुरु-प्रवचन व गुणग्राही श्रोता-शिष्य व कुगुरु-कुशिक्षा गुणद्वेषी-निन्दक का कुफल)
(चालः तुम दिल की...)

धन्य हे! सुकवि धन्य हो तुम, कितनी कल्पना करते हो।
सत्य-तथ्य को कल्पना द्वारा, काव्यरस में बहाते/(लिखते) हो

स्व-पर हित में कविता लिखते हो, उदार-गुणग्राही दृष्टि से।
सूक्ष्म-गूढ़-अमूर्तिक तत्त्व को भी, लिखते स्थूल दृष्टान्त से।। (1)
उपमा अलंकारादि रस ले, काव्य बनाते हो सरस।
गुणग्रहण-दोष हरण हेतु, गुणी व पापीओं का भी करते वर्णन।
महान् पुरुष रूपी महानायक तो आप के होते प्रमुख पात्र।
वे तो होते सूर्य चन्द्र सम, राहु केतु होते आनुसंगिक पात्र/(पापी)।। (2)
मोक्षगामी व मोक्षपथ ही होता आप का प्रमुख विषय।
इसके सापेक्ष/(विपरीत) संसार-संसारी का भी वर्णन आवश्यक विषय
इसे ही केन्द्रकर समस्त विषय, प्रतीपादन करते सापेक्षता से।
द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ प्रतीपादन करते अनेकान्त दृष्टि से।। (3)
अतः पाप व पापीओं का भी, वर्णन हो जाती शिक्षाप्रद सुकथा।
इससे विपरीत समस्त कथा (शिक्षा), हो जाती हानिप्रद विकथा।
तीर्थंकरों से अंजनचोर/(विद्यत्चोर) तक का, वर्णन करते स्वरचनाओं में
वे सभी ही पूर्व के पापकर्मों को, नाशकर बने पावन भी।। (4)
चारगति चौरासी लाख योनियों का, वर्णन करते शिक्षा प्राप्ति हेतु।
प्रकृति चित्रण से ले आक्रमण युद्ध, हत्या-बलात्कार से शिक्षा प्राप्त हेतु।
इसे श्रवण करते हैं सुश्रोता से/(सुशिक्षा) स्वयं पावन हेतु नम्रता से,
गुणग्राही हो प्रमोद भाव से, एकाग्रचित्त हो सत्य जिज्ञासा से।। (5)
इससे विपरीत होते कुकवि काव्य श्रोता से शिष्य तक।
अंगुर को यथा मद्य बना व पीकर, होते नष्ट से ले भ्रष्ट तक।
सुकवि आदि ही सुयोग्य हैं, वे ही श्रवणीय व ग्रहणीय।
किसी भी देश-काल आदि में, कुकवि (आदि) न श्रवणीय न ग्रहणीय।। (6)
नैतिक से सामाजिक-राष्ट्रीय व, अन्तर्राष्ट्रीय व धर्म तक में।
सुकवि आदि के कारण होती, क्रान्ति से शान्ति जनगण में।
जहाँ न पहुँचे रवि जगत् में, वहाँ पहुँचते अनुभवी कवि।
जो क्रान्ति-शान्ति संभव नहीं अस्त्र-शस्त्र से उसे संभव करे सुकवि।। (7)
भारत में अभी अधिकतर, कुकवि आदि के अधिक प्रभाव।
जिससे विश्वगुरु भारत अभी, अनैतिक-भ्रष्टाचार के प्रभाव में।

उक्त सुगुण के प्रभाव हेतु व , कुगुणों को प्रभावहीन बनाने हेतु।
सुकाव्यों की रचना करे 'कनकसूरी' स्व-पर-विश्व हित हेतु।। (8)

ओबरी 10-02-2018 मध्याह्न

संदर्भ-

कवि-काव्य, निन्दक व गुणग्राही

त एव कवयो लोके त एव च विचक्षणाः।
येषां धर्मकथाङ्गत्वं भारती प्रतिपद्यते।। (आ.पु.62)

संसार में वे ही पुरुष कवि हैं और वे ही चतुर हैं जिनकी कि वाणी धर्मकथा के अंगपने को प्राप्त होती है अर्थात् जो अपनी वाणी द्वारा धर्मकथा की रचना करते हैं।

धर्मानुबन्धिनी या स्यात् कविता सैव शस्यते।
शेषा पापास्त्रवायैव सुप्रयुक्तापि जायते।। (63)

कविता भी वही प्रशंसनीय समझी जाती है जो धर्मशास्त्र से सम्बन्ध रखती है। धर्मशास्त्र के सम्बन्ध से रहित कविता मनोहर होने पर भी मात्र पापास्त्रवके लिए होती है।।

केचिन्मिथ्यादृशः काव्यं ग्रथ्नन्ति श्रुतिपेशलम्।
तत्तव धर्मानुबन्धित्वान्न सतां प्रीणनक्षमम्।। (64)

कितने ही मिथ्यादृष्टि कानों को प्रिय लगने वाले मनोहर काव्यग्रन्थों की रचना करते हैं परन्तु उनके वे काव्य अधर्मानुबन्धी होने से धर्मशास्त्र के निरूपक न होने से सज्जनों को संतुष्ट नहीं कर सकते।।

अव्युत्पन्नतराः केचित् कवित्वाय कृतोद्यमाः।
प्रयान्ति हास्यतां लोके मूका इव विवक्षवः।। (65)

लोक में कितने ही कवि ऐसे भी हैं जो काव्यनिर्माण के उद्यम करते हैं परन्तु वे बोलने की इच्छा रखने वाले गूँगे पुरुष की तरह केवल हँसी के ही प्राप्त होते हैं।

केचिदन्यवचोलेशानादाय कविमानिनः।
छायामारोपयन्त्यन्यां वस्त्रेष्विव वणिग्बुवा।। (66)

योग्यता न होने पर भी अपने को कवि मानने वाले कितने ही लोग दूसरे कवियों के कुछ वचनों को लेकर उसकी छाया मात्र कर देते हैं अर्थात् अन्य कवियों

की रचना में थोड़ा-सा परिवर्तन कर उसे अपनी मान लेते हैं जैसे की नकली व्यापारी दूसरों के थोड़े-से कपड़े लेकर उनमें कुछ परिवर्तन कर व्यापारी बन जाते हैं।।

संभोक्तुमक्षमाः केचित्सरसां कृतिकामिनीम्।
सहायान् कामयन्तेऽन्यानकल्या इव कामुकाः।। (67)

श्रृंगारादि रसों से भरी हुई रसीली कविता रूपी कामिनी के भोगने में उसकी रचना करने में असमर्थ हुए कितने ही कवि उस प्रकार सहायकों की वांछा करते हैं जिस प्रकार कि स्त्री संभोग में असमर्थ कामीजन औषधादि सहायकों कि वांछा करते हैं।

केचिदन्यकृतैरर्थैः शब्दैश्च परिवर्तितैः।
प्रसारयन्ति काव्यार्थान् प्रतिशिष्टयेव वाणिजाः।। (68)

कितने ही कवि अन्य कवियों द्वारा रचे गये शब्द तथा अर्थ में कुछ परिवर्तन कर उनसे अपने काव्य ग्रन्थों का प्रसार करते हैं जैसे की व्यपारी अन्य पुरुषों द्वारा बनाये हुए माल में कुछ परिवर्तन कर अपनी छाप लगा कर उसे बेचा करते हैं।

केचिद्वर्णोज्ज्वलां वाणीं रचयन्त्यर्थदुर्बलाम्।
जातुषी कण्ठिकेवासौ छायामृच्छति नोच्छिखाम्।। (69)

कितने ही कवि ऐसी कविता करते हैं जो शब्दों से तो सुन्दर होती हैं परन्तु अर्थ से शुन्य होती हैं। उनकी यह कविता लाख की बनी हुई कंठी के समान उत्कृष्ट शोभा को प्राप्त नहीं होती।

केचिदर्थमपि प्राप्य तद्योगपदयोजनैः।
न सतां प्रीणनायालं लुब्धा लब्धश्रियो यथा।। (70)

कितने ही कवि सुन्दर अर्थ को पाकर भी उसके योग्य सुन्दर पदयोजना के बिना सज्जन पुरुषों को आनन्दित करने के लिए समर्थ नहीं हो पाते जैसे कि भाग्य से प्राप्त हुई कृपण मनुष्य की लक्ष्मी योग्य पद-स्थान योजना के बिना सत्पुरुषों को आनन्दित नहीं कर पाती।।

यथेष्टं प्रकृतारम्भाः केचित्निर्वहणाकुलाः।
कवयो बत सीदन्ति कराक्रान्तकुटुम्बिवत्।। (71)

कितने ही कवि अपने इच्छानुसार काव्य बनाने का प्रारम्भ तो कर देते हैं परन्तु शक्ति न होने से उसकी पूर्ति नहीं कर सकते अतः वे टैक्स के भार से दबे हुए बहुकुटुम्बी व्यक्ति के समान दुखी होते हैं।

आप्तपाशमतान्यन्ये कवयः पोषयन्त्यलम्।
कुकवित्वाद् वरं तेषामकवित्वमुपासितम्।। (72)

कितने ही कवि अपनी कविता-द्वारा कपिल आदि आप्ताभासों के उपदिष्ट मत का पोषण करते हैं मिथ्यामार्ग का प्रचार करते हैं। ऐसे कवियों का कविता करना व्यर्थ है क्योंकि कुकवि कहलाने की अपेक्षा अकवि कहलाना ही अच्छा है।

अनभ्यस्तमहाविद्याः कलाशास्त्रबहिष्कृताः।
काव्यानि कर्त्तुमीहन्ते केचित्पश्यत साहसम्।। (73)

कितने ही कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने न्याय, व्याकरण आदि महाविद्याओं का अभ्यास नहीं किया है तथा जो संगीत आदि कलाशास्त्रों के ज्ञान से दूर हैं फिर भी वे काव्य करने की चेष्टा करते हैं, अहो! इनके साहस को देखो।

तस्मादभ्यस्य शास्त्रार्थानुपास्य च महाकवीन्।
धर्म्यं शस्यं यशस्यं च काव्यं कुर्वन्तु धीधनाः।। (74)

इसलिए बुद्धिमानों को शास्त्र और अर्थ का अच्छी तरह अभ्यास कर तथा महाकवियों की उपासना करके ऐसे काव्य की रचना करनी चाहिए जो धर्मोपदेश से सहित हो, प्रशंसनीय हो और यश को बढाने वाला हो।

परेषां दूषणाज्जातु न विभेति कवीश्वरः।
किमुलूकभयाद् धुन्वन् ध्वान्तं नोदेति मानुमान्।। (75)

उत्तम कवि दूसरों के द्वारा निकाले हुए दोषों से कभी नहीं डरता। क्या अन्धकार को नष्ट करने वाला सूर्य उलूक के भय से उदित नहीं होता।

परे तुष्यन्तु वा मा वा कविः स्वार्थं प्रतीहताम्।
न पराराधनाच्छ्रेयः श्रेयः सन्मार्गदेशनात्।। (76)

अन्यजन सन्तुष्ट हों अथवा नहीं कविको अपना प्रयोजन पूर्ण करने के प्रति ही उद्यम करना चाहिए। क्योंकि कल्याण की प्राप्ति अन्य पुरुषों की आराधना से नहीं होती किन्तु श्रेष्ठ मार्ग के उपदेश से होती है।

पुराणकवयः केचित् केचिन्नवकवीश्वराः।
तेषां मतानि भिन्नानि कस्तदाराधने क्षमः।। (77)

कितने ही कवि प्राचीन हैं और कितने ही नवीन हैं तथा उन सबके मत जुदे-जुदे है अतः उन सबको प्रसन्न करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है?

केचित् सौशब्धमिच्छन्ति केचिदर्थस्य संपदम्।
केचित् समासभूयस्त्वं परे व्यस्तां पदावलीम्।। (78)

क्योंकि कोई शब्दों की सुन्दरता को पसंद करते हैं, कोई मनोहर अर्थसम्पत्ति को चाहते हैं, कोई समास की अधिकता को अच्छा मानते हैं और कोई पृथक्-पृथक् रहने वाली अलमस्त पदावली को ही चाहते हैं।

मृदुबन्धार्थिनः केचित् स्फुटबन्धैषिणः परे।
मध्यमाः केचिदन्येषां रुचिरन्यैव लक्ष्यते।। (79)

कोई मृदुल-सरल रचना को चाहते हैं, कोई कठिन रचना को चाहते हैं, कोई मध्यम श्रेणी की रचना पसन्द करते हैं और कोई ऐसे भी है जिनकी रूचि सबसे विलक्षण अनोखी है।

इति भिन्नाभिसन्धित्वा दूराराधा मनीषिणः। (दुराराध्या)
पृथग्जनोऽपि सूक्तानामनभिज्ञः सुदुर्ग्रहः।। (80)

इस प्रकार भिन्न-भिन्न विचार होने के कारण बुद्धिमान् पुरुषों को प्रसन्न करना कठिन कार्य है। तथा सुभाषितों से सर्वथा अपरिचित रहने वाले मूर्ख मनुष्य को वशमें करना उनकी अपेक्षा भी कठिन कार्य है।

सतीमपि कथां रम्यां दूषयन्त्येव दुर्जनाः।
भुजङ्गा इव सच्छायां चन्दनद्रुमवल्लरीम्।। (81)

दुष्ट पुरुष निर्दोष और मनोहर कथा को भी दूषित कर देते हैं, जैसे चन्दन वृक्ष की मनोहर कान्ती से युक्त नयी कोपलों को सर्प दूषित कर देते हैं।

सदोषामपि निर्दोषां करोति सुजनः कृतिम्।
धनात्यय इवापङ्कां सरसीं पङ्कदूषिताम्।। (82)

परन्तु सज्जन पुरुष सदोष रचना को भी निर्दोष बना देते हैं जैसे की शरद् ऋतु पंकसहित सरोवरों को पंकरहित-निर्मल बना देती हैं।

दुर्जना दोषमिच्छन्ति गुणमिच्छान्ति सज्जनाः।
स तेषां क्षेत्रजो भावो दुश्चिकित्स्यश्चिरादपि।। (83)

दुर्जन पुरुष दोषों को चाहते हैं और सज्जन पुरुष गुणों को। उनका यह सहज स्वभाव है जिसकी चिकित्सा बहुत समय में भी नहीं हो सकती अर्थात् उनका यह स्वभाव किसी प्रकार भी नहीं छूट सकता।

यतो गुणधनाः सन्तो दुर्जना दोषवित्तकाः।
स्वधनं गृह्वतां तेषां कः प्रत्यर्थी बुधो जनः।। (84)

जब कि सज्जनों का धन गुण है और दुर्जनों का धन दोष, तब उन्हें अपना-अपना धन ग्रहण कर लेने में भला कौन बुद्धिमान् पुरुष बाधक होगा?

दोषान् गृह्वन्तु वा कामं गुणास्तिष्ठन्तु नः स्फुटम्।
गृहीतदोषं यत्काव्यं जायते तद्धि पुष्कलम्।। (85)

अथवा दुर्जन पुरुष हमारे काव्य से दोषों को ग्रहण कर लेवें जिससे गुण ही गुण रह जायें यह बात हमको अत्यन्त इष्ट है क्योंकि जिस काव्य से समस्त दोष निकाल लिये गए हों वह काव्य निर्दोष होकर उत्तम हो जायेगा।।

असतां दूते चित्तं धर्मकथां सतीम्।
मन्त्रविद्यामिवाकर्ण्य महाग्रहविकारिणाम्।। (86)

जिस प्रकार मन्त्र विद्या को सुनकर भूत, पिशाचादि महाग्रहों से पीड़ित मनुष्यों का मन दुःखी होता है उसी प्रकार निर्दोष धर्मकथा को सुनकर दुर्जनों का मन दुःखी होता है।

मिथ्यात्वदूषितधियामलच्यं धर्मभेषजम्।
सदप्यसदिवाभाति तेषां प्त्तिजुषामिव।। (87)

जिन पुरुषों की बुद्धि मिथ्या दूषित होती हैं उन्हें धर्मरूपी औषधि तो अरुचिकर मालूम होती ही है साथ में उत्तमोत्तम अन्य पदार्थ भी बूरे मालूम होते है जैसे कि पित्तज्वरवाले को औषधि या अन्य दुग्ध आदि उत्तम पदार्थ भी बुरे-कड़वे मालूम होते हैं।

सुभाषितमहामन्त्रान् प्रयुक्तान् कविमन्त्रिभिः।
श्रुत्वा प्रकोपमायान्ति दुर्ग्रहा इव दुर्जनाः।। (88)

कविरूप मन्त्रवादियों के द्वारा प्रयोग में लाए हुए सुभाषित रूप मन्त्रों को सुनकर दुर्जन पुरुष भूतादि ग्रहों के समान प्रकोप को प्राप्त होते हैं।

चिरप्ररूढ़दुर्ग्रन्थिवेणुमूलसमोनृजुः।
नर्जूकर्तु खलः शक्यः श्वपुच्छसदृशोऽथवा।। (89)

जिस प्रकार बहुत दिन से जमें हुए बाँस की गाँठ-दार जड़ स्वभाव से टेढ़ी होती है उसे कोई सीधा नहीं कर सकता उसी प्रकार चिरसंचित मायाचार से पूर्ण दुर्जन मनुष्य भी स्वभाव से टेढा होता है उसे कोई सीधा-सरल परिणामी नहीं कर

सकता अथवा जिस तरह कोई कुत्ते की पूँछ को सीधा नहीं कर सकता उसी तरह दुर्जन को भी सीधा नहीं कर सकता।

सुजनः सुजनीकर्तुमशक्तो यच्चिरादपि।
खलः खलीकरोत्येव जगदाशु तदद्भुतम्।। (90)

यह एक आश्चर्य की बात है कि सज्जन पुरुष चिरकाल के सतत् प्रयत्न से भी जगत् को अपने समान सज्जन बनाने के लिए समर्थ नहीं हो पाते परन्तु दुर्जन पुरुष उसे शीघ्र ही दुष्ट बना लेते हैं।

सौजन्यस्य परा कोटिरनसूया दयालुता।
गुणपक्षानुरागश्च दौर्यन्यस्य विपर्ययः।। (91)

ईर्ष्या नहीं करना, दया करना तथा गुणीं जीवों से प्रेम करना यह सज्जनता की अन्तिम अवधि है और इसके विपरीत अर्थात् ईर्ष्या करना, निर्दयी होना तथा गुणी जीवों से प्रेम नहीं करना यह दुर्जनता की अन्तिम अवधि है। यह सज्जन और दुर्जनों का स्वभाव ही है ऐसा निश्चय कर सज्जनों में न तो विशेष राग ही करना चाहिए और न दुर्जनों का अनादर ही करना चाहिए।

स्वभावमिति निश्चित्य सुजनस्येतरस्य च।
सुजनेष्वनुरागो नो दुर्जनेष्ववधीरणाः।। (92)
कवीनां कृतिनिर्वाहे सतो मत्वावलम्बनम्।
कविताम्भोधिमुद्वेलं लिलङ्घयिषुरस्म्यहम्।। (93)

कवियों अपने कर्त्तव्य की पूर्ति में सज्जन पुरुष ही अवलम्बन होते हैं ऐसा मानकर मैं अलंकार, गुण, रीति आदि लहरों से भरे हुए कविता रूपी समुद्र को लाँघना चाहता हूँ अर्थात् सत्पुरुषों के आश्रय से ही मैं इस महान् काव्य ग्रन्थ को पूर्ण करना चाहता हूँ।

कवेर्भावोऽथवा कर्म काव्यं तज्ज्ञैर्निरुच्यते।
तत्प्रतीतार्थ मग्राम्यं सालंकारमनाकुलम्।। (94)

काव्यस्वरूप के जानने वाले विद्वान् कवि के भाव अथवा कार्य को काव्य कहते हैं। कविका वह काव्य सर्वसंमत अर्थ से सहित, ग्राम्यदोष से रहित, अंलकार से युक्त और प्रसाद आदि गुणों से शोभित होना चाहिए।

केचिदर्थस्य सौन्दर्यमपरे पदसौष्ठवम्।
वाचामलंक्रियां प्राहुस्तद्द्वयं नो मतं मतम्।। (95)

कितने ही विद्वान् अर्थ की सुन्दरता को वाणी का अलंकार कहते हैं और कितने ही पदों की सुन्दरता को, किन्तु हमारा मत है कि अर्थ और पद दोनों की सुन्दरता ही वाणी का अलंकार है।

सालंकारमुपारूढरसमुद्भूत सौष्ठवम्।
अनुच्छिष्टं सतां काव्यं सरस्वत्या मुखायते।। (96)

सज्जन पुरुषों का बनाया हुआ जो काव्य अलंकार सहित, श्रृंगारादि रसों से युक्त, सौन्दर्य से ओतप्रोत और उच्छिष्टतारहित अर्थात् मौलिक होता है वह काव्य सरस्वती देवी के मुख के समान शोभायमान होता है अर्थात् जिस प्रकार शरीर में मुख सबसे प्रधान अंग है उसके बिना शरीर की शोभा व स्थिरता नहीं होती उसी प्रकार सर्वलक्षणपूर्ण काव्य ही सब शास्त्रों में प्रधान है तथा उसके बिना अन्य शास्त्रों की शोभा और स्थिरता नहीं हो पाती।

अस्पृष्टबन्धलालित्यमपेतं रसवत्तया।
न तत्काव्यमिति ग्राम्यं केवलं कटु कर्णयोः।। (97)

जिस काव्य में न तो रीति की रमणीयता है, न पदों का लालित्य है और न रस का ही प्रवाह है उसे काव्य नहीं कहना चाहिए वह तो केवल कानों को दुःख देने वाली ग्रामीण भाषा ही है।

सुश्लिष्टपदविन्यासं प्रबन्धं रचयन्ति ये।
श्राव्यबन्धं प्रसन्नार्थं ते महाकवयो मताः।। (98)

जो अनेक अर्थों को सूचित करने वाले पद विन्यास से सहित, मनोहर रीतियों से युक्त एवं स्पष्ट अर्थ से उद्भासित प्रबन्धों-काव्यों की रचना करते हैं वे महाकवि कहलाते हैं।

महापुराणसंबन्धि महानायकगोचरम्।
त्रिवर्गफलसंदर्भ महाकाव्यं तदिष्यते।। (99)

जो प्राचीनकाल के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाला हो, जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के चरित्र चित्रण किया गया हो तथा जो धर्म, अर्थ और काम के फल को दिखाने वाला हो उसे महाकाव्य कहते हैं।

निस्तनन् कतिचिच्छ्लोकान् सर्वोपि कुरुते कविः।
पूर्वापरार्थघटनैः प्रबन्धो दुष्करो मतः।। (100)

किसी एक प्रकीर्णक विषय को लेकर कुछ श्लोकों की रचना तो सभी कवि

कर सकते हैं परन्तु पूर्वापरका सम्बन्ध मिलाते हुए किसी प्रबन्ध की रचना करना कठिन कार्य है।

शब्दराशिरपर्यन्तः स्वाधीनोऽर्थः स्फुटा रसाः।
सुलभाश्च प्रतिच्छन्दाः कवित्वे का दरिद्रता।। (101)

जब कि इस संसार में शब्दों का समूह अनन्त है, वर्णनीय विषय अपनी इच्छा के आधीन है, रस स्पष्ट हैं और उत्तमोत्तम छन्द सुलभ हैं तब कविता करने में दरिद्रता क्या है? अर्थात् इच्छानुसार सामग्री के मिलने पर उत्तम कविता ही करना चाहिए।

प्रयान्महति वाङ्मार्गे खिन्नोऽर्थगहनाटनैः।
महाकवितरुच्छायां विश्रमायाश्रयेत् कविः।। (102)

विशाल शब्दमार्ग में भ्रमण करता हुआ जो कवि अर्थरूपी सघन वनों में घूमने से खेद-खिन्नता को प्राप्त हुआ है उसे विश्राम के लिए महाकवि रूप वृक्ष की छाया का आश्रय लेना चाहिए। अर्थात् जिस प्रकार महावृक्षों की छाया से मार्ग की थकावट दूर हो जाती है और चित्त हलका हो जाता है उसी प्रकार महाकवियों के काव्यग्रन्थों के परिशीलन से अर्थाभाव से होने वाली सब खिन्नता दूर हो जाती है और चित्त प्रसन्न हो जाता हैं।

प्रज्ञामूलो गुणोदग्रस्कन्धो वाक्पल्लवोज्ज्वलः।
महाकवितरुर्धत्ति यशः कुसुममञ्जरीम्।। (103)

प्रतिभा जिसकी जड़ है, माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि गुण जिसकी उन्नत शाखाएँ हैं और उत्तम शब्द ही जिसके उज्ज्वल पत्ते हैं ऐसा यह महाकविरूपी वृक्ष यशरूपी पुष्पमञ्जरी को धारण करता है।

प्रज्ञावेलः प्रसादोर्मिर्गुणरत्नपरिग्रहः।
महाध्वानः पृथुस्त्रोताः कविरम्भोनिधीयते।। (104)

अथवा बुद्धि ही जिसके किनारे हैं, प्रसाद आदि गुण ही जिसमें लहरें हैं, जो गुणरूपी रत्नों से भरा हुआ है, उच्च और मनोहर शब्द से युक्त है तथा जिसमें गुरु शिष्य-परम्परा रूप विशाल प्रवाह चला आ रहा है ऐसा यह महाकवि समुद्र के समान आचरण करता है।

यथोक्तमुपयुञ्जीध्वं बुधाः काव्यरसायनम्।
येन कल्पान्तरस्थायि वपुर्वः स्याद् यशोमयम्।। (105)

हे विद्वान् पुरुषो! तुम लोग ऊपर कहे हुए काव्यरूपी रसायन का भरपूर उपयोग करो जिससे की तुम्हारा यशरूपी शरीर कल्पान्त काल तक स्थिर रह सके। भावार्थ- जिस प्रकार रसायन सेवन करने से शरीर पुष्ट हो जाता है उसी प्रकार ऊपर कहे हुए काव्य, महाकवि आदि के स्वरूप को समझकर कविता करने वाले का यश चिरस्थायी हो जाता है।

यशोधनं चिचीर्पूणां पुण्यपुण्यपणायिनाम्।
परं मूल्यमिहा ग्रातं काव्यं धर्मकथामयम्।। (106)

जो पुरुष यशरूपी धन का संचय और पुण्यरूपी पण्यका व्यवहार-लेनदेन करना चाहते हैं उनके लिए धर्मकथा को निरूपण करने वाला यह काव्य मूलधन (पूँजी) के समान माना गया है।

इदमध्यवसायाहं कथां धर्मानुबन्धिनीम्।
प्रस्तुवे प्रस्तुतां सभिर्महापुरुषगोचराम्।। (107)

यह निश्चय कर मैं ऐसी कथा को आरम्भ करता हूँ जो धर्मशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाली है, जिसका प्रारम्भ अनेक सज्जन पुरुषों द्वारा किया गया है तथा जिसमें ऋषभनाथ आदि महापुरुषों का वर्णन किया गया है।

विस्तीर्णानेकशाखाढ्यां सच्छायां फलशालिनीम्।
आयैर्निषेवितां रम्यां सतीं कल्पलतामिव।। (108)
प्रसन्नामतिगम्भीरां निर्मलां सुखशीतलम्।
निर्वापितजगत्तापां महतीं सरसीमिव।। (109)
गुरुप्रवाहसंभूतिमपङ्कां तापविच्छिदम्।
कृतावतारां कृतिभिः पुण्यां व्योमापगामिव ।। (110)
चेतः प्रसादजननीं कृतमंगलसंग्रहाम्।
क्रोडीकृतजगद्बिम्बां हसन्ती दर्पणश्रियम्।। (111)
कल्पाङ्घ्रिपादिवोत्तुङ्गादभीष्टफलदायिनः।
महाशाखामिवोदग्रां श्रुतस्कन्धादुपाह्यताम्।। (112)
प्रथमस्यानुयोगस्य गम्भीरस्योदधेरपि।
वेलामिव बृहद्ध्वानां प्रसृतार्थमहाजलाम्।। (113)
आक्षिप्ताशेषतन्त्रार्थां विक्षिप्तपरशासनाम्
सतां संवेगजननीं निर्वेदरसबृहिणीम्।। (114)

अद्भुतार्थामिमां दिव्यां परमार्थबृहत्कथाम्।
लम्भैरनेकैः संदृब्धां गुणाढ्यैः पूर्वसूरिभिः।। (115)
यशः श्रेयस्करीं पुण्यां भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम्।
पूर्वानुपूर्वीमाश्रित्य वक्ष्ये श्रृणुत सज्जनाः।। (116)

जो धर्मकथा कल्पलता के समान, फैली हुई अनेक शाखाओं (डालियों, कथा-उपकथाओं) से सहित है, छाया (अनातप, कान्ति नामक गुण) से युक्त है, फलों (मधुर फल, स्वर्ग मोक्षादिकी प्राप्ति) से शोभायमान है, आर्यों (भोगभूमिज मनुष्य, श्रेष्ठ पुरुषों) क्षरा सेवित है, मनोहर है और उत्तम है। अथवा जो धर्म-कथा बड़े सरोवर के समान प्रसन्न (स्वच्छ, प्रसाद गुण से सहित) है, अत्यन्त गंभीर (अगाध, गूढ अर्थ से युक्त) है, निर्मल (कीचड़ आदि से रहित, दुःश्रवत्व आदि रोगों से रहित) है, सुखकारी है, शीतल है, और जगत्त्रय के सन्ताप को दूर करने वाली है। अथवा जो धर्मकथा आकाशगंगा के समान गुरुप्रवाह (बड़े भारी प्रवाह, गुरुपरम्परा) से युक्त है, पंक (कीचड़, दोष) से रहित है, ताप (गरमी, संसार-भ्रमणजन्य खेद) को नष्ट करने वाली है, कुशल पुरुषों (देवों, गणधरादि चतुर पुरुषों) द्वारा किए गये अवतार (प्रवेश, अवगाहन) से सहित है और पुण्य (पवित्र, पुण्यवर्धक) रूप है। अथवा जो धर्मकथा चित्त को प्रसन्न करने, सब प्रकार के मंगलों का संग्रह करने तथा अपने-आपमें जगत् के प्रतिबिम्बित करने के कारण दर्पण की शोभा को हँसती हुई सी जान पड़ती है। अथवा जो धर्मकथा अत्यन्त उन्नत और अभीष्ट फलकों देने वाले श्रुतस्कन्धरूपी कल्पवृक्ष से प्राप्त हुई श्रेष्ठ बड़ी शाखा के समान शोभायमान हो रही है। अथवा जो धर्मकथा, प्रथमानुयोगरूपी गहरे समुद्र की वेला (किनारे) के समान महागम्भीर शब्दों से सहित है और फैले हुए महान् अर्थ रूप जल से युक्त है। जो धर्मकथा स्वर्ग मोक्षादि के साधक समस्त तन्त्रों का निरूपण करने वाली है, मिथ्यामत को नष्ट करने वाली है, सज्जनों के संवेग को पैदा करने वाली और वैराग्य रस को बढाने वाली है। जो धर्मकथा आश्चर्यकारी अर्थों से भरी हुई है, अत्यन्त मनोहर है, सत्य अथवा परम प्रयोजन को सिद्ध करने वाली है, अनेक बड़ी-बड़ी कथाओं से युक्त है, गुणवान् पूर्वाचार्यों द्वारा जिसकी रचना की गई है। जो यश तथा कल्याण को करने वाली है, पुण्यरूप है और स्वर्ग-मोक्षादि फलों को देने वाली है ऐसी उस धर्मकथा को मैं पूर्व आचार्यों की आम्नाय के अनुसार कहूँगा। हे सज्जन पुरुषो, उसे तुम सब ध्यान से सुनो।

कथाकथकयोरत्र श्रोतणामपि लक्षणम्।
व्यावर्णनीयं प्रागेव कथारम्भे मनीषिभिः।। (117)

बुद्धिमानों को इस कथारम्भ के पहले ही कथा, वक्ता और श्रोताओं के लक्षण अवश्य ही करना चाहिए।

पुरुषार्थोपायोगित्वात्त्रिवर्गकथनं कथा।
तत्रापि सत्कथां धर्म्यामामनन्ति मनीषिणः।। (118)

मोक्ष पुरुषार्थ के उपयोगी होने से धर्म, अर्थ तथा कामका कथन करना कथा कहलाती है। जिसमें धर्मका विशेष निरूपण होता है उसे बुद्धिमान् पुरुष सत्कथा कहते हैं।

तत्फलाभ्युदयाङ्गत्वादर्थकामकथा कथा।
अन्यथा विकथैवासावपुण्यास्त्रवकारणम्।। (119)

धर्म के फल स्वरूप जिन अभ्युदयों की प्राप्ति होती है उनमें अर्थ और काम भी मुख्य हैं अतः धर्म का फल दिखाने के लिए अर्थ और काम का वर्णन करना भी कथा कहलाती है। यदि यह अर्थ और काम की कथा धर्मकथा से रहित हो तो विकथा ही कहलायेगी और मात्र पापास्त्रवका ही कारण होगी।।

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयसार्थसंसिद्धिरञ्जसा।
सद्धर्मस्तान्निबध्दा या सा सद्धर्मकथा स्मृता।। (120)

जिसमें जीवों को स्वर्ग आदि अभ्युदय तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है वास्तव में वही धर्म कहलाता हैं उससे सम्बन्ध रखनेवाली जो कथा है उसे सद्धर्मकथा कहते हैं।

प्राहुर्धर्मकथाङ्गानि सप्त सप्तर्धिभूषणाः।
यैर्भूषिता कथाऽऽहायै र्नटीव रसिका भवेत्।। (121)

सप्त ऋद्धियों से शोभायमान गणधरादि देवों ने इस सद्धर्मकथा के सात अंग कहे हैं। इन सात अङ्गों से भूषित कथा अलंकारों से सजी हुई नटी के समान अत्यन्त सरस हो जाती है।

द्रव्यं क्षेत्रं तथा तीर्थं कालो भावः फलं महत्।
प्रकृतं चेत्यमून्याहुः सप्ताङ्गानि कथामुखे।। (122)

द्रव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल, भाव, महाफल और प्रकृत ये सात अंग कहलाते हैं। ग्रन्थ के आदि में इनका निरूपण अवश्य होना चाहिए।

द्रव्यं जीवादि षोढा स्यात्क्षेत्रं त्रिभुवनस्थितिः।
जिनेन्द्रचरितं तीर्थं कालस्त्रेधा प्रकीर्तितः।। (123)

प्रकृतं स्यात् कथावस्तु फलं तत्त्वावबोधनम्।
भावः क्षयोपशमजस्तस्य स्यात्क्षायिकोऽथवा।। (124)

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल यह छह द्रव्य हैं, उर्ध्व, मध्य और पाताल ये तीन लोक क्षेत्र हैं, जिनेन्द्रदेव का चारित्र ही तीर्थ है, भूत, भविष्यत् और वर्तमान यह तीन प्रकार का काल है, क्षायोपशमिक अथवा क्षायिक ये दो भाव हैं, तत्त्वज्ञान का होना फल कहलाता है, और वर्णनीय कथावस्तु को प्रकृत कहते हैं।

वक्ता का(कवि, गुरु का) लक्षण

तस्यास्तु कथकः सूरिः सद्वृतः स्थिरधीर्वशी।
कल्येन्द्रियः प्रशस्ताङ्गः स्पष्टमृष्टेष्टगीर्गुणः।। (126)आ.पु.
यः सर्वज्ञमताम्भोधिवा धौतविमलाशयः।
अशेषवाङ् मलापायादुज्ज्वला यस्य भारती।। (127)
श्रीमाञ्छितसभो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिभानवान्।
यः सतां संमतव्याख्यो वाग्विमर्दभरक्षमः।। (128)
दयालुर्वत्सलो धीमान् परेङ्गितविशारदः।
योऽधीती विश्वविद्यासु स धीरः कथयेत् कथाम्।। (129)

ऊपर कही हुई कथा का कहने वाला आचार्य वही पुरुष हो सकता है जो सदाचारी हो, स्थिरबुद्धि हो, इन्द्रियों को वश में करने वाला हो, जिसकी सब इन्द्रियाँ समर्थ हों, जिसके अंगोपांग सुन्दर हों, जिसके वचन स्पष्ट परिमार्जित और सबको प्रिय लगने वाले हों, जिसका आशय जिनेन्द्रमतरूपी समुद्र के जल से धुला हुआ और निर्मल हो, जिसकी वाणी समस्त दोषों के अभाव से अत्यन्त उज्जवल हो, श्रीमान् हो, सभाओं को वश में करने वाला हो, प्रशस्त वचन बोलने वाला हो, गम्भीर हो , प्रतिभा से युक्त हो, जिसके व्याख्यान को सत्पुरुष पसन्द करते हों, अनेक प्रश्न तथा कुतर्कों को सहने वाला हो, दयालु हो, प्रेमी हो, दूसरे के अभिप्राय को समझने में निपुण हो, जिसने समस्त विद्याओं का अध्ययन किया हो और धीर, वीर हो ऐसे पुरुष को ही कथा कहनी चाहिए।

नानोपाख्यानकुशलो नानाभाषाविशारदः।
नानाशास्त्रकलाभिज्ञः स भवेत् कथकाग्रणीः।। (130)

जो अनेक उदाहरणों के द्वारा वस्तुस्वरूप कहने में कुशल है, संस्कृत, प्राकृत आदि अनेक भाषाओं में निपुण है, अनेक शास्त्र और कलाओं का जानकार है वही उत्तम वक्ता कह जाता है।

नाङ्गुलीभङ्गनं कुर्यान्न भ्रुवौ नर्तयेद् ब्रुवन्।
नाधिक्षिपेत्न च हसेन्नात्युच्चैर्न शनैर्वदेत्।। (131)

वक्ता को चाहिए की वह कथा कहते समय अंगुलियाँ नहीं चटकावे, न भौंह ही चलावे, न किसी पर आक्षेप करे, न हँसे, न जोर से बोले और न धीरे ही बोले।

उच्चैः प्रभाषित्व्यं स्यात् सभामध्ये कदाचन।
तत्राप्यनुध्दतं ब्रूयाद् वचः सभ्यमनाकुलम्।। (132)

यदि कदाचित् सभाके बीच में जोर से बोलना पड़े तो उद्धतपना छोड़कर सत्य प्रमाणित वचन इस प्रकार बोले जिससे किसी को क्षोभ न हो।

हितं ब्रूयान्मितं ब्रूयाद् धर्म्यं यशस्करम्।
प्रसङ्गादपि न ब्रयादधर्म्यमयशस्करम्।। (133)

वक्ता को हमेशा वही वचन बोलना चाहिए जो हितकारी हो, परिमित हो धर्मोपदेश से सहित हो और यश करने वाला हो। अवसर आने पर भी अधर्मयुक्त तथा अकीर्ति को फैलाने वाले वचन नहीं करना चाहिए।

इत्यालोच्य कथायुक्तिमयुक्तिपरिहारिणीम्।
प्रस्तूयाद् यः कथावस्तु स शस्तो वदतां वरः।। (134)

इस प्रकार अयुक्तियों का परिहार करने वाली कथा की युक्तियों का सम्यक् प्रकार से विचार कर जो वर्णनीय कथावस्तु का प्रारम्भ करता है वह प्रशंसनीय श्रेष्ठ वक्ता समझा जाता है।

आक्षेपिणीं कथां कुर्यात् प्राज्ञः स्वमतसंग्रहे।
विक्षेपिणीं कथां तज्ज्ञः कुर्याद् दुर्मतनिग्रहे।। (135)
संवेदिनीं कथां पुण्यफलसंपत्प्रपञ्चने।
निर्वेदिनीं कथां कुर्याद् वैराग्यजननं प्रति।। (136)

बुद्धिमान् वक्ता को चाहिए कि वह अपने मत की स्थापना करते समय आक्षेपिणी कथा कहे, मिथ्या मत का खण्डन करते समय विक्षेपिणी कथा कहे, पुण्य के फलस्वरूप विभूति आदिका वर्णन करते समय संवेदिनी कथा कहे तथा वैराग्य उत्पादन के समय निर्वेदिनी कथा कहे।

इति प्रकार धर्मकथाङ्गत्वादर्थाक्षिप्तां चतुष्टयीम्।
कथां यर्थाह श्रोतृभ्यः कथकः प्रतिपादयेत्।। (137)

इस प्रकार धर्मकथा के अंगभूत आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदिनी और निर्वेदिनी रूप चारों कथाओं का विचार कर श्रोताओं की योग्यतानुसार वक्ता को कथन करना चाहिए।

श्रोता(शिष्य) का लक्षण

धर्मश्रुतौ नियुक्ता ये श्रोतारस्ते मता बुधैः।
तेषां च सदसभ्दावव्यक्तौ दृष्टान्तकल्पना।। (138)

जो हमेशा धर्मश्रवण करने में लगे रहते हैं विद्वानों ने उन्हें श्रोता माना है। अच्छे और बुरे के भेद से श्रोता अनेक प्रकार के हैं, उनके अच्छे व बुरे भावों के जानने के लिए नीचे लिखे अनुसार दृष्टान्तों की कल्पना की जाती है।

मृच्चालिन्यजमार्जारशुककङ्कशिलाहिभिः।
गोहंसमहिषच्छिद्रघटदंशजलौककैः।। (139)
श्रोतारः समभावाः स्युरुत्तमाधममध्यमाः।
अन्यादृशोऽपि सन्त्येव तत्किं तेषामियत्तया।। (140)

मिट्टी, चलनी, बकरा, बिलाव, तोता, बगुला, पाषाण, सर्प, गाय, हंस, भैंसा, फूटा घड़ा, डाँस और जोंक इस प्रकार चौदह प्रकार के श्रोताओं के दृष्टांत समझना चाहिए।

भावार्थ-

(1) जैसे मिट्टी पानी का संसर्ग रहते हुए कोमल रहती है, बाद में कठोर हो जाती है। इसी प्रकार जो श्रोता शास्त्र सुनते समय कोमल परिणाम हों परन्तु बाद में कठोर परिणामी हो जायें वे मिट्टी के समान श्रोता हैं।

(2) जिस प्रकार चलनी सारभूत आटे को नीचे गिरा देती और छोक को बचा रखती है उसी प्रकार जो श्रोता वक्ता के उपदेश में से सारभूत तत्व को छोड़कर निःसार तत्व को ग्रहण करते हैं वे चलनी के समान श्रोता है।

(3) जो अत्यन्त कामी हैं अर्थात् शास्त्रोपदेश के समय श्रृंगारका वर्णन सुनकर जिनके परिणाम श्रृंगार रूप हो जावें वे अजके समान श्रोता है।

(4) जैसे अनेक उपदेश मिलने पर भी बिलाव अपनी हिंसक प्रवृत्ति नहीं छोड़ता, सामने आते ही चूहे पर आक्रमण कर देता है उसी प्रकार जो श्रोता बहुत

प्रकार से समझाने पर भी क्रूरता को नहीं छोड़े, अवसर आने पर क्रूर प्रवृत्ति करने लगें वे मार्जार के समान श्रोता है।

(5) जैसे तोता स्वयं अज्ञानी है दूसरों के द्वारा कुछ कहलाने पर ही कुछ सीख पाता है वैसे ही जो श्रोता स्वयं ज्ञान से रहित हैं दूसरों के द्वारा कहलाने पर ही कुछ शब्द मात्र ग्रहण कर पाते हैं वे शुकके समान श्रोता है।

(6) जो बगुले के समान बाहर से भद्रपरिणामी मालूम होते हों परन्तु जिनका अंतरंग अत्यन्त दुष्ट हो वे बगुला के समान श्रोता हैं।

(7) जिनके परिणाम हमेशा कठोर रहते हों तथा जिनके हृदय में समझाये जाने पर जिनवाणी रूप जल का प्रवेश नहीं हो पाता वे पाषाण के समान श्रोता हैं।

(8) जैसे साँप को पिलाया हुआ दूध भी विष रूप हो जाता है वैसे ही जिनके सामने उत्तम से उत्तम उपदेश भी खराब असर करता है वे सर्प के समान श्रोता हैं।

(9) जैसे गाय तृण खाकर दूध देती है वैसे ही जो थोड़ा-सा उपदेश सुनकर बहुत लाभ लिया करते हैं वे गाय के समान श्रोता हैं।

(10) जो केवल सार वस्तु को ग्रहण करते हैं वे हंस के समान श्रोता हैं।

(11) जैसे भैंसा पानी तो थोड़ा पीता है पर समस्त पानी को गंदला कर देता है। इसी प्रकार जो श्रोता उपदेश तो अल्प ग्रहण करतें हैं परन्तु अपने कुतर्कों से समस्त सभा में क्षोभ पैदा कर देते हैं वे भैंसा के समान श्रोता हैं।

(12) जिनके हृदय में कोई भी उपदेश नहीं ठहरे वे छिद्र घटके समान श्रोता है।

(13) जो उपदेश तो बिलकुल ही ग्रहण न करें परन्तु सारी सभा को व्याकुल कर दें वे डाँस के समान श्रोता हैं।

(14) जो गुण छोड़कर सिर्फ अवगुणों को ही ग्रहण करें वे जोंक के समान श्रोता हैं।

इन ऊपर कहे हुए श्रोताओं के उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से तीन-तीन भेद होते हैं। इनके सिवाय और भी अन्य प्रकार के श्रोता हैं परन्तु उन सबकी गणना से क्या लाभ है?

गोहंससदृशान् प्राहुरुत्तमान् मृच्छुकोपमान्।
मध्यमान् विदुरन्यैश्च समकक्ष्योऽधमो मतः।। (141)

इन श्रोताओं में जो श्रोता गाय और हंस के समान हैं वे उत्तम कहलाते हैं, मिट्टी और तोता के समान हैं उन्हें मध्यम जानना चाहिए और बाकी सब श्रोता अधम माने गये हैं।

शेमुष्यब्दतुलादण्डनिकषोपसन्निभाः।
श्रोतारः सत्कथारत्नपरीक्षाध्यक्षका मताः।। (142)

जो श्रोता नेत्र, दर्पण, तराजू और कसौटी के समान गुण-दोषों के बतलाने वाले हैं वे सत्कथारूप रत्न के परिक्षक माने गये हैं।

श्रोता न चैहिकं किंचित्फलं वाञ्छेत्कथाश्रुतौ।
नेच्छेद् वक्ता च सत्कारधनभेषजसत्क्रियाः।। (143)

श्रोताओं को शास्त्र सुनने के बदले किसी सांसारिक फलकी चाह नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार वक्ता को भी श्रोताओं से सत्कार, धन, औषधि और आश्रय-घर आदि की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

श्रेयोऽर्थं केवलं ब्रूयात् सन्मार्गं श्रृणुयाच्च वै।
श्रेयोऽर्था हि सतां चेष्टा न लोकपरिपक्तये।। (144)

स्वर्ग, मोक्ष आदि कल्याणों की अपेक्षा रखकर ही वक्ता को सन्मार्ग का उपदेश देना चाहिए तथा श्रोता को सुनना चाहिए क्योंकि सत्पुरुषों की चेष्टाएँ वास्तविक कल्याण की प्राप्ति के लिए ही होती हैं अन्य लौकिक कार्यों के लिए नहीं।

श्रोता शुश्रूषताधैः स्वैर्गुणैर्युक्तः प्रशस्यते।
वक्ता च वत्सलत्वादियथोक्तगुणभूषणः।। (145)

जो श्रोता शुश्रूषा आदि गुणों से युक्त होता है वही प्रशंसनीय माना जाता है। इसी प्रकार जो वक्ता वात्सल्य आदि गुणों से भूषित होता है वही प्रशंसनीय माना जाता है।

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
स्मृत्यूहापोहनिर्णीतीः श्रोतुरष्टौ गुणान् विदुः।। (146)

शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, स्मृति, ऊह, अपोह और निर्णीति ये श्रोताओं के आठ गुण जानना चाहिए। भावार्थ - सत्कथा को सुनने की इच्छा होना शुश्रूषा गुण है, सुनना श्रवण है, समझकर ग्रहण करना ग्रहण है, बहुत समय तक उसकी धारणा रखना धारण है, पिछले समय ग्रहण किये हुए उपदेश आदिक स्मरण करना स्मरण है, तर्क द्वारा पदार्थ के स्वरूप के विचार करने की शक्ति होना ऊह है, हेय वस्तुओं को छोड़ना अपोह है और युक्ति-द्वारा पदार्थ का निर्णय करना निर्णीति गुण है। श्रोताओं में इनका होना अत्यन्त आवश्यक है।

सत्कथाश्रवणात् पुण्यं श्रोतुर्यदुपचीयते।
तेनाभ्युदय संसिद्धिः क्रमान्नैःश्रेयसी स्थितिः।। (147)

सत्कथा के सुनने से श्रोताओं को जो पुण्य का संचय होता है उससे उन्हें पहले तो स्वर्ग आदि अभ्युदयों की प्राप्ति होती है और फिर क्रम से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

राइटिंग मैनेजमेंट - सोचे भी कागज पर...

लिखते हुए कभी ये न सोचे कि आपका पाठक कौन है

पढ़ने से व्यक्ति का चरित्र बनना शुरू होता है और लिखने से ये पूरा हो जाता है। जब आप पढ़ते हैं तो दरअसल किसी और का ज्ञान अपने तई जजब कर रहे होते हैं। औरों के तजुर्बों से बहुत सीखने को मिलता है। जो लगातार पढ़ते रहते हैं, वे बहुत कुछ सीख चुके होते हैं और उनके व्यक्तिगत तजुर्बे भी उनके साथ होते हैं। यही मौका होता है, जब आप लिखना शुरू कर सकते हैं। लिखने से आप अपने विचारों के पीछे के भाव जल्दी समझने लगते हैं।

जीवन में सफलता पाने के लिए लिखना बहुत जरूरी है। जो भी काम आप करते हैं, लिख कर उसका एक रिकॉर्ड बना लेते हैं। लिखना रोज की आदत बना लेनी चाहिए। शुरुआत छोटे स्तर पर की जा सकती है। जैसे, रोज एक टू-डू लिस्ट बनाई जा सकती है या फिर डायरी लिखी जा सकती है। ज्यादातर ऑफिस में कर्मचारियों को लिखना और डॉक्यूमेंट करना नहीं सिखाया जाता है, जबकि ये जरूरी है। जब आप किसी मीटिंग के लिए जाते हैं तो हाथ में पेन और पैड भी होना चाहिए। मीटिंग में विस्तार से नोट्स बनाना आपके लिए हर तरह से फायदेमंद साबित होगा। मीटिंग खत्म होने तक लगभग हर पॉइंट आपके पेपर पर आ जाता है। जब भी कुछ सोचें तो पेपर पर ही सोचें। जो आइडिया आएं, उन्हें लिखते चले जाएं। लिखते हुए ये नहीं सोचना चाहिए कि आपका पाठक कौन है। आपको तब आश्चर्य होगा जब आप ही का लिखा कोई विचार किसी के द्वारा आगे बढ़ाया जाएगा।

मेडिटेशन

सीखने की क्षमता व याद्दाश्त बढ़ाना मुमकिन

पिछले हफ्ते हमने मेडिटेशन से हमारे दिमाग को होने वाले फायदे देखे थे। आज देखें कुछ और हिस्सों को होने वाले फायदे और विकसित होने वाली विशेषताएं:

हमारे मस्तिष्क के 'प्लेजर सेंटर्स' तब सबसे ज्यादा सक्रिय होते हैं जब हम चैरिटी के लिए दान करते हैं। अमेरिका के यूसीएलए स्कूल ऑफ मेडिसिन में शोधकर्ताओं ने पाया कि मेडिटेशन के वक्त मस्तिष्क का एंटीरियर डॉर्सल इंसुला नामक हिस्सा सक्रिय होता है। यह वही हिस्सा है जो करुणा दिखाते समय तरह चमकने लगता है। इससे चिंता व डिप्रेशन कम होते हैं, रोग प्रतिरोधक सिस्टम मजबूत होता है और लंबी उम्र मिलती है।

यूसी सैन डिएगो के विश्वविख्यात साइकियाट्रिस्ट डॉ. लैरी स्क्वायर ने शोध-पत्र में बताया कि दिमाग के हिप्पोकैम्पस का सीखने और याददाश्त से संबंध है। लीक प्रूफ मेमोरी और सुपर लर्निंग कैपेसिटी के लिए हिप्पोकैम्पस का विकास संभव है। मेडिटेशन करने वालों के मस्तिष्क की स्टडी में पाया गया कि उनमें हमेशा ही अत्यधिक विकसित हिप्पोकैम्पस होते हैं।

बरसों तक आईक्यू को सफलता की कुंजी माना गया पर ख्यात मनोवैज्ञानिक डॉ. डेनियल गोलमैन ने 'इमोशनल इंटेलिजेंस (ईक्यू)' को सफलता का निर्धारक तत्व सिद्ध किया। यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनॉय में 2013 के शोध में पाया गया कि सोशल इंटरेक्शन जैसी ईक्यू एक्टिविटी में मस्तिष्क का टेम्पेरो पैराइटल जंक्शन (टीपीजे) रोशन हो जाता है।

मेडिटेशन से टीपीजे का विकास होता है। ऐसा करके आप ईक्यू बढ़ाकर सेल्फ मोटिवेशन, इमोशनल बैलेंस, सोशल ग्रेस, सेल्फ अवेयरनेस जैसे कई गुण बढ़ा सकते हैं।

दिलों का नूर हैं अच्छी किताबें

किताबें मित्रों में सबसे शांत और स्थिर हैं, वे सलाहकारों में सबसे सुलभ और बुद्धिमान हैं और शिक्षकों में सबसे धैर्यवान हैं। - चार्ल्स विलियम एलियट

पढ़ने के बहुत से लाभ हैं। रिसर्च बताते हैं कि जो व्यक्ति डांस, म्युजिक और पढ़ने को अपनी दिनचर्या का हिस्सा बनाते हैं उन लोगों का स्वास्थ्य अन्य लोगों की तुलना में ज्यादा बेहतर रहता है। साथ ही पढ़ना तनाव को कम करने का असरदार रास्ता भी है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि जो किताबे हम फुरसत के समय पढ़ते हैं, उनसे दिल और दिमाग को आराम पहुँचता है। मगर अध्ययन के लिए बहुत दिमागी कसरत करनी पड़ती है। इस मसले पर फ्रांसिस बेकन ने भी कहा है, कुछ किताबों

को चखना पड़ता है। कुछ को निगलना और कुछ को तो अच्छी तरह चबाकर पचाना पड़ता है। लेकिन शोधकर्ताओं का कहना है कि इन्हें चाहे जिस रूप में ग्रहण किया जाए यह हर तरह से फायदेमंद हैं।

- रात को अगर पढ़कर सोया जाए, तो नींद अच्छी आती है।
- अगर आप अच्छी किताब पढ़ते हैं, तो दूसरे दिन आपके शरीर और दिमाग दोनों में जोश भर जाता हैं।
- चाय के मुकाबले किताब पढ़ने से जल्दी ही नसों को आराम मिलता है।
- किताबों से दोस्ती ज्ञान का भंडार भरती है और मूड रिफ्रेश हो जाता है।
- दिमाग लम्बे समय तक जवां रहता है, रचनात्मक कार्यों में मदद मिलती है, व्यक्ति 32 प्रतिशत अधिक ताजा रहता है।
- याददाश्त बढ़ती है और व्यक्ति की सोचने समझने की शक्ति में इजाफा होता है।
- आईक्यू बढ़ता है, रचनाशील सवालों के सटीक जवाब देने की क्षमता बढ़ती है।
- तनाव दूर होता है व्यक्ति के शरीर में हार्मोन में बदलाव होता है व मन शांत होता है।

पर तभी, जब आप जो पढ़ें वो सकारात्मक हो, आत्मविश्वास बढ़ाने वाला हो, जीवन में आशा, विश्वास जगाने वाला हो, सार्थक हो।

उजाले की ओर

शिक्षण की पूरी कला केवल युवा मनों में जिज्ञासा का प्राकृतिक गुण जगाने की कला हैं ताकि बाद में उस जिज्ञासा की पूर्ति की जा सके। खुद जिज्ञासा भी उतनी ही जीवंत और पूर्ण होगी, जितना मन संतुष्ट व प्रसन्न होगा।

-एंतोले फ्रांस, फ्रांसीसी कवि

महान मनो-मस्तिष्क में जिज्ञासा सबसे पहला और अंतिम जुनून होता है।

- सैमुअल जॉनसन, आलोचक व जीवनीकार

कोई प्रश्न मूर्खतापूर्ण नहीं, कोई व्यक्ति मूढ़ नहीं हो सकता जब तक कि वह प्रश्न पूछना बंद न करे।

- चार्ल्स स्टीनमेट्ज, गणितज्ञ

बोरियत का इलाज है जिज्ञासा लेकिन जिज्ञासा का कोई इलाज नहीं हैं।

- डोरोथी पार्कर, कवि व व्यंग्यकार

जिज्ञासा को शांत करना किसी भी व्यक्ति के लिए प्रसन्नता का सबसे बड़ा स्त्रोत हैं।

- डॉ. लाइनस पॉलिग, केमिस्ट

एक बार खुद में भरोसा हो जाए तो हम जिज्ञासा, आश्चर्य, अचानक मिलने वाले खुशी या ऐसे किसी भी अनभुव का जोखिम ले सकते हैं,, जो मानव आत्मा को उजागर करता हो।

- ईई कमिंग्स, चित्रकार, नाटककार

वे लोग जिनकी मुख्य प्रवृति जिज्ञासा होती है उन्हें तथ्यों को इकट्ठा करने में, उन पर विचार करने से कहीं अधिक मजा आता है।

- क्लेरेंस डे, लेखक, कार्टूनिस्ट

हर रहस्य और गोपनीयता के उजागर होने के इंतजार में रहना जिज्ञासा है।

- राल्फ वाल्डो एमरसन, कवि व निबंधकार

लाखों लोगों ने सेब गिरते देखा पर सिर्फ न्यूटन ने ही पूछा, क्यों?

- बर्नार्ड बरुच, निवेशक व राजनियक

किसी व्यक्ति का आकलन उसके उत्तरों की बजाय उसके प्रश्नों से करें।

- वोल्तेयर, दार्शनिक व इतिहासकार

लोगों के बारे में नहीं, आइडियाज के बारे में ज्यादा जिज्ञासा रखें।

- मेरी क्यूरी, वैज्ञानिक

सत्य सनातन (शाश्वत)

(हर द्रव्य (सत्य) जो अभी विद्यमान है वह भूतपूर्व अनन्त काल में था और अनन्त भविष्यकाल तक रहेगा)

(चाल :- आत्मशक्ति ... क्या मिलिए ...)

जो द्रव्य अभी हैं वे थे पूर्व में, तथाहि रहेंगे भविष्य में।
'सत् द्रव्य लक्षणं' होने के कारण, सत्य/(द्रव्य) न नाश होता तीनों काल में
द्रव्य यदि वे पूर्व में न थे, कहाँ आयेगें वे द्रव्य अभी।
अभी यदि वे द्रव्य विद्यमान हैं, भविष्य में नाश न होंगे कभी।। (1)

भले उनमें होते उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, तथापि अभाव न होते कभी।
शुद्ध में शुद्ध तो अशुद्ध में अशुद्ध, तथाहि मूर्तिक-अमूर्तिक में नियमसे।
सत् न होता विनाश कभी न असत् का होता कभी उत्पन्न।
जो कुछ होता उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, वे सभी सत्य में होते सत्पन्न।। (2)

यह सिद्धान्त है सार्वभौम, वैश्विक व अनादि-अनिधन।
इससे ही सम्पूर्ण वैश्विक व्यवस्था, कभी न हो सकता उल्लंघन।।
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक व, आत्मा से ले परमात्मा सिद्ध तक।
धर्मअधर्म व आकाश-काल में, ये ही प्रक्रिया होती सदाकाल।। (3)

मेरा (कवि) उदाहरण मैं देता हूँ, मैं अभी हूँ तो रहूँगा सदाकाल।
अनादि अनन्तकाल तक रहूँगा, कालावधि दृष्टि से हर द्रव्य मेरे सम।।
अनादि से हूँ मैं अशुद्ध रूप से, क्योंकि अभी मैं नहीं हूँ शुद्धसिद्ध।
शुद्धसिद्ध होने से मुझ में होते, अनन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य-अमूर्तिक।। (4)

अभी मुझ में नहीं प्रगट अनन्तज्ञानादि, किन्तु क्षायोपशमिक गुणयुक्त।
भौतिक तन-मन-इन्द्रिय सहित, अतः मैं न शुद्ध-बुद्ध आनंद युक्त।
इस अशुद्ध के कारण अनन्तकाल से हुआ मेरा पंचपरिवर्तन।
संसार चक्र में चतुर्गति में चौरासी लाख योनि में हुआ जन्म-मरण।। (5)

तथापि मेरा न हुआ विनाश क्योंकि मैं शुद्ध रूप से हूँ आत्मद्रव्य।
अतः अशुद्ध अवस्था में मेरा, हो रहा अशुद्ध उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य।।
आत्मशुद्धि से जब मैं बनूँगा शुद्ध, शुद्ध रूप में होंगे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य।
संसार चक्र में पुनः न होगा भ्रमण, शाश्वतिक रूप में रहूँगा शुद्ध।। (6)

ऐसा ही सभी जीव भी ज्ञेय, पुद्गल शुद्ध से पुनः हो जाते अशुद्ध।
तथापि एक अणु भी न होते नष्ट, धर्मअधर्मआकाशकाल सदा ही शुद्ध।।
षट् द्रव्यमय होता है विश्व अतः, विश्व भी है सनातन सत्य।
सर्वज्ञ ही जानते हैं पूर्ण परम सत्य, दार्शनिक-वैज्ञानिकों से भी अज्ञात सत्य।। (7)

ये सत्य हैं आवाक् व मनसे अगोचर, इन्द्रिय-यंत्रों से होते अगोचर।
'अतएव सत्य ही परम परमेश्वर' इसे ज्ञात हेतु 'कनक' प्रयत्नशील।। (8)

ओबरी 11/02/2018 रात्रि 02:38

(विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत कृतियाँ 1. ब्रह्माण्डीय जैविक रसायन विज्ञान 2. अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा 3.विश्व विज्ञान रहस्य 4. ब्रह्माण्डीय गीताञ्जली आदि का अध्ययन करे।)

द्रव्य का लक्षण

अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं।
गुणवं च सपज्जायं जं तं दव्वं ति वुच्चंति।। (95)-प्र.सा.

That is called a substance which is endowed with qualities and accompanied by modifications and which is coupled with origination, destruction and permanence without leaving its nature (of existence).

(यत्) जो (अपरिच्चतसहावेण) अभिन्न स्वभाव रूप से रहता है अर्थात् अपने अस्तित्व या सत् स्वभाव से भिन्न नहीं है, (उत्पाद व्ययधुवत्तसंजुत्त) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित है। (गुणवं च सपज्जायं) गुणवान होकर पर्याय-सहित है, इस तरह सत्ता आदि तीन लक्षणों को रखने वाला है (तं दव्व त्ति) उसको द्रव्य ऐसा (वुच्चंति) सर्वज्ञ भगवान् कहते हैं।

यह द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्य तथा गुण पर्यायों के साथ लक्ष्य और लक्षण की अपेक्षा भेद रूप होने पर भी सत्ता के भेद को उसका विशेष स्वरूप है, वह लक्षण है। तब यह द्रव्य क्या करता है? अपने स्वरूप से ही उस विधपने को आलंबन करता है। इसका भाव यह है कि यह द्रव्य शुद्धात्मा की तरह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप तथा गुणपर्याय रूप परिणमन करता है।

केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय में शुद्ध आत्मा के स्वरूप ज्ञानमयी निश्चल अनुभवरूप कारणसमयसार रूप पर्याय का विनाश होते हुए शुद्धात्मा का लाभ या उसकी प्रगटता रूप कार्यसमयसार का उत्पाद या जन्म होता है और इन दोनों पर्यायों के आधार रूप परमात्म द्रव्य की अपेक्षा से ध्रुवपना या स्थिरपना रहता है तथा उस परमात्मा के अनंतज्ञानादि गुण होते हैं। गतिमार्गणा से विपरीत सिद्धगति व इन्द्रिय मार्गणा से विपरीत अतींद्रियपना आदि लक्षण की रखने वाली शुद्ध पर्यायें होती हैं अर्थात् वह परमात्मद्रव्य जैसे अपनी शुद्धसत्ता से भिन्न नहीं है, एक है, पूर्व में कहे हुए उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वभावों से तथा गुण पर्यायों से संज्ञा लक्षण प्रयोजन आदि की अपेक्षा से भेद रूप होने पर भी उनके साथ सत्ता आदि के भेद को नहीं रखता है, स्वरूप से ही उसी प्रकार पने को पधारण करता है अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप तथा गुण पर्याय स्वरूप रूप परिणमन करता है। तैसे ही सर्वद्रव्य अपने-अपने यथायोग्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपने से तथा गुण पर्यायों के साथ यद्यपि संज्ञा लक्षण प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद रखते हैं तथापि सत्ता स्वरूप से भेद नहीं रखते हैं, स्वभाव से ही उन प्रपकार-रूपखपने को आलम्बन करते हैं, अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप या गुण पर्याय-स्वरूप परिणमन करते हैं। अथवा जैसे वस्त्र सब स्वच्छ किया जाता है तब अपनी निर्मल पर्याय से उत्पन्न होता है, मलिन पर्याय से नष्ट होता है और इन दोनों के आधार स्वरूप वस्त्र स्वभाव से ध्रुव या अविनाशी है तैसे ही अपने ही श्वेतादिगुण तथा मलिन या स्वच्छ पर्यायों के साथ संज्ञा आदि की अपेक्षा भेद होने पर भी सत्ता रूप से भेद नहीं रखता है, तब क्या करता है? स्वरूप से ही उत्पाद आदि रूप से परिणमन करता है, तैसे ही सर्व द्रव्य परिणमन करते हैं, यह अभिप्राय है।

यहां (इस विश्व में) वास्तव में जो, स्वभाव भेद किये बिना उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य त्रय से और गुण पर्यायद्वय से लक्षित होता है वह द्रव्य है। इनमें से (स्वभाव, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यगुण और पर्याय में से) वास्तव में द्रव्य का स्वभाव अस्तित्व सामान्य रूप अन्वय है। अस्तित्व को तो दो प्रकार का आगे कहेंगे - 1. स्वरूप अस्तित्व 2. सादृश्य अस्तित्व। उत्पाद प्रादुर्भाव (प्रगट होना, उत्पन्न होना) है व्यय, प्रच्युति (नष्ट होना) है ध्रौव्य, अवस्थिति (टिकना) है, गुण, विस्तार विशेष है। वे सामान्य-विशेषात्मक होने से दो प्रकार का है। इनमें, अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अन्यत्व, पर्यायत्व, सर्वगतत्व, असर्वगतत्व, भोक्तृत्व, अगुरुलघुत्व इत्यादि सामान्य

गुण हैं। अवगाह-हेतुत्व, गतिनिमित्तता, स्थितिकारणत्व, वर्तनायनत्व, रूपादिमत्व, चेतनत्व इत्यादि विशेष गुण है। पर्याय आयत विशेष है। वे पूर्व ही (93वीं गाथा की टीका में) कही गई चार प्रकार की है। द्रव्य का उन उत्पादादि के साथ अथवा गुण पर्यायों के साथ लक्ष्य-लक्षण भेद होने पर भी स्वरूप भेद नहीं है (सत्ता भेद नहीं है) स्वरूप से ही द्रव्य वैसा होने से (अर्थात् द्रव्य ही स्वयं उत्पादि रूप तथा गुणपर्याय रूप परिणमन करता है, इस कारण स्वरूप भेद नहीं है) वस्त्र के समान।

जैसे मलिन अवस्था को प्राप्त वस्त्र, धोने पर निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ उस उत्पाद रूप लक्षित होता (देखा जाता) है, किन्तु उसका उस उत्पाद के साथ स्वरूप भेद (सत्ता भेद) नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है (अर्थात् स्वयं उत्पाद रूप से ही परिणत है) उसी प्रकार जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की है ऐसा द्रव्य भी जो कि उचित बहिरंग साधनों के सान्निध्य के सद्भाव में अनेक प्रकार की बहुत-सी अवस्थाएँ करता है- अन्तरंग साधनभूत स्वरूपकर्त्ता और स्वरूपकरण के सामर्थ्य रूप स्वभाव से अनुगृहीत (सहित) हुआ अवस्था से उत्पन्न होता हुआ, उत्पाद रूप लक्षित होता देखा जाता है, किन्तु उसका उस उत्पाद के साथ स्वरूप भेद सत्ता भेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है।

और जैसे वही वस्त्र निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ और मलिन अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है, परन्तु उसका उस व्यय के साथ स्वरूप भेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है, उसी प्रकार वही द्रव्य भी उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ और पूर्व अवस्था से व्यय को प्राप्त होता हुआ उस व्यय से लक्षित होता है, परन्तु उसका उस व्यय के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है।

और जैसे वही वस्त्र एक ही समय में निर्मल अवस्था से उत्पन्न होता हुआ मलिन अवस्था में व्यय को प्राप्त हुआ और टिकने वाली वस्त्रत्व अवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है परन्तु उसका उस ध्रौव्य के साथ स्वरूप भेद नहीं है, स्वरूप से ही वैसा है, इसी प्रकार वही द्रव्य भी एक ही समय उत्तर अवस्था से उत्पन्न होता हुआ, पूर्व अवस्था से व्यय होता हुआ और टिकनेवाली द्रव्यत्व अवस्था से ध्रुव रहता हुआ ध्रौव्य से लक्षित होता है, किन्तु उसका उस ध्रौव्य के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है।

और जैसे वही वस्त्र विस्तार विशेष स्वरूप (शुक्लत्वादि) गुणों से लक्षित

होता है, किन्तु उसका उन गुणों के साथ स्वरूप भेद नहीं है, स्वरूप में ही वैसा है, इसी प्रकार वही द्रव्य भी विस्तार विशेष स्वरूप गुणों से लक्षित होता है, किन्तु उसका उन गुणों के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है। जैसे वही वस्त्र आयत विशेष रूप पर्यायवतर्त्ती (पर्यायस्थानीय) तंतुओं से लक्षित होता है, किन्तु उसका उन तंतुओं के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है। उसी प्रकार वही द्रव्य भी आयत विशेष स्वरूप पर्यायों से लक्षित होता है, परन्तु उसका उन पर्यायों के साथ स्वरूप भेद नहीं है, वह स्वरूप से ही वैसा है।

समीक्षा - आचार्य श्री ने गाथा नं. 93 में द्रव्य का सामान्य से कथन करके पुनः इस गाथा में विशेष कथन कर रहे हैं। द्रव्य का विशेष कथन करने का कारण यह है कि सम्पूर्ण विश्व द्रव्य से ही निर्मित है और यहां तक कि जीव भी चैतन्यमय द्रव्य है। जब द्रव्य का सांगोपांग परिज्ञान होगा तब सम्यग्दर्शन में भी अधिक विशुद्धता एवं दृढ़ता आयेगी तथा भेद विज्ञान के बल से अनादिकाल से जो अन्य द्रव्यों से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सम्बन्ध है। राग द्वेष तथा मोह है उसको त्याग करके स्व-शुद्धात्म द्रव्य को प्राप्त कर सकता है, यह हुआ आध्यात्मिक रहस्य। दूसरा कारण यह है कि वस्तु का सूक्ष्म व्यापक परिज्ञान करते समय मन एवं इन्द्रियां स्थिर रहती है, भावों में विशुद्धता आती है, जिससे पाप कर्म का संवर होता है, पुण्य का आस्रव होता है जो परम्परा के लिए मोक्ष का कारण बनता है। द्रव्य का लक्षण करते हुए आचार्य उमास्वामी ने भी कहा है-

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः। (41) मोक्षशास्त्र

जो निरन्तर द्रव्य में रहते हैं और गुण रहित हैं वे गुण हैं।

जिसमें गुण आश्रय लेते हैं अर्थात् जिसमें गुण रहते हैं वह आश्रय है। गुणों को कोई न कोई आश्रय चाहिए, गुण आश्रय के बिना नहीं रह सकते और द्रव्य को छोड़कर अन्य आधार हो नहीं सकता।

जो नित्य द्रव्य के आश्रय से रहता है, वह गुण है। यद्यपि पर्यायें भी द्रव्य में रहती हैं, परन्तु पर्यायें कदाचित् हैं अतः 'द्रव्याश्रयाः' इस पद से पर्यायों का ग्रहण नहीं होता है। अतः 'द्रव्याश्रयाः' इस पद से अन्वयी धर्म गुण है ऐसा सिद्ध होता है। जैसे कि, जीव के अस्तित्वादि और ज्ञान दर्शन आदि गुण हैं और पुद्गल के अचेतनत्व आदि रूप-रसादि गुण हैं।

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य दव्वदो अण्णे।

दव्वाणंतियमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति।। (44)-पंचास्तिकाय

प्रदेशों की अपेक्षा भी द्रव्य से गुण अलग-अलग हो तो जो अनंतगुण वे अलग-अलग होकर अनंत द्रव्य हो जावेंगे और द्रव्य से जब सब गुण भिन्न हो गए तब द्रव्य का नाश हो जाएगा। यहाँ पूछते हैं कि गुण किसी के आश्रय या आधार से रहते हैं या वे आश्रय बिना होते हैं? यदि वे आश्रय से रहते हैं ऐसा कोई माने और उसको और कोई दोष दे तो यह कहना होगा कि, जो अनंत ज्ञान आदि गुण जिस किसी एक शुद्ध आत्म द्रव्य में आश्रयरूप है उस आत्म-द्रव्य से यदि वे गुण भिन्न-भिन्न हो जावें, इसी तरह दूसरे शुद्ध जीव द्रव्य में भी अनंत गुण हैं वे भी जुदे-जुदे हो जावें तब यह फल होगा कि शुद्धात्म द्रव्यों से अनंत गुणों के जुदा होने पर शुद्ध आत्मद्रव्य अनंत हो जावेंगे। जैसे ग्रहण करने योग्य परमात्म द्रव्य में गुण और गुणी का भेद होने पर द्रव्य की अनंतता कही गई वैसी ही त्यागने योग्य अशुद्ध जीव द्रव्य में तथा पुद्गलादि द्रव्यों में भी समझ लेनी चाहिये अर्थात् गुण और गुणी का भेद होते हुए मुख्य या गौणरूप एक-एक गुण का मुख्य या गौण एक-एक द्रव्य आधार होते हुए द्रव्य अनंत हो जावेगा तथा द्रव्य के पास से जब गुण चले जायेंगे तब द्रव्य का अभाव हो जायेगा जबकि यह कहा है कि गुणों का समुदाय द्रव्य है। यदि ऐसे गुण समुदाय का रूप द्रव्य से गुणों का एकांत से सर्वथा, भेद माना जायेगा तो गुण समुदाय स्वरूप का अस्तित्व द्रव्य कहाँ रहेगा? किसी भी तरह नहीं रह सकता है।

अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमण्णतं।
णिच्छंति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं।। (45)

जैसे परमाणु का वर्णादि गुणों के साथ अभिन्नपना है अर्थात् उनमें परस्पर प्रदेशों का भेद नहीं है तैसे शुद्ध जीव द्रव्य का केवलज्ञानादि प्रगटरूप स्वाभाविक गुणों के साथ और अशुद्ध जीव का मतिज्ञान आदि प्रगट रूप विभाग गुणों के साथ तथा शेष द्रव्यों का अपने-अपने गुणों के साथ यथासंभव एकापना है अर्थात् द्रव्य और गुणों के भिन्न-भिन्न प्रदेशों का अभाव जानना चाहिये। निश्चय स्वरूप के ज्ञाता जैनाचार्य, जैसे- हिमाचल और विध्याचल पर्वत में भिन्नपना है अथवा एक क्षेत्र में रहते हुए जल और दुध का भिन्न प्रदेशपना है ऐसा भिन्नपना द्रव्य और गुणों का नहीं मानते हैं तो भी एकान्त से द्रव्य और गुणों का अन्यपने से विपरीत एकपना भी नहीं मानते हैं अर्थात् जैसे द्रव्य और गुणों में प्रदेशों की अपेक्षा अभिन्नपना है तैसे संज्ञा आदि की अपेक्षा से भी एकपना है। ऐसा नहीं मानते हैं अर्थात् एकांत से द्रव्य और गुणों का न

एकपना मानते हैं, न भिन्नपना मानते हैं। बिना अपेक्षा के एकत्व और अन्यत्व दोनों को नहीं मानते हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न अपेक्षा से भेदाभेद दोनों स्वभावों को मानते हैं। प्रदेशों की एकता से एकपना है। संज्ञादि की अपेक्षा द्रव्य और गुणों का अन्यपना है ऐसा आचार्य मानते हैं।

ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा।
ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जंते।। (46)

कथन या संज्ञा के भेद, आकार के भेद, संख्या या गणना और विषय या आधार ये बहुत प्रकार के होते हैं। ये चारों उन द्रव्य और गुणों की एकता में तैसे ही उसकी भिन्नपना में होते हैं।

णाणं धणं कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू।। (47)

जैसे धन का अस्तित्व भिन्न है और धनी पुरुष का अस्तित्व भिन्न है, इसलिये धन और धनी का नाम भिन्न है, धन का आकार भिन्न है, धनी पुरुष का आकार भिन्न है, धन की संख्या भिन्न है, धनी पुरुष की संख्या भिन्न है, धन का आधार भिन्न है, धनी का आधार भिन्न है तो भी धन को रखने वाला धनी है, ऐसा जो कहना है सो भेद या पृथक्त्व व्यवहार है। तैसे ही ज्ञान का अस्तित्व ज्ञानी से अभिन्न है ऐसे ज्ञान का अभिन्न अस्तित्व रखने वाले ज्ञानी आत्मा के साथ अभेद कथन हैं, ज्ञान का नाम ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी का नाम ज्ञान से अभिन्न है, ज्ञान की संस्थान ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी की संस्थान ज्ञान से अभिन्न है, ज्ञान की संख्या ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी की संख्या ज्ञान से अभिन्न है ज्ञान का आधार ज्ञानी से अभिन्न है, ज्ञानी का आधार ज्ञान से अभिन्न है। इस तरह ज्ञान और ज्ञानी में अपृथक्त्व या अभेद कथन है। इन दोनों दृष्टांतों के अनुसार द्रष्टान्त विचार लेना चाहिये, जहाँ भिन्न-भिन्न द्रव्य हो उनके नामादि भिन्न जानना चाहिये।

णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदा दु अण्णमण्णस्स।
दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं।। (48)

जैसे यदि अग्नि गुणी अपने गुण उष्णपने से अत्यन्त भिन्न हो जावे तो अग्नि दग्ध करने के कार्य को न कर सकने से निश्चय से शीतल हो जावे। उसी प्रकार जीव गुणी अपने ज्ञान गुण से भिन्न हो जावे तो पदार्थ को जानने में असमर्थ होने से जड़ हो जावे। जैसे उष्ण गुण से अग्नि अत्यन्त भिन्न यदि मानी जावे तो दहन क्रिया के प्रति

असमर्थ होने से शीतल हो जावे तैसे ही ज्ञान गुण से अत्यन्त भिन्न यदि ज्ञानी जीव माना जावे तो वह पदार्थ के जानने को असमर्थ होता हुआ अचेतन जड़ हो जावे, तब ऐसा हो जावे जैसे देवदत्त हसियारे से उसका घास काटने का दतीला भिन्न है, वैसे ज्ञान से ज्ञानी भिन्न हो जावे तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है। दतीला तो छेदने के कार्य में मात्र बाहरी उपकरण है परन्तु भीतरी उपकरण तो वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न पुरुष का वीर्य विशेष है। यदि भीतर शक्ति न हो तो दतीला हाथ में होते हुये भी छेदने का काम नहीं हो सकता है। तैसे ही प्रकाश, गुरु आदि बाहरी सहकारी कारणों के होते हुए यदि पुरुष में भीतर ज्ञान का उपकरण न हो तो वह पदार्थ को जानने रूप कार्य नहीं कर सकता है।

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धोय।
तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धिति णिद्दिट्ठा।। (50)

जैन मत में समवाय उसी को कहते हैं जो साथ-साथ रहते हों अर्थात् जो किसी अपेक्षा एकरूप से अनादिकाल से तादात्म्य सम्बन्ध या न छूटने वाला सम्बन्ध रखते हो ऐसा साथ वर्तन गुण और गुणी का होता है। इससे दूसरा कोई अन्य से कल्पित समवाय नहीं है। यद्यपि गुण और गुणी में संज्ञा, लक्षण प्रयोजनादि की अपेक्षा भेद है तथापि प्रदेशों का भेद नहीं है इसके वे अभिन्न हैं तथा जैसे दंड और दंडी पुरुष का भिन्न-भिन्न प्रदेशपनारूप भेद हैं तथा वे दोनों मिल जाते हैं, ऐसा भेद गुण और गुणी में नहीं है। इससे इनमें अयुतसिद्धपना (अभेदपना) या एकपना कहा जाता है। इस कारण द्रव्य और गुणों का अभिन्नपना सदा से सिद्ध है। इस व्याख्यान में यह अभिप्राय है कि जैसे जीव के साथ ज्ञान गुण का अनादि तादात्म्य सम्बन्ध कहा गया है तथा वह श्रद्धान करने योग्य है वैसे ही जो अव्याबाध, अप्रमाण, अविनाशी व स्वाभाविक रागादि दोष रहित परमानंदमई एक स्वभाव रूप पारमार्थिक सुख है इसको आदि लेकर जो अनंत गुण केवलज्ञान में अंतर्भूत है उनके साथ ही जीव का तादात्म्य सम्बन्ध जानना योग्य है तथा उसी ही जीव को रागादि विकल्पों को त्यागकर निरन्तर ध्याना चाहिये।

वण्णरसगंधफासा परमाणुरूविदा विसेसेहिं।
दव्वादो य अण्णणा अण्णत्तपगासगा होंति।। (51)
दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि।
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हि णो सभावादो।। (52)

निश्चय से वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, परमाणु में कहे हुए गुण पुद्गल द्रव्य से अभिन्न हैं तो भी व्यवहार से संज्ञादि की अपेक्षा भेदपने के प्रकाशक हैं तैसे जीव से तादात्म्य सम्बन्ध रखने वाले दर्शन और ज्ञान गुण जीव से अभिन्न हैं सो संज्ञा आदि से परस्पर भिन्नपना करते हैं। निश्चय से स्वभाव से पृथक्पना नहीं करते हैं; क्योंकि द्रव्य और गुणों का अभिन्न अन्वय रूप से सम्बन्ध हैं।

गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे।। (61) (उत्तराध्ययन)

द्रव्य, गुणों का आश्रय है, आधार है। जो प्रत्येक द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण होते हैं। पर्यव अर्थात् पर्यायों का लक्षण दोनों के अर्थात् द्रव्य और गुणों को आश्रित रहता है।

पर्यायें विभिन्न प्रकार की होती है। शुद्ध द्रव्य की शुद्ध पर्याय तो अशुद्ध द्रव्य की अशुद्ध पर्याय। मूर्तिक द्रव्य की मूर्तिक पर्याय तो अमूर्तिक द्रव्य की अमूर्तिक पर्याय। चैतन्य द्रव्य की चैतन्य पर्याय तो, अचैतन्य द्रव्य की अचैतन्य पर्याय। कुछ पर्यायें स्वाभाविक होती है तो कुछ प्रायोगिक भी। विभिन्न पर्यायों का वर्णन सन्मति सूत्र में विभिन्न प्रकार से किया है। यथा -

उप्पाओ दुवियप्पो पओगजणिओ य वीससा चैव।
तत्थ उ पओगजणिओ समुदयवाओ अपरिसुद्धो।। (32)(सन्मति सूत्र)

उत्पाद दो प्रकार का है - प्रयोगजन्य तथा स्वाभाविक। इनमें से प्रयोगजन्य उत्पाद को समुदायवाद भी कहते हैं, जिसका दूसरा नाम अपरिशुद्ध है।

साभाविओ वि समुदयकओव्व एगंतिओ व्व होज्जाहि।
आगासाईआणं तिण्हं पर पच्चओ अणियमा।। (33)

स्वाभाविक उत्पाद भी दो प्रकार का है- समुदायकृत और एकत्विक।

एकत्विक उत्पाद, धर्म, अधर्म और आकाश इन तीनों में परप्रत्यय निमित्तक होने से अनियत है। स्ववभाविक समुदाय कृत उत्पाद किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा उत्पन्न नहीं होता है किन्तु एकत्विक उत्पाद वैयक्तिक कहा जाता है। इसे परसाक्षेप इसलिए कहा गया है कि जब जीव और पुद्गल द्रव्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं, तब धर्म द्रव्य उदासीन कारण रूप से उनकी सहायता करता है। ''अणियमा'' पद से भी यह सूचित होता है कि ये स्वयं जीव और पुद्गल को नहीं चलाते हैं किन्तु

जिस प्रकार पथिक को ठहरने में छाया उदासीन और अप्रेरक निमित्त हैं, वैसे ही यहां भी समझना चाहिए।

स्वरूप अस्तित्व का लक्षण

सब्भावो हि सहावो गुणोंहिं स पज्जएहिं चित्तेहिं।
दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं।। (96)

The nature of the substance is existence accompanied by qualities, by its variegated modifications and by origination, destruction and permanence for all the time.

(चित्तेहिं गुणेहिं सगपज्जएहिं) नाना प्रकार के अपने गुण और अपनी पर्यायों के साथ सिद्ध जीव की अपेक्षा से अपने केवल ज्ञान आदि गुण तथा अंतिम शरीर से कुछ कम आकार रूप अपनी पर्याय तथा सिद्ध गतिपना, अतीन्द्रियपना, कायरहितपना, योगरहितपना, वेदरहितपना इत्यादि नाना प्रकार की अपनी अवस्थाओं के साथ और (उप्पादव्वयधुवत्तेहिं) उत्पाद व्यय ध्रौव्यपने के साथ सिद्ध जीव की अपेक्षा से शुद्ध आत्मा की प्राप्ति रूप मोक्ष पर्याय का उत्पाद, रागद्वेषादि विकल्पों से रहित परसमाधि रूप मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय तथा मोक्षमार्ग और मोक्ष के आधारभूत चले जाने वाले द्रव्यपने का लक्षण रूप ध्रौव्यपना। इन तीन प्रकार उत्पाद व्यय ध्रौव्य के साथ (द्रव्यस्स) द्रव्य का अर्थात् मुक्तात्मा रूपी द्रव्य का (सव्वकालं) सर्व कालों में अर्थात् सदा ही (सब्भावो) शुद्ध अस्तित्व है या उसकी शुद्ध सत्ता है। (हि) सो ही निश्चय करके (सहावो) उसका निज भाव या निज रूप है, क्योंकि मुक्तात्मा इनके साथ अभिन्न हैं इसका हेतु यह है कि गुण पर्यायों के अस्तित्व से तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यपने के अस्तित्व से ही शुद्ध आत्मा के द्रव्य का अस्तित्व साधा जाता है और शुद्ध आत्मा के द्रव्य के अस्तित्व का और उत्पाद व्यय ध्रौव्ययपने का अस्तित्व साधा जाता है।

किस तरह परस्पर साधा जाता है सो बताते हैं - जैसे सुवर्ण के पीतपना आदि गुण तथा कुंडल आदि पर्यायों का जो सुवर्ण के द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा सुवर्ण से भिन्न नहीं है, जो अस्तित्व है वही सुवर्ण का अपना अस्तित्व है या सद्भाव है। तैसे ही मुक्तात्मा के केवलज्ञान आदि गुण और अंतिम शरीर से कुछ कम आकार आदि पर्यायों का जो मुक्तात्मा के द्रव्य क्षेत्र काल भावों की अपेक्षा परमात्म द्रव्य से भिन्न नहीं है, जो अस्तित्व है वही मुक्तात्मा द्रव्य का अपना अस्तित्व या सद्भाव है

और जैसे सुवर्ण अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावों की अपेक्षा अभिन्न है, उस सुवर्ण का जो अस्तित्व है, वही पीतपना आदि गुण तथा कुंडल आदि पर्यायों का अस्तित्व या निज भाव है। तैसे ही मुक्तात्मा के केवलज्ञान आदि गुण और अंतिम शरीर से कुछ कम आकार आदि पर्यायों के साथ जो मुक्तात्मा अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावों की अपेक्षा अभिन्न है, उस मुक्तात्मा का जो अस्तित्व है, वही केवलज्ञानादि गुण तथा अंतिम शरीर से कुछ कम आकार आदि पर्यायों का अस्तित्व या निजभाव जानना चाहिए। अब उत्पाद व्यय ध्रौव्य का भी द्रव्य के साथ जो अभिन्न अस्तित्व है उसको कहते हैं।

जैसे सुवर्ण के द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा सुवर्ण से अभिन्न कटक पर्याय का उत्पाद और ककंण पर्याय का विनाश तथा सुवर्णपने का ध्रौव्य इनका जो अस्तित्व है वही सुवर्ण का अस्तित्व व उसका निज भाव या स्वरूप है। तैसे ही परमात्मा के द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा परमात्मा से अभिन्न मोक्ष पर्याय का उत्पाद और मोक्षमार्ग पर्याय का व्यय तथा इन दोनों के आधारभूत परमात्म द्रव्यपने का ध्रौव्य इनका जो अस्तित्व है, वही मुक्तात्मा द्रव्य का अस्तित्व या उसका निजभाव या स्वरूप है और जैसे अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा कटक पर्याय का उत्पाद और कंकण पर्याय का व्यय तथा इन दोनों के आधारभूत सुवर्णपने का ध्रौव्य इनके साथ अभिन्न जो सुवर्ण उसका जो अस्तित्व है वही कटक पर्याय का उत्पाद कंकण पर्याय का व्यय तथा इन्हीं दोनों के आधारभूत सुवर्णपनारूप ध्रौव्य इन्हीं का अस्तित्व या निज भाव या स्वरूप है। तैसे ही अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा मोक्ष पर्याय का उत्पाद और मोक्षमार्ग पर्याय का व्यय तथा दोनों के आधारभूत मुक्तात्मा द्रव्यपनारूप ध्रौव्य इनके साथ अभिन्न जो परमात्मा द्रव्य उसका जो अस्तित्व है, वही मोक्ष पर्याय का उत्पाद, मोक्षमार्ग पर्याय का व्यय तथा इन दोनों के आधारभूत मुक्तात्मा द्रव्यरूप ध्रौव्य इनका अस्तित्व या निजभाव या स्वरूप है। इस तरह जैसे मुक्तात्मा द्रव्य का अपने ही गुण पर्याय और उत्पाद व्यय ध्रौव्य के साथ स्वरूप का अस्तित्व या अवान्तर अस्तित्व अभिन्न स्थापित किया गया है तैसे ही सर्व द्रव्यों का भी स्वरूप-अस्तित्व या अवान्तर अस्तित्व स्थापित करना चाहिये, इस गाथा का यह अर्थ है।

अस्तित्व वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है और वह (अस्तित्व) (1) अन्य साधन से निरपेक्ष होने के कारण से (2) अनादि-अनन्त, अहेतुक, एक रूप वृत्ति से सदा ही प्रवृत्त होने के कारण से (3) विभाव धर्म से विलक्षण होने से (4) भाव और भाववानता के भाव से अनेकत्व होने पर भी प्रदेशभेद न होने से, द्रव्य के साथ

एकत्व को धारण करता हुआ द्रव्य का स्वभाव ही क्यों न हो? (अवश्य होवे) वह अस्तित्व, जैसे भिन्न-भिन्न द्रव्यों में प्रत्येक में समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार द्रव्य गुण पर्याय में प्रत्येक में समाप्त नहीं हो जाता, क्योंकि वास्तव में परस्पर में साधित सिद्धि (युक्त होने से) अर्थात् द्रव्य गुण और पर्याय एक दूसरे से परस्पर सिद्ध होते हैं इसलिये, यदि एक न हो तो दूसरे दो भी सिद्ध नहीं होते, (इसलिये) उनका अस्तित्व एक ही है, सुवर्ण की भाँति।

जैसे वास्तव में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सुवर्ण से पृथक् न प्राप्त होने वाले तथा सुवर्ण के अस्तित्व से बने हुए पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों के द्वारा जो (अस्तित्व) से बने हुए पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों के द्वारा जो अस्तित्व है वह (अस्तित्व), कर्ता-करण-अधिकरण रूप से पीतत्वदि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान सुवर्ण का स्वभाव है। उसी प्रकार वास्तव में द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव से पृथक् प्राप्त न होने वाले तथा द्रव्य के अस्तित्व से बने हुए गुणों और पर्यायों के द्वारा जो अस्तित्व है, वह (अस्तित्व), कर्ता-करण-अधिकरण रूप से गुणों के और पर्यायों के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान प्रवृत्तियुक्त द्रव्य का स्वभाव है। अथवा जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से पीतत्वादि गुणों से और कुण्डलादि पर्यायों से पृथक् प्राप्त नहीं होने वाले तथा कर्ता-करण अधिकरण रूप से सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों से निष्पन्न होने वाले सुवर्ण का, मूल साधन रूप से उनसे (पीतत्वादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों से) निष्पन्न हुआ अस्तित्व स्वभाव है। इसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, या भाव से गुणों से और पर्यायों से जो पृथक् नहीं दिखाई देने वाले तथा कर्ता-करण-अधिकरण रूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान गुणों और पर्यायों से निष्पन्न होने वाले द्रव्य का, मूलसाधन रूप से उनसे (गुणों और पर्यायों से) हुआ अस्तित्व स्वभाव है।

जैसे वास्तव में द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से सुवर्ण से पृथक् नहीं प्राप्त होने वाले तथा सुवर्ण के अस्तित्व से बने हुये कुण्डलादि के उत्पाद, बाजू, बंधादि के व्यय और पीतत्वादि के ध्रौव्य से जो अस्तित्व है, वह (अस्तित्व) कर्ता करण-अधिकरण रूप से कुण्डलादि के उत्पाद को, बाजू बंधादि के व्यय और पीतत्वादि के ध्रौव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान प्रवृत्तियुक्त सुवर्ण का स्वभाव है। अथवा, जैसे द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से कुण्डलादि के उत्पाद

से बाजू बंधादि के व्यय से और पीतत्वादि के ध्रौव्य से पृथक् नहीं प्राप्त होने वाले तथा कर्ता-करण-अधिकरण रूप से सुवर्ण के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान कुण्डलादि के उत्पाद से, बाजू बंधादि के व्यय से और पीतत्वादि के ध्रौव्य से निष्पन्न होने वाले सुवर्ण का, मूलसाधन रूप उनसे (कुण्डलादि के उत्पाद से), बाजू बंधादि के व्यय से पीतत्वादि के ध्रौव्य से निष्पन्न हुआ, जो अस्तित्व है, वह (अस्तित्व) स्वभाव है। इसी प्रकार द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से या भाव से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से पृथक् नहीं प्राप्त होने वाले तथा कर्ता-करण-अधिकरण रूप से द्रव्य के स्वरूप को धारण करके प्रवर्तमान उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से निष्पन्न होने वाले द्रव्य का, मूल साधनपने से उनसे (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से) निष्पन्न हुआ जो अस्तित्व है, वह (अस्तित्व) स्वभाव है।

(उत्पाद से, व्यय से और ध्रौव्य से भिन्न न दिखाई देने वाले द्रव्य का अस्तित्व वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का ही अस्तित्व है, क्योंकि द्रव्य के स्वरूप को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ही धारण करते हैं, इसलिये उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य के अस्तित्व से ही द्रव्य की निष्पत्ति होती है। यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हो तो द्रव्य भी न हो। ऐसा अस्तित्व वह अस्तित्व द्रव्य का स्वभाव है।)

समीक्षा - विश्व अस्तित्व स्वरूप है तथा विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी अस्तित्ववान् है। विश्व में पूर्ण अवास्तविक/असत्तावान् कोई द्रव्य का अस्तित्व ही नहीं है। निषेधपरक जो कथन होता है वह कथन भी सापेक्ष विधि से युक्त होता है। जिस प्रकार कहा जाता है कि आकाश कुसुम नहीं है, गधे के सींग नहीं हैं। वंध्या के पुत्र नहीं है, परन्तु यह कथन भी सापेक्ष है। भले आकाश कुसुम नहीं, पर आकाश भी है और कुसुम भी है, गधे के सींग नहीं होते हैं परन्तु गधे भी हैं, सींग भी हैं, वन्ध्या के पुत्र नहीं हैं, परन्तु वन्ध्या भी होती है और किसी न किसी के पुत्र भी होते हैं। इसलिए जो शून्यवादी विश्व को मानते हैं वह मिथ्या है। जो ब्रह्मा (परमात्मा) को ही सत्य मानते हैं और जगत् को मिथ्या मानते हैं, क्योंकि यह वैज्ञानिक सिद्ध सत्य सिद्धान्त है कि -

Matter and energy neither be created nor destroyed. Each can be completely changed into another form or into one another.

किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती। केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है। समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है-

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रिया कारक मत्र युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति।। (7)

सब प्रकार से नित्य वस्तु उत्पन्न होती है, न नष्ट ही होती है और न इस मान्यता में क्रियाकारक भाव ही संगत होता है ; क्योंकि असत्-अविद्यमान पदार्थ का जन्म नहीं होता और सत्-विद्यमान पदार्थ का नाश नहीं होता। यदि कहा जाय कि जलता हुआ दीपक बुझा देने पर उसमें क्या शेष रह जाता है। यहाँ तो सत् का नाश मानना ही पड़ेगा तो उसका उत्तर यह है कि दीपक तमः पुद्गल भावतः अस्ति। अन्धकार रूप पुद्गल द्रव्य के रूप में विद्यमान रहता है।

नारायण कृष्ण ने भी गीता में उपर्युक्त सिद्धान्त को स्वीकार किया है, यथा-

नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्तवदर्शिभिः।। (6)(गीता)

असत् का अस्तित्व नहीं है और सत् का नाश नहीं है। इन दोनों का निर्णय ज्ञानियों ने जाना है।

अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।। (17)

जिससे यह अखिल जगत् व्याप्त है उसे तू अविनाशी जान। इस अव्यय का नाश करने में कोई समर्थ नहीं है।

प्रत्येक द्रव्य तीन काल में अस्तित्व रूप में अवश्य होगा क्योंकि यह अस्तित्व उसका अपना स्वभाव है और स्वभाव को कोई द्रव्य छोड़ता नहीं है और स्वभाव का अभाव नहीं होता है यदि स्वभाव का अभाव हो जायेगा तो द्रव्य ही नष्ट हो जायेगा, परन्तु यह तीन लोक में, तीन काल में नष्ट होता नहीं है क्योंकि तीन लोक में, तीन काल में ऐसा नहीं पाया जाता है।

स्वभावलाभादच्युतत्वादस्ति स्वभावः (106)(आलाप पद्धति)

जिस द्रव्य को जो स्वभाव प्राप्त है, उससे कभी भी च्युत नहीं होना अस्ति स्वभाव है।

ऐसे अस्तित्ववान् द्रव्य है, वह द्रव्य भी अपरिवर्तनशील नहीं है जो अपरिवर्तनशील होगा उसका अस्तित्व भी नहीं होगा। इसलिए प्रत्येक द्रव्य पुरातन होते हुए भी नित्य-नूतन है। आधुनिक चिन्तकों के अनुसार भी विश्व विकासशील है परन्तु यह सम्पूर्ण विकास द्रव्य में ही होता है, अस्तित्व में ही होता है, सत्य में ही होता

है। इसलिये तीन काल की जो अवस्थाओं का समुच्चय है उसे ही द्रव्य कहते हैं। वीरसेन स्वामी ने धवला में भी कहा है-

एय-दवियम्मि जे अत्थ-पज्जया वयण-पज्जया वावि।
तीदाणागय-भूदा तावदियं तं हवइ दव्वं।। (199)

एक द्रव्य में अतीत, अनागत और गाथा में आये हुए 'अपि' शब्द से वर्तमान पर्याय रूप जितनी अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय हैं तत्प्रमाण वह द्रव्य होता है।

परिवर्तनशीलता केवल मूर्तिक द्रव्य का स्वभाव नहीं है परन्तु अमूर्तिक द्रव्य का भी स्वभाव है। किन्तु मूर्तिक, मूर्तिक रूप में परिणमन होता है, अमूर्तिक में अमूर्तिक रूप में, शुद्ध में शुद्ध रूप में एवं अशुद्ध में अशुद्ध रूप में परिणमन होता है। परिणमन के लिये बाह्य काल द्रव्यादि की आवश्यकता है। तथापि अन्तरंग कारण अगुरु लघु गुण है। अमूर्तिक द्रव्य में जो परिणमन होता है उसका विशेष तर्क पूर्ण वर्णन वीरसेन स्वामी ने निम्न प्रकार से किया है-

ननु धर्मादयोऽपरिणामिनो नित्यैक रूपेणावस्थिता दृश्यन्ते इति च?

शंका - जो वस्तु पूर्व क्षण में थी वही उत्तर क्षण में है। इस प्रकार जो अन्वय प्रत्यय होता है वह व्यतिरेक प्रत्यय का बाधक है।

समाधान - नहीं, क्योंकि यदि अन्वय प्रत्यय व्यतिरेक प्रत्यय का बाधक हो सकता है तो व्यतिरेक प्रत्यय भी अन्वय प्रत्यय का बाधक क्यों नहीं हो जाता है?

शंका - आपके मत में भी धर्मादिक द्रव्य अपरिणामी है, अतः वे नित्य और एकरूप में अवस्थित देखे जाते हैं?

समाधान - नहीं, क्योंकि सक्रिय जीव और पुद्गल द्रव्यों के परिणमन करते रहने पर उनके उपकारक धर्मादिक द्रव्यों को सर्वथा अपरिणामी मानने में विरोध आता है।

तथा वस्तु सर्वथा क्षणिक भी नहीं है क्योंकि सर्वथा क्षणिक वस्तु में भाव और अभाव दोनों प्रकार से अर्थक्रिया नहीं बन सकती है। अर्थात् क्षणिक वस्तु भावरूप होती है तब भी अर्थ क्रिया नहीं कर सकती; क्योंकि जिस क्षण में वह उत्पन्न होती है उस क्षण में तो कुछ काम कर सकना उसके लिए सम्भव नहीं है। वह क्षण तो उसके आत्म लाभ का है और दूसरे क्षण में नष्ट हो जाती है, इसलिये दूसरे क्षण में भी उसमें अर्थक्रिया नहीं बन सकती है तथा अभाव रूप दशा में भी वह अर्थक्रिया नहीं हो सकती है; क्योंकि जो वस्तु नष्ट हो जाती है उसमें अर्थक्रिया नहीं हो सकती है तथा

सर्वथा क्षणिक वस्तु प्रत्यक्ष का विषय नहीं है; क्योंकि सर्वथा क्षणिक वस्तु में प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति मानने में विरोध आता है और प्रत्यक्ष के द्वारा सर्वथा क्षणिक वस्तु का ग्रहण पाया भी नहीं जाता है। इस विषय में उपयोगी श्लोक देते हैं-

नानूमानमपि तद्ग्राहकम्, निर्विकल्पे सविकल्पस्य वृत्ति विरोधात्।
ततो न क्षणिकमस्ति। नोभयरूपम् विरोधात्।
नानुभय रूपम्, निःस्वभावतापत्तेः।। उक्तञ्च

अनुमान भी सर्वथा क्षणिक वस्तु का ग्राहक नहीं है; क्योंकि सर्वथा क्षणिक वस्तु निर्विकल्प है, अतः उसमें सविकल्प ज्ञान की प्रवृत्ति मानने में विरोध आता है। अतः सर्वथा क्षणिक वस्तु नहीं बनती है। सर्वथा नित्यानित्य रूप वस्तु भी सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि सर्वथा नित्यता और सर्वथा अनित्यता का परस्पर में विरोध है, अतः वे दोनों धर्म एक वस्तु में नहीं रह सकते हैं तथा सर्वथा अनुभय रूप भी वस्तु सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि वस्तु को सर्वथा अनुभय रूप मानने पर अर्थात् उसको कथंचित्, नित्य, अनित्य और उभय इन तीनों रूप न मानने पर निःस्वभावता की आपत्ति प्राप्त होती है अर्थात् वस्तु निःस्वभाव हो जाती है। कहा भी है -

उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं।। (95)

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा पदार्थ नियम से उत्पन्न होते हैं और नाश को प्राप्त होते हैं तथा द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वे सदा अविनष्ट और अनुत्पन्न स्वभाव वाले हैं। अर्थात् द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा पदार्थों का न तो कभी उत्पाद होता है और न कभी नाश होता है, वे सदा ध्रुव रहते हैं।

दव्वं पज्जवविउयं दव्वविउत्ता य पज्जया णत्थि।
उप्पायट्ठिदि भंगा हंदि दवियलक्खणं एयं।। (96)

द्रव्य पर्याय के बिना नहीं होता और पर्याय द्रव्य के बिना नहीं होती; क्योंकि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, ये तीनों द्रव्य के लक्षण हैं।

एदपुण संगहदो पादेक्कमलक्खणं दुवण्हं पि।
तम्हा मिच्छाइट्ठी पादेक्कं वे वि मूलणया।। (97)

ये उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों मिलकर ही द्रव्य के लक्षण होते हैं। द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय का जो जुदा-जुदा विषय है वह द्रव्य का लक्षण नहीं है। अर्थात् केवल उत्पाद और व्यय तथा केवल ध्रौव्य द्रव्य का लक्षण नहीं है इसलिये अलग-

अलग दोनों मूलनय मिथ्यादृष्टि है।

नात्र संसार-सुख-दुःख-मोक्षाश्चसम्भवन्तिः
नित्यानित्यैकान्त-योस्तद्विरोधात्। उक्तञ्च-

सर्वथा द्रव्यार्थिक नय का सर्वथा पर्यायार्थिक नय के मानने पर संसार सुख, अनित्यैकान्त की अपेक्षा संसारादिक के मानने में विरोध आता है। कहा भी है-

ण य दव्वट्ठिय पक्खे संसारो णेव पज्जवणयस्स।
सासय वियत्तिवायौ जम्हा उच्छेदवादीया।। (98)

द्रव्यार्थिक नय के पक्ष में संसार नहीं बन सकता है। उसी प्रकार सर्वथा पर्यायार्थिक नय के पक्ष में भी संसार नहीं बन सकता है; क्योंकि द्रव्यार्थिक नय नित्य व्यक्तिवादी है और पर्यायार्थिक नय उच्छेद वादी है।

सुह दुक्ख संपजोओ संभवइण णिच्चवाय पक्खम्मि।
एयंतुच्छेदम्मि वि सुह दुक्खवियप्पण जुत्तं।। (99)

सर्वथा नित्यवाद के पक्ष में जीव का सुख और दुःख से सम्बन्ध नहीं बन सकता है तथा सर्वथा अनित्यवाद के पक्ष में भी सुख और दुःख की कल्पना नहीं बन सकती है।

कम्मं जोअ णिमित्तं वज्झइ कम्मट्ठिदी कसायवसा।
अपरिणदुच्छिण्णेसु अबंधट्ठिदी कारणं णत्थि।। (100)

योग के निमित्त से कर्म बंध होता है और कषाय के निमित्त से बांधे गये कर्म में स्थिति पड़ती है। परन्तु सर्वथा अपरिणामी और सर्वथा क्षणिक पक्ष में बन्ध और स्थिति का कारण नहीं बन सकता है।

बंधम्मि अपूरंते संसार भओहदंसणं मोज्झं।
बंधेण विणा मोक्ख सुह पत्थणा णत्थि मोक्खोय।। (101)

कर्मबन्ध का सद्भाव नहीं मानने पर संसार सम्बन्धी अनेक प्रकार के भय का विचार केवल मूढ़ता है। तथा कर्म बन्ध के बिना मोक्ष सुख की प्रार्थना और मोक्ष ये दोनों भी नहीं बनते हैं।

तम्हा मिच्छादिट्ठी सव्वे वि णया सपक्खपडिबद्धा।
अण्णोण्णाणिस्सिय उण लहंति सम्मत्त सब्भावं।। (102)

चूंकि वस्तु को सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य मानने पर बन्धादि के कारण रूप योग और कषाय नहीं बन सकते हैं तथा योग और कषाय के मानने पर

वस्तु सर्वथा नित्य अथवा अनित्य नहीं बन सकती है, इसलिये केवल अपने-अपने पक्ष से प्रतिबद्ध ये सभी नय मिथ्यादृष्टि हैं। परन्तु यदि ये सभी नय परस्पर सापेक्ष हों तो समीचीनपने को प्राप्त होते हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि होते हैं।

भावैकान्ते पदार्थानामभावानाम् पह्नवात्।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमताकम्।।(103)

पदार्थ सर्वथा सत्स्वरूप ही है इस प्रकार के निश्चय को भावैकान्त कहते हैं। उसके मानने पर अर्थात् पदार्थों को सर्वथा सत् स्वीकार करने पर प्रागभाव आदि चारों अभावों का अपलाप करना होगा अर्थात् उनके होते हुए भी उनकी सत्ता को अस्वीकार करना पड़ेगा। और ऐसा होने से हे जिन! आपके स्याद्वाद शासन से भिन्न सांख्य आदि के द्वारा माने गये पदार्थ इतरेतराभाव के बिना सर्वात्मक, प्रागभाव के बिना अनादि, प्रध्वंसाभाव के बिना अनन्त और अत्यन्ताभाव के बिना निःस्वरूप हो जाते हैं।

पदार्थ न केवल भावात्मक ही है और न केवल अभावात्मक ही है किन्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा भावात्मक और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और भाव की अपेक्षा अभावात्मक होने से भावाभावात्मक हैं। यदि ऐसा न माना जाय तो प्रतिनियत पदार्थ की व्यवस्था ही नहीं बन सकती है जैसे घट-घट ही है घट पट नहीं है। यह व्यवस्था तभी बन सकती है। जब घट का स्वचतुष्टय की अपेक्षा सद्भाव और पटादि की अपेक्षा अभाव स्वीकार किया जाय। यदि घट में स्वचतुष्टय के समान परचतुष्टय से भी सत्व स्वीकार कर लिया जाय तो घट केवल घट नहीं रह सकता उसे पट रूप होने का भी प्रसंग प्राप्त होता है। अतः घट भावरूप भी है और अभावरूप भी है, यह निष्कर्ष निकलता है। किन्तु जो इतर एकांतवादी मत ऐसा नहीं मानते हैं और वस्तु को केवल भावरूप ही स्वीकार करते हैं वे पदार्थों में विद्यमान अभाव धर्म का अपलाप करते हैं जिसके कारण उनकी तत्व व्यवस्था में चार महान् दूषण आते हैं जो कि संक्षेप में मूल में बतलाये हैं, आगे उन्हीं दूषणों को स्पष्ट करके बतलाते हैं।

कार्यद्रव्य मनादि स्यात्प्राग भावस्य निह्नवे।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत्।। (104)

कार्य के स्वरूप लाभ करने से पहले उसका जो अभाव रहता है वह प्रागभाव है। दूसरे शब्दों में जिसका अभाव नियम से कार्य रूप पड़ता है वह प्रागभाव है। उसका अपलाप करने पर कार्य द्रव्य घट पटादि अनादि हो जाते हैं तथा कार्य का

स्वरूप लाभ के पश्चात् जो अभाव होता है वह प्रध्वंसाभाव है। दूसरे शब्दों में जो कार्य के विघटन रूप है वह प्रध्वंसाभाव है। उसके अपलाप करने पर घट पटादि कार्य अनन्त अर्थात् अन्तरहित अविनाशी हो जाते हैं।

कार्य की पूर्ववर्ती पर्याय को प्रागभाव और उत्तरवर्ती पर्याय को प्रध्वंसाभाव कहते हैं। यदि उसकी पूर्व पर्याय और उत्तर पर्याय में घटादि रूप कार्य द्रव्य स्वीकार किया जाता है, तो घट के उत्पन्न होने के पहले और विनाश होने के अनन्तर भी उससे जल धारणादि कार्य होने चाहिये पर ऐसा होता हुआ नहीं देखा जाता है। इससे प्रतीत होता है कि कार्य रूप वस्तु अनादि और अनन्त न होकर सादि और शान्त है। फिर भी जो सर्वथा सत्कार्यवादी सांख्यादि कार्य को सर्वथा सत् स्वीकार करते हैं उनके यहाँ प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव नहीं बन सकते हैं और उनके नहीं बनने से कार्य द्रव्य को अनादि और अनन्तपने का प्रसंग प्राप्त होता है जो कि युक्त नहीं है।

सर्वात्मक तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे।
अन्यत्र समवाये न व्यपदिश्येत सर्वथा।। (105)

एक द्रव्य की एक पर्याय का उसी की दूसरी पर्याय में जो अभाव है उसे अन्यापोह या इतरेतराभाव कहते हैं। इस इतरेतराभाव के अपलाप करने पर प्रतिनियत द्रव्य की सभी पर्यायें सर्वात्मक हो जाती है। रूपादिक का स्वसमवायी पुद्गलादिक से भिन्न जीवादिक में समवेत होना अन्यत्र समवाय कहलाता है। यदि इसे स्वीकार किया जाता है अर्थात् यदि अत्यन्ताभाव का अभाव माना जाता है तो पदार्थ का किसी भी असाधारण रूप से कथन नहीं किया जा सकता है।

आशय यह है कि इतरेतराभाव को नहीं मानने पर एक द्रव्य की विभिन्न पर्यायों में कोई भेद नहीं रहता, सब पर्यायें सब रूप हो जाती हैं तथा अत्यन्ताभाव को नहीं मानने पर सभी वादियों के द्वारा माने गये अपने-अपने मूल तत्वों में कोई भेद नहीं रहता एक तत्व दूसरे तत्वरूप हो जाता है। ऐसी हालत में जीव द्रव्य चैतन्य गुण की अपेक्षा चेतन ही है और पुद्गल द्रव्य अचेतन ही है ऐसा नहीं कहा जा सकता है, अतः अभावों का सर्वथा अपलाप करके भावैकान्त मानना ठीक नहीं है।

अभावैकान्त पक्षेऽपि भावापन्हववादिनाम्।
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधन दूषणम्।। (106)

जो वादी भावरूप वस्तु को स्वीकार नहीं करते हैं, उनके अभावैकान्त पक्ष में भी बोध अर्थात् स्वार्थानुमान और वाक्य अर्थात् परार्थानुमान प्रमाण नहीं बनते हैं।

ऐसी अवस्था में स्वमत का साधन किस प्रमाण से करेंगे और परमत में दूषण किस प्रमाण से देंगे।

भावैकान्त में दोष बतलाकर अब अभावैकान्त में दोष बतलाते हैं। बौद्धमत का माध्यमिक सम्प्रदाय भावरूप वस्तु को स्वीकार नहीं करता है। उसके मत से जग में शून्य को छोड़कर सद्रूप कोई पदार्थ नहीं है। अतः उसके मत में सभी पदार्थों के अभाव रूप होने से प्रमाण भी अभाव रूप ही ठहरता है। इस प्रकार प्रमाण के अभाव रूप हो जाने से उसके द्वारा वे अभावैकान्त का साधन कैसे कर सकते हैं और अपने विरोधियों के मत में दूषण भी कैसे दे सकते हैं; क्योंकि स्वपक्ष का साधन और परपक्ष का दूषण ज्ञानात्मक स्वार्थानुमान और वचनात्मक परार्थानुमान के बिना नहीं हो सकता है। अतः भाव का सर्वथा अपलाप करके केवल अभाव का मानना भी ठीक नहीं है।

पज्जव णय वोक्कंतं वत्थु दव्वट्ठियस्स वयणिज्जं।
जाव दवि आपजोगो अपच्छिमविण्णिव्वयणो।। (107)

इसलिये पदार्थ न तो सर्वथा भावरूप ही है और न सर्वथा अभावरूप ही है, किन्तु वह जात्यन्तर रूप अर्थात् भावाभावत्मक ही होना चाहिये। जिसके पश्चात् विकल्पज्ञान और वचन व्यवहार नहीं है ऐसा द्रव्योपयोग अर्थात् सामान्य ज्ञान जहां तक होता है वहाँ तक वह वस्तु द्रव्यार्थिक नय का विषय है। तथा वह पर्यायार्थिक नय से आक्रान्त है अथवा जो वस्तु पर्यायार्थिक नय के द्वारा ग्रहण करके छोड़ दी गई है वह द्रव्यार्थिक नय का विषय है, क्योंकि जिसके पश्चात् विकल्पज्ञान और वचन व्यवहार नहीं है, ऐसे अंतिम विशेष तक द्रव्योपयोग की प्रवृत्ति होती है।

इस गाथा में यह बताया गया है कि जितना भी द्रव्यार्थिक नय विषय है वह सब पर्यायाक्रान्त होने से पर्यायार्थिक नय का भी विषय है और जितना भी पर्यायार्थिक नय का विषय है वह सब सामान्य अनुस्यूत होने से द्रव्यार्थिक नय का भी विषय है। ये दोनों नय परस्पर सापेक्ष होने के कारण ही समीचीन हैं। सन्मति सूत्र में इस गाथा के पहले आई हुई 'पज्जवणिस्सामण्णं' इत्यादि गाथा के समुदायार्थ का उद्घाटन करते हुए अभयदेव सूरि लिखते हैं कि विशेष के संस्पर्श से रहित 'अस्ति' यह वचन द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा प्रवृत्त होता है और सत्ता स्वभाव को स्पर्श नहीं करते हुए द्रव्य, पृथिवी इत्यादि वचन पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा प्रवृत्त होते हैं। परन्तु ये दोनों प्रकार के वचन एक दूसरे की अपेक्षा के बिना असमीचीन हैं, क्योंकि इन वचनों का वाच्य सत्ता

सामान्य और विशेष सर्वथा स्वतंत्र नहीं पाया जाता है, इसलिये इन्हें परस्पर सापेक्ष अवस्था में ही समीचीन मानना चाहिये। इससे भी यही निश्चित होता है कि द्रव्यार्थिक का विषय पर्यायाक्रान्त है और पर्यायार्थिक का विषय द्रव्याक्रान्त है। यहां यद्यपि यह कहा जा सकता है कि महासत्ता के ऊपर और कोई अपर सामान्य नहीं है जिस अपर सामान्य की अपेक्षा वह विशेष रूप सिद्ध होवे तथा अंतिम विशेष के नीचे उस का भेदक और कोई विशेष नहीं है। जिसकी अपेक्षा यह अंतिम विशेष सामान्य रूप सिद्ध होवे, इसलिये महासता केवल द्रव्यार्थिक नय का और अंतिम विशेष केवल पर्यायार्थिक नय का विषय रहा आवे। पर तत्त्वतः विचार करने पर अन्य अवान्तर सामान्य और विशेषों के समान ये दोनों ही सापेक्ष हैं, सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। यदि इन्हें सर्वथा स्वतन्त्र माना जाता है तो सभी पदार्थ सत्स्वरूप होने के कारण अनेकान्तात्मक है, इस अनुमान में दिया गया हेतु व्यभिचरित हो जाता है। अतः इस व्यभिचार के दूर करने के लिये इन्हें यदि सापेक्ष माना जाता है। अतः इस व्यभिचार के दूर करने के लिये इन्हें यदि सापेक्ष माना जाता है तो महासत्ता द्रव्यार्थित नय का और अंतिम विशेष पर्यायार्थिक नय का विषय होते हुए भी अपने विपक्षी नयों की अपेक्षा रखकर ही वे दोनों उन-उन नयों के विषय सिद्ध होते हैं।

एयद वियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया वा वि।
तीदाणागद भूदा तावइयं तं हवइ दव्वं।। (108)

एक द्रव्य में अतीत, अनागत और वर्तमान रूप जितनी अर्थ पर्याय व्यंजन पर्याय होती है तत्प्रमाण वह द्रव्य है।

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राड् भाव सम्बन्धो द्रव्यमेकनेकधा।। (109)

जो नैगमादि नय और उनकी शाखा उपशाखा रूप उपनयों के विषयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायों का अभिन्न सत्ता सम्बन्ध रूप समुदाय है उसे द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य कथंचित् एक रूप और कथंचित् अनेक रूप हैं।

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादि चतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते।। (110)

ऐसा कौन पुरुष है जो स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा सभी पदार्थों को सद्रूप ही न माने और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा सभी पदार्थों को असद्रूप ही न माने? अर्थात् यदि स्वद्रव्यादि की अपेक्षा पदार्थ

को सद्रूप और परद्रव्यादि की अपेक्षा असद्रूप न माना जाय तो किसी भी पदार्थ की व्यवस्था नहीं हो सकती है।

घट-मौलि-सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्।। (111)

जो मनुष्य घट चाहता है, वह घट के नष्ट हो जाने पर शोक को प्राप्त होता है, जो मनुष्य मुकुट चाहता है वह मुकुट के बन जाने पर हर्ष को प्राप्त होता है और जो मनुष्य केवल सोना चाहता है वह घट के विनाश और मुकुट की उत्पत्ति के समय भी सोने का सद्भाव रहने से मध्यस्थभाव को प्राप्त करता है, इसलिये इन विषादादिकी को सहेतुक ही मानना चाहिए।

घट और मुकुट ये दोनों स्वतंत्र दो पर्यायें हैं, एक काल में इनका एक साथ सद्भाव नहीं पाया जाता है। अब यदि सोने के घट को हर्ष होगा तुड़वाकर कोई मुकुट बनवा ले तो घट के इच्छुक पुरुष को विषाद और मुकुट चाहने वाले को हर्ष होगा और स्वर्णार्थी को हर्ष और विषाद कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि सोना घट और मुकुट दोनों की अवस्थाओं में समान भाव से पाया जाता है। चूंकि ये हर्ष, विषाद और मध्यस्थ भाव निर्हेतुक तो कहे नहीं जा सकते हैं, अतः निश्चित होता है कि पदार्थ न सर्वथा क्षणिक है और न सर्वथा नित्य है, किन्तु नित्यानित्यात्मक है।

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम्।। (112)

जिसके केवल दूध पीने का व्रत अर्थात् नियम है वह दही नहीं खाता है, जिसके केवल दही खाने का नियम है वह दूध नहीं पीता है और जिसके गोरस नहीं खाने का व्रत है वह दूध और दही दोनों को नहीं खाता है। इससे प्रतीत होता है कि पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप है।

दूध और दही ये दोनों गोरस की क्रम से होने वाली पर्यायें हैं और गोरस इन दोनों में व्याप्त होकर रहता है। गोरस की जब दूध अवस्था होती है तब दही रूप अवस्था नहीं पाई जाती है और जब दही रूप अवस्था होती है तब दूध रूप अवस्था नहीं पाई जाती है, क्योंकि दूध पर्याय का व्यय होकर भी दही पर्याय उत्पन्न होती है, किन्तु गोरस दूध रूप भी है और दही रूप भी है। यही कारण है कि जिसने केवल दूध पीने का व्रत लिया है वह दही का सेवन नहीं कर सकता और जिसने केवल दही सेवन करने का व्रत लिया है, वह दूध नहीं पी सकता, क्योंकि इन दोनों में भेद हैं। पर

गोरस के सेवन नहीं करने का जिसके व्रत है वह दूध और दही दोनों का उपयोग नहीं कर सकता है, क्योंकि दूध और दही दोनों गोरस हैं। इस प्रकार एक गोरस पदार्थ अपनी दूध रूप अवस्था का त्याग करके दही रूप अवस्था को प्राप्त होता है, फिर वह गोरस बना ही रहता है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप हैं।

कथञ्चिते सदेवेष्टं कथञ्चिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा।। (133)

हे जिन! आपके शासन में मानी गयी वस्तु कथंचित् सद्रूप ही है, कथंचित् असद्रूप ही है, कथंचित् उभयात्मक ही है और कथंचित् अवक्तव्य ही है। इसी तरह सदवक्तव्य असदवक्तव्य उभयावक्तव्य रूप भी है। किन्तु यह सब नय के सम्बन्ध से है सर्वथा नहीं।

प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टय की अपेक्षा सत् है और परचतुष्टय की अपेक्षा असत् है। यदि घट को स्वद्रव्यादिकी अपेक्षा सद्रूप न माना जाय तो आकाश कुसुम की तरह उसका अभाव हो जायेगा तथा पर द्रव्यादिकी अपेक्षा यदि घट को असद्रूप न माना जाय तो सर्वत्र घट इस प्रकार का व्यवहार होने लगेगा। इससे निश्चित होता है कि प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टय की अपेक्षा सत् पर चतुष्टय की अपेक्षा असत् है। इस प्रकार पूर्व में कहे गये सत् है और असद्रूप दोनों धर्म एक साथ प्रत्येक वस्तु में पाये जाते हैं, अतः वे सर्वथा भिन्न नहीं हैं। यदि इन्हें सर्वथा भिन्न माना जाय तो जिस प्रकार घट में पट रूप और पट में घट रूप बुद्धि नहीं होती है तथा घट को और पट को घट नहीं कह सकते हैं, उसी प्रकार एक वस्तु में सत् और असत्। इस प्रकार बुद्धि और वचन व्यवहार नहीं बन सकेगा, अतः यह दोनों धर्म कथंचित् तादात्मय सम्बन्ध से प्रत्येक वस्तु में रहते हैं। इससे निश्चित होता है कि प्रत्येक वस्तु कथंचित् सद्रूप ही है और कथंचित् असद्रूप ही है। फिर भी इस प्रकार की वस्तु वचनों द्वारा क्रम से ही कही जा सकती है, अतः जब उसे क्रम से कहा जाता है तो वह उभयात्मक सिद्ध होती है तथा जब उसी वस्तु के इन दोनों धर्मों को कोई एक साथ कहना चाहते हैं तब जिससे वस्तु के दोनों धर्म एक साथ कहे जा सके, ऐसा कोई एक शब्द न होने से वस्तु अवक्तव्य सिद्ध होती है। इस प्रकार हे जिन! आपके शासन में एक ही वस्तुनय की अपेक्षा से सद्रूप भी है, असद्रूप भी है, उभयात्मक भी है और अवक्तव्य भी है तथा 'च' शब्द से सदवक्तव्य असदवक्तव्य और उभयावक्तव्य रूप भी है। यह

निश्चित हो जाता है।

नान्वयः, सहभेदत्वान्न भेदोऽन्वयवृत्तितः।
मृद्भेदद्वयसंसर्गवृत्ति जायत्यन्तरं हि तत्।। (114)

घटादिपदार्थ केवल अन्वयरूप नहीं; क्योंकि उनमें भेद भी पाया जाता है तथा केवल भेद रूप भी नहीं है; क्योंकि उनमें अन्वय भी पाया जाता है, किन्तु मिट्टी रूप अन्वयधर्म और उर्ध्वभाग आदि रूप व्यतिरेक धर्म के तादात्म्य रूप होने से वे जात्यन्तर रूप हैं। अर्थात् वे केवल न तो भेद रूप ही हैं और न अभेद रूप ही हैं, किन्तु कथंचित् भेद रूप हैं और कथंचित् अभेद रूप हैं, क्योंकि घट-घटी आदि में मिट्टी रूप से अभेद पाया जाता है और घट-घटी आदि विविध अवस्थाओं की अपेक्षा भेद पाया जाता है।

सादृश अस्तित्व (महासत्ता)

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं।
उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णतं।। (97) प्र.सार

Here, amongst various characteristics, existence is described as one all comprising characteristic by the great Jina, when (he was) clearly propounding the (religious) creed.

आगे सादृश्य अस्तित्व शब्द से कहे जाने वाली महासत्ता का वर्णन करते हैं। (इह) इस लोक में (विविहलक्खणाणं) नाना प्रकार भिन्न-भिन्न लक्षण रखने वाले पदार्थों का (एग) एक (सव्वगयं) सर्व पदार्थों में व्यापक (लक्खणं) लक्षण (सदित्ति) सत् ऐसा (धम्म) वस्तु के स्वभाव को (उवदिसदा) उपदेश करने वाले (जिणवरवसहेण) श्री वृषभ जिनेन्द्र ने (खलु) प्रगट रूप से (पण्णतं) कहा है।

इस जगत् में भिन्न-भिन्न लक्षण को रखने वाले चेतन-अचेतन मूर्त-अमूर्त अनेक पदार्थ हैं, उनमें से प्रत्येक पदार्थ की सत्ता या स्वरूपास्तित्व भिन्न-भिन्न हैं, तो इन सबका एक अखंड व्यापक लक्षण भी है। यह लक्षण मिलाप व भिन्नता के विकल्प से रहित अपनी-अपनी जाति में विरोध न पड़ने देने वाले शुद्ध संग्रहनय से सर्व पदार्थों में व्यापक एक सत् रूप है या महासत्ता रूप है, ऐसा वस्तु स्वभावों के संग्रह का उपदेश करने वाले श्री तीर्थंकर भगवान् ने प्रगट रूप से वर्णन किया है।

बोधपाहुड (आ. कुन्दकुन्द) के आधार पर-

मैं मेरे निश्चय से परमतीर्थ आदि हूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- कसमें-वादे...)

मैं ही मेरा परम तीर्थ हूँ... संसार तारक मेरा मैं हूँ ऽऽऽ
अन्यतीर्थ व्यवहार हैं मेरे... निमित्त-नैमित्तिक होने से ऽऽऽ (ध्रुव)
रत्नत्रय मेरा परम तीर्थ... इससे होगा मेरा भवपार ऽऽऽ
रत्नत्रय से अभिन्न मैं हूँ... अतः मेरा मैं परम तीर्थ ऽऽऽ
रत्नत्रय आधार होने से... मैं ही मेरा आयतन हूँ ऽऽऽ
मेरे आधीन मेरी कषाय से है... आयतन हूँ यम पालनेसे ऽऽऽ (1)
मैं ही मेरा चैतन्य हूँ ... अतः मैं मेरा चैत्यगृह ऽऽऽ
सभी जीवों को मानूँ चैतन्यमय .... अतः मैं हूँ मेरा चैत्यगृह ऽऽऽ
उक्त गुण युक्त जंगम देह मम... निश्चय से चलप्रतिमामय ऽऽऽ
अन्य श्रमण भी चल प्रतिमा .... सिद्ध में बनूँगा स्थिर प्रतिमा ऽऽऽ (2)
स्व-पर प्रकाशी उक्त गुणों से... अतएव मैं दर्शनमय हूँ ऽऽऽ
दीक्षा-शिक्षा दाता होने से... जिनबिम्ब स्वरूप मैं हूँ ऽऽऽ
यह ही मेरी जिनमुद्रा है....इसके परिज्ञान से ज्ञानी हूँ ऽऽऽ
स्व-पर हितार्थ ज्ञानदानसे.... देव स्वरूप भी मैं हूँ ऽऽऽ (3)
भव्य ही होते भावी भगवान्... श्रमण होते भावी भगवान् ऽऽऽ
अभी आचार्य भावी भगवान्... ऐसा ध्यान/(ज्ञान) मम अरिहंत ज्ञान ऽऽऽ
इस हेतु मेरी श्रमण दीक्षा ... इस हेतु (ही) मेरी धार्मिक शिक्षा ऽऽऽ
उक्त लक्ष्य ही परम ध्येय... अन्यथा साधना निष्फल ज्ञेय ऽऽऽ (4)
व्यवहार तीर्थादि आराध्य मम... इसी से निश्चय प्राप्य है ऽऽऽ
सुद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावादि पाकर... बीज यथा बने वृक्ष फल ऽऽऽ
यह मेरा आध्यात्मिक वैभव... भौतिक वैभव से परे वैभव ऽऽऽ
अज्ञानी-मोह से अज्ञात सत्य... 'कनक' का लक्ष्य स्व-परम सत्य ऽऽऽ (5)

ओबरी 19/02/2018 रात्रि 10:56

आयदणं चेदिहरं, जिणपडिमा दंसणं च जिणबिंबं।
भणियं सुवीयरायं, जिणमुद्दा णाणमदत्थं।। 3।। बोध पा.
अरहंतेण सुदिट्ठं, जं देवं तित्थमिह य अरहंतं।
पावज्ज गुणविसुद्धा, इय णायव्वा जहाकमसो।। 4।।

आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन, रागरहित जिनबिंब, जिनमुद्रा, आत्माके प्रयोजनभूत ज्ञान, देव, तीर्थ, अरहंत और गुणों से विशुद्ध दीक्षा ये ग्यारह स्थान जैसे अरहंत भगवान् कहे हैं वैसा यथाक्रम से जानने योग्य हैं।

मय राय दोस मोहो, कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।
पंच महव्वयधारी, आयदणं महरिसी भणियं।। 5।।

मद, राग, द्वेष, मोह, क्रोध और लोभ जिसके अधीन हो गये हैं और जो पाँच महाव्रतों को धारण करता है ऐसा महामुनि आयतन कहा गया है।

सिद्धं जस्स सदत्थं, विसुद्धझाणस्स णाणजुत्तस्स।
सिद्धायदणं सिद्धं, मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं।।6।।

जो विशुद्ध ध्यान तथा केवलज्ञान से युक्त है ऐसे जिस मुनिश्रेष्ठ के शुद्ध आत्मा की सिद्धि हसे गयी है उस समस्त पदार्थों को जानने वाले केवल ज्ञान को सिद्धायतन कहा गया है।

बुद्धं जं बोहंतो, अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च।
पंचमहव्वयसुद्धं, णाणमयं जाण चेदिहरं ।। 7।।

जो आत्मा को ज्ञानस्वरूप तथा दूसरे जीवों को चैतन्यस्वरूप जानता है ऐसे पाँच महाव्रतों से शुद्ध और ज्ञान से तन्मय मुनि को हे भव्य! तू चैत्यगृह जान।

चेइयबंधं मोक्खं, दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स।
चेइहरं जिणमग्गे, छक्कायहियंकरं भणियं।।8।।

बंध मोक्ष दुःख और सुख का जिस आत्मा को ज्ञान हो गया है वह चैत्य है, उसका घर चैत्यगृह कहलाता है तथा जिनमार्ग में छहकाय के जीवों का हित करने वाला संयमी मुनि चैत्यगृह कहा गया है।

सपरा जंगमदेहा, दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।
णिग्गंथ वीयरागा, जिणमग्गे एरिसा पडिमा।। 9।।

दर्शन और ज्ञान से पवित्र चारित्र वाले निष्परिग्रह वीतराग मुनियों का जो अपना तथा दूसरे का चलता फिरता शरीर है वह जिनमार्ग में प्रतिमा कहा गया है।

जं चरदि सुद्धचरणं, जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मतं।
सा होइ वंदणीया, णिग्गंथा संजदा पडिमा।। 10।।

दंसण अणंत णाणं, अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य।
सासयसुक्ख अदेहा, मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं।। 11।।

(णिरु) वममचलमखोहा, णिम्मिविया जंगमेण रूवेण।
सिद्धठाणम्मि ठिया, वोसरपडिमा धुवा सिद्धा।। 12।।

जो अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य और अनंतसुख से सहित है, शाश्वत अविनाशी सुखसहित हैं, शरीर रहित हैं, आठ कर्मों के बंधन से रहित हैं, उपमारहित हैं, चंचलतारहित हैं, क्षोभरहित हैं, जंगमरूप से निर्मित हैं और लोकाग्रभागरूप सिद्धस्थान में स्थित हैं ऐसे शरीररहित सिद्ध परमेष्ठी स्थावर प्रतिमा है।

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।
णिग्गंथं णाणमयं, जिणमग्गे दंसणं भणियं।। 13।।

जो सम्यक्तवरूप, संयमरूप, उत्तमधर्मरूप, निर्ग्रंथरूप एवं ज्ञानमय मोक्षमार्ग को दिखलाता है ऐसे मुनिमार्ग को दिखलाता है ऐसे मुनि के रूप को जिनमार्ग में दर्शन कहा है।

जह फुल्लं गंधमयं, भवदि हु खीरं घियमयं चावि।
तह दंसणं हि सम्मं, णाणमयं होइ रूवत्थं।। 14।।

जिस प्रकार फूल गंधमय और दूध घृतमय होता है उसी प्रकार दर्शन अंतरंग में सम्यग्ज्ञानमय है और बहिरंग में मुनि, श्रावक और आर्यिका के वेषरूप है।

जिणबिंबं णाणमयं, संजमसुद्ध सुवीयरागं च।
जं देइ दिक्खसिक्खा, कम्मक्खयकारणे सुद्धा।। 15।।

जो ज्ञानमय है, संयम से शुद्ध है, वीतराग है तथा कर्मक्षय में कारणभूत शुद्ध दीक्षा और शिक्षा देता है ऐसा आचार्य जिनबिंबं कहलाता है।

तस्स य करह पणामं, सव्वं पुजं च विणय वच्छल्लं।
जस्स च दंसण णाणं, अत्थि धुवं चेयणाभावो।। 16।।

जिसके नियम से दर्शन, ज्ञान और चेतनाभाव विद्यमान है उस आचार्य रूप जिनबिंब को प्रमाण करो, सब प्रकार से उसकी पूजा करो और शुद्ध प्रेम करो।

तववयगुणेहिं सुद्धो, जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मतं।
अरहंतमुद्द एसा, दायारी दिक्खसिक्खा य।। 17।।

जो तप,व्रत और उत्तरगुणों से शुद्ध है, समस्त पदार्थों को जानता देखता है तथा शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण करता है ऐसा आचार्य अर्हन्मुद्रा है, यही दीक्षा और शिक्षा को देने वाली है।

दढसंजममुद्दाए, इंदियमुद्दाकसायदढमुद्दा।
मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा एरिसा भणिया।। 18।।

दृढ़ता से संयम धारण करना सो संयम मुद्रा है, इंद्रियों को विषयों से सन्मुख रखना सो इंद्रियमुद्रा है कषायों के वशीभूत न होना सो कषायमुद्रा है, ज्ञान के स्वरूप में स्थिर होना सो ज्ञानमुद्रा है। जैन शास्त्रों में ऐसी जिनमुद्रा कही गयी है।

संजमसंजुत्तस्स य, सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स।
णाणेण लहदि लक्खं, तम्हा णाणं च णायव्वं।। 19।।

संयमसहित तथा उत्तम ज्ञानयुक्त मोक्षमार्ग का लक्ष्य जो शुद्ध आत्मा है वह ज्ञान से ही प्राप्त किया जाता है इसलिए ज्ञान जानने योग्य है।

जइ णवि कहदि हु कक्खं, रहिओ कंडस्स वेज्झयविहीणो।
तह णवि लक्खदि लक्खं, अण्णाणी मोक्खमग्गस्स।। 20।।

जिस प्रकार धनुर्विद्या के अभ्यास रहित पुरुष बाण के लक्ष्य अर्थात् निशाने को प्राप्त नहीं कर पाता उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष मोक्षमार्ग के लक्ष्यभूत आत्मा को नहीं ग्रहण कर पाता है।

णाणं पुरिसस्स हवदि, लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स।। 21।।

ज्ञान पुरुष अर्थात् आत्मा में होता है और उसे विनयी मनुष्य ही प्राप्त कर पाता है। ज्ञान द्वारा यह जीव मोक्षमार्ग का चिंतन करता हुआ लक्ष्य को प्राप्त करता है।

मइधणुहं जस्स थिरं, सदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं।
परमत्थबद्धलक्खो, ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स।। 22।।

जिस मुनि के पास मतिज्ञानरूपी स्थिर धनुष्य है, श्रुतज्ञानरूपी डोरी है, रत्नत्रयरूपी बाण है और परमार्थरूप शुद्ध आत्मस्वरूप में जिसने निशाना बाँध रखा है ऐसा मुनि मोक्षमार्ग से नहीं चुकता है।

सो देवो जो अत्थं, धम्मं कामं सुदेइ णाणं च।
सो देइ जस्स अत्थि हु, अत्थो धम्मो य पव्वज्जा।। 23।।

देव वह है जो जीवों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारणभूत ज्ञान देता

है।वास्तव में देता भी वही है जिसके पास धर्म, अर्थ, काम तथा दीक्षा होती है।

धम्मो दयाविसुद्धो, पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।
देवो ववगयमोहो, उदययरो भव्वजीवाणं।। 24।।

धर्म वह है जो दया से विशुद्ध है, दीक्षा वह है जो सर्व परिग्रह से रहित है और देव वह है जिसका मोह दूर हो गया हो तथा जो भव्य जीवों का अभ्युदय करने वाला हो।

वयसम्मत्तविसुद्धे, पंचेंदियसंजदे णिरावेक्खे।
ण्हाऊण मुणी तित्थे, दिक्खासिक्खासुण्हाणेण।। 25।।

जो व्रत और सम्यक्तत्व से विशुद्ध है, पंचेंद्रियों से संयत है अर्थात् पाँचों इंद्रियों को वश करने वाला है और इस लोक तथा परलोकसंबंधी भोग-परिभोग से निःस्पृह है ऐसे विशुद्ध आत्मारूपी तीर्थ में मुनि को दीक्षा-शिक्षारूपी उत्तम स्नान से पवित्र होना चाहिए।

जं णिम्मलं सुधम्मं, सम्मत्तं संजमं तवं णाणं।
तं तित्थं जिणमग्गे, हवेइ जदि संतभावेण।। 26।।

यदि शांतभाव से निर्मल धर्म, सम्यग्दर्शन, संयम, तप, और ज्ञान धारण किये जायें तो जिनमार्ग में यही तीर्थ कहा गया है।

णामे ठवणे हि यं सं, दव्वे भावे हि सगुणपज्जाया।
चउणागदि संपदिमे, भावा भावंति अरहंतं।। 27।।

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इनके द्वारा गुण और पर्यायसहित अरहंत देव जाने जाते है। च्यवन, आगति और संपत्ति ये भाव अरहंतपने का बोध कराते हैं।

दंसण अणंत णाणे, मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण।
णिरुवमगुणमारूढो, अरहंतो एरिसो होई।। 28।।

जिसके अनंत दर्शन और अनंत ज्ञान है, अष्टकर्मों का बंध नष्ट होने से जिन्हें भावमोक्ष प्राप्त हो चुका है तथा जो अनुपम गुणों को धारण करता है ऐसा शुद्ध आत्मा अरहंत होता है।

जरवाहिजम्ममरणं, चउगइगमणं च पुण्णपावं च।
हंतूण दोसकम्मे, हुउ णाणमये च अरहंतो।। 29।।

जो बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, चतुर्गतियों में गमन, पुण्य और पाप तथा रागादि दोषों को नष्ट कर ज्ञानमय होता है वह अरहंत कहलाता है।

गुणठाणमग्गणेहिं य, पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं।
ठावण पंचविहेहिं, पणयव्वा अरहपुरिसस्स।। 30।।

गुणस्थान, मार्गणा, पर्याप्ति, प्राण और जीवसमास इस तरह पाँच प्रकार से अर्हंत पुरुष की स्थापना करना चाहिए।

तेरहमे गुणठाणे, सजोइकेवलिय होइ अरहंतो।
चउतीस अइसयगुणा, होंति हु तस्सट्ठ पडिहारा।। 31।।

तेरहवें गुण स्थान में सयोग केवली अरहंत होते हैं। उनके स्पष्ट रूप से चौंतीस अतिशयरूप गुण तथा आठ प्रातिहार्य होते हैं।

गइइंदिये च काए, जोए वेदे कसायणाणे य।
संजमदंसणलेस्सा, भविया सम्मत्त सण्णि आहारे।।32।।

गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार इन चौदह मार्गणाओं में अरहंत की स्थापना करनी चाहिए।

आहारो य सरीरो, इंदियमण आणपाणभासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो, उत्तमदेवो हवइ अरहो।।33।।

आहार, शरीर, इंद्रिय, मन, श्वासोच्छ्वास और भाषा इन पर्याप्तिरूप गुणों से समृद्ध उत्तम देव अर्हंत होता है।

पंचवि इंदियपाणा, मणवयकाएण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा, आउगपाणेण होंति तह दह पाणा।।34।।

पाँचों इंद्रियाँ, मन वचन कायकी अपेक्षा तीन बल तथा आयु प्राण से सहित श्वासोच्छ्वास से दश प्राण होते हैं।

मणुयभवे पंचिंदिय, जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे।
एहे गुणगणजुत्तो, गुणमारूढो हवइ अरहो।।35।।

मनुष्यपर्याय पंचेन्द्रिय नामका जो चौदहवाँ जीवसमास है उनमें इन गुणों के समूह से युक्त, तेरहवें गुणस्थानपर आरूढ़ मनुष्य अर्हंत होता है।

जरवाहिदुक्खरहियं, आहारणिहावज्जियं विमलं।
सिंहाण खेल सेओ, णत्थि दुगुंछा य दोसो य।।36।।
दस पाणा पज्जत्ती, अट्ठसहस्सा य लक्खणा भणिया।
गोखीरसंखधवलं, मंसं रुहिरं च सव्वंगे।।37।।

एरिसगुणेहिं सव्वं, अइसयवंतं सुपरिमलामोयं।
ओरालियं च कायं, णायव्वं अरिहपुरिसस्स।।38।।

जो बुढ़ापा, रोग आदि के दुःखों से रहित हैं, आहार नीहार से वर्जित हैं, निर्मल हैं और जिसमें नाकका मल (श्लेष्म), थूक, पसीना, दुर्गंध आदि दोष नहीं हैं।।36।।

जिनके 10 प्राण, 6 पर्याप्तियाँ और 1008 लक्षण कहे गये हैं वे तथा जिनके सर्वांग में गोदुग्ध और शंख के समान सफेद मांस और रुधिर है।।37।।

इस प्रकार के गुणों से सहित तथा समस्त अतिशयों से युक्त अत्यंत सुगंधित औदारिक शरीर अर्हंत पुरुषके जानना चाहिए। यह द्रव्य अर्हंतका वर्णन है।।38।।

मयरायदोसरहिओ, कसायमलवज्जिओ य सुविसुद्धो।
चित्तपरिणामरहिदो, केवलभावे मुणेयव्वो।।39।।

केवलज्ञानरूप भावके होने पर अर्हंत मद राग द्वेष से रहित, कषायरूप मल से वर्जित, अत्यंत शुद्ध और मनके परिणाम से रहित होता है ऐसा जानना चाहिए।

सम्मद्दंसणि पस्सइ, जाणदि णाणेण दव्वपज्जोया।
सम्मत्तगुणविसुद्धो, भावो अरहस्स णायव्वो।।40।।

अरहंत परमेष्ठी अपने समीचीन दर्शनगुण के द्वारा समस्त द्रव्यपर्यायों को सामान्य रूप से देखते है और ज्ञानगुण के द्वारा विशेष रूप से जानते हैं। वे सम्यग्दर्शनरूप गुण से अत्यंत निर्मल रहते हैं। इस प्रकार अरहंतका भाव जानना चाहिए।

सुण्णहरे तरुहिट्ठे, उज्जाणे तह मसाणवासे वा।
गिरिगुह गिरिसिहरे वा, भीमवणे अहव वसिदो वा।।41।।
सवसासत्त तित्थं, वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।
जिणभवणं अह वेज्झं, जिणमग्गे जिणवरा विंति।।42।।
पंचमहव्वयजुत्ता, पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता, मुणिवरवसहा णिइच्छंति।।43।।

शून्यगृह में , वृक्ष के अधस्तल में , उद्यान में , श्मशान में, पहाड़ की गुफा में, पहाड़ के शिखर पर भयंकर वन में अथवा वसतिका में मुनिराज रहते हैं।

स्वाधीन मुनियों के निवासरूप तीर्थ, उनके नामके अक्षररूप वचन, उनकी प्रतिमारूप चैत्य प्रतिमाओं की स्थापना आधाररूप आलय और कहे हुए आयतनादि के साथ जिनभवन अकृत्रिम जिनचैत्यालय आदि को जिनमार्ग में जिनेंद्रदेव मुनियों के

लिए वेद्य अर्थात् जानने योग्य पदार्थ कहते हैं। पाँच महाव्रतों से सहित, पाँच इन्द्रियों को जीतने वाले, निःस्पृह तथा स्वाध्याय और ध्यान से युक्त श्रेष्ठ मुनि उपर्युक्त स्थानों को निश्चय में चाहते हैं।

जिसका मूढभाव दूर हो गया है, जिसमें आठों कर्म नष्ट हो गये हैं, मिथ्यात्वभाव नष्ट हो गया है और जो सम्यग्दर्शनरूप गुणसे विशुद्ध है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।

जिणमग्गे पव्वज्जा, छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।
भावंति भव्वपुरिसा, कम्मक्खयकारणे भणिया।।53।।

जिनमार्ग में जिनदीक्षा छहों संहनेवालों के लिए कही गयी है। यह दीक्षा कर्मक्षय का कारण बतायी गयी है। ऐसी दीक्षा भव्य पुरुष निरंतर भावना करते हैं।

तिलतुसमत्तणिमित्तं, समबाहिरगंथसंगहो णत्थि।
पव्वज्ज हवइ एसा, जह भणिया सव्वदरसीहिं।।54।।

जिसमें तिलतुषमात्र बाह्य परिग्रह संग्रह नहीं है ऐसी जिनदीक्षा सर्वज्ञदेव के द्वारा कही गयी है।

उवसग्गपरिसहसहा, णिज्जणदेसे हि णिच्च अत्थेहि।
सिलकट्ठे भूमितले, सव्वे आरुहइ सव्वत्थ।।55।।

उपसर्ग और परिषहोंको सहन करने वाले मुनि निरंतर निर्जन स्थान में रहते हैं, वहाँ भी सर्वत्र शिला, काष्ठ वा भूमितल पर बैठते हैं।

पसुमहिलसंढसंगं, कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।
सज्झायझाणजुत्ता, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।56।।

जिसमें पशु स्त्री नपुंसक और कुशील मनुष्यों का संग नहीं किया जाता, विकथाएँ नहीं कही जाती और सदा स्वाध्याय तथा ध्यान में लीन रहा जाता है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।

तववयगुणेहिं सुद्धा, संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य।
सुद्धा गुणेहिं सुद्धा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।57।।

जो तप व्रत और उत्तर गुणों से शुद्ध है, संयम, सम्यक्त्व और मूलगुणों से विशुद्ध है तथा दीक्षोचित अन्य गुणों से शुद्ध है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।

एवं आयत्तणगुणपज्जत्ता बहुविहसम्मत्ते।
णिग्गंथे जिणमग्गे, संखेवेणं जहाखादं।।58।।

इस प्रकार आत्मगुणों से परिपूर्ण जिनदीक्षा अत्यंत निर्मल सम्यक्त्वसहित,

निष्परिग्रह जिनमार्ग में जैसी कही गयी है वैसी संक्षेप से मैंने कही है।

पयलियमाणकसाओ, पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो।
पावइ तिहुयणसारं, बोही जिणसासणे जीवो।।78।।

जिसका मानकषाय पूर्ण रूपसे नष्ट हो गया है तथा मिथ्यात्व और चारित्र मोह के नष्ट होने से जिसका चित्त इष्ट अनिष्ट विषयों में समरूप रहता है ऐसा जीव ही जिनशासन में त्रिलोकश्रेष्ठ रत्नत्रयको प्राप्त करता है।

विसयविरत्तो सवणो, छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
तित्थयरणामकम्मं, बंधइ अइरेण कालेण।।79।।

विषयों से विरक्त रहने वाला साधु सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन कर थोड़े ही समय में तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करता है।

बारसविहतवयरणं, तेरसकिरियाउ भावतिविहेण।
धरहि मणमत्तदुरियं, णाणांकुसएण मुणिपवर।।80।।

हे मुनिश्रेष्ठ! तू बारह प्रकारका तपश्चरण और तेरह प्रकार की क्रियाओं का मन वचन काय से चिंतन कर तथा मनरूपी मत्त हाथी को ज्ञानरूपी अंकुश से वश कर।

पंचविहचेलचायं, खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू।
भावं भावियपुव्वं, जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं।।81।।

जहाँ पाँच प्रकार के वस्त्रों का त्याग किया जाता है, जमीन पर सोया जाता है, दो प्रकार का संयम धारण किया जाता है, भिक्षा से भोजन किया जाता है और पहले आत्मा के शुद्ध भावों का विचार किया जाता है वह निर्मल जिनलिंग है।

पूयादिसु वयसहियं, पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो धम्मो।।83।।

पूजा आदि शुभ क्रियाओं में व्रतसहित जो प्रवृत्ति है तथा मोह और क्षोभ से रहित आत्मा का जो भाव है वह धर्म है ऐसा जिनशासन में जिनेंद्र भगवान् कहा है।

सद्दहदि य पत्तेदि य, रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।
पुण्णं भोयणिमित्तं, ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं।।84।।

जो मुनि पुण्य का श्रद्धान करता है, प्रतीति करता है, उसे अच्छा समझता है और बार-बार उसे धारण करता है उसका यह सब कार्य भोग का ही कारण है, कर्मो के क्षय का कारण नहीं है।

अप्पा अप्पम्मि रओ, रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।

संसारतरणहेदू, धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।85।।

रागादि समस्त दोषों से रहित होकर जो आत्मा आत्मस्वरूप में लीन होता है वह संसार समुद्र से पार होने का कारण धर्म है ऐसा श्री जिनेंद्रदेव ने कहा है।

अह पुण अप्पा णिच्छदि, पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं, संसारत्थो पुणो भणिदो।।86।।

जो मनुष्य आत्मा की इच्छा नहीं करता--आत्मस्वरूप की प्रतीति नहीं करता वह भले की समस्त पुण्यक्रियाओं को करता हो तो भी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है। वह संसारी ही कहा गया है।

एएण कारणेण य, तं अप्पा सद्दहेहि तिविहेण।
जेण य लभेह मोक्खं, तं जाणिज्जह पयत्तेण।।87।।

इस कारण तुम मन वचन कायसे उस आत्मा का श्रद्धान करो और यत्नपूर्वक उसे जानो जिससे कि मोक्ष प्राप्त कर सको।

मच्छो वि सालिसित्थो, असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं, भावह जिणभावणं णिच्चं।।88।।

अशुद्ध भावों का धारक शालिसिक्थ नामका मच्छ सातवें नरक गया ऐसा जानकर हे मुनि! तू निरंतर आत्मा में जिनदेव की भावना कर।

बाहिरसंगच्चाओ, गिरिसरिदरिकंदराइं आवासो।
सयलो णाणज्झयणो, णिरत्थओ भावरहियाणं।।89।।

भावरहित मुनियों का बाह्य परिग्रहका त्याग, पर्वत, नदी, गुफा, खोह आदि में निवास और ज्ञान के लिए शास्त्रोंका अध्ययन यह सब व्यर्थ है।

भंजसु इंदियसेणं, भंजसु मणोमक्कडं पयत्तेण।
मा जणरंजणकरणं, बाहिरवयवेस तं कुणसु।।90।।

तू इंद्रियरूपी सेनाको भंग कर और मनरूपी बंदर को प्रयत्नपूर्वक वश कर। हे बाह्यव्रत के वेष को धारण करने वाले! तू लोगों को प्रसन्न करने वाले कार्य मत कर।

णवणोकसायवग्गं, मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए।
चेइयपवयणगुरूणं, करेहिं भत्तिं जिणाणाए।।91।।

हे मुनि! तू भावों की शुद्धि से नव नोकषायों के समूहको तथा मिथ्यात्व को छोड़ और जिनेंद्रदेव की आज्ञानुसार चैत्य, प्रवचन एवं गुरुओं की भक्ति कर।

तित्थयरभासियत्थं, गणधरदेवेहिं गंथियं सम्मं।

भावहि अणुदिणु अतुलं, विसुद्धभावेण सुयणाणं।।92।।

जिसका अर्थ तीर्थंकर भगवान् के द्वारा कहा गया है तथा गणधरदेव ने जिसकी सम्यक् प्रकार से ग्रंथरचना की है, उस अनुपम श्रुतज्ञानका तू विशुद्ध भावना से प्रतिदिन चिंतन कर।

पाऊण णाणसलिलं, णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का।
हुंति सिवालयवासी, तिहुवणचूडामणी सिद्धा।।93।।

हे जीव! मुनिगण ज्ञानरूपी जल पीकर दुर्दम्य तृषारूपी प्यास की दाह और शोषण क्रिया से रहित होकर मोक्षमहल में निवास करने वाले और तीन लोक के चुडामणि सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।

भावहि अणुवेक्खाओ, अवरे पणवीसभावणा भावि।
भावरहिएण किं पुण, बाहिरलिंगेण कायव्वं।।96।।

हे मुनि! तू अनित्यत्वादि बारह अनुप्रेक्षाओं तथा पंच महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं का चिंतवन कर। भावरहित बाह्यलिंग से क्या काम सिद्ध होता है?

सव्वविरओ वि भावहि, णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं।
जीवसमासाइं मुणी, चउदसगुणठाणणामाइं।।97।।

हे मुनि! यद्यपि तू सर्वविरत है तो भी नौ पदार्थ, सात तत्व, चौदह जीवसमास और चौदह गुणस्थानों का चिंतन कर।

मैं ही मेरे हेतु मोक्षमार्ग व मोक्ष

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- कसमें वादे... क्या मिलिए....)

मैं ही मेरा मोक्षमार्ग हूँ... मैं ही मेरे रत्नत्रय ऽऽऽ
मैं ही मेरा मोक्ष रूप हूँ... मेरे बिना मम ये न सम्भव ऽऽऽ (ध्रुव)
मम रत्नत्रय मुझमें स्थित... धर्मीमें ही धर्म होने से ऽऽऽ
'गुणपर्याय द्रव्य' होने से ... मेरे गुण-पर्याय मुझमें ऽऽऽ
'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा' से... मेरे आश्रय से मम गुण हैं ऽऽऽ
अनादिकाल से मुझमें स्थित... कर्म आवृत्त से सुप्त-गुप्त हैं ऽऽऽ (1)
मेरे गुण जब (से) हो रहे जागृत ... कर्मो की हो रही क्षीणता ऽऽऽ

आत्मश्रद्धान हुआ है प्रगट... तत्वार्थ श्रद्धान सहित ऽऽऽ
श्रद्धान हुआ मुझमें मेरा... मैं हूँ सत्य-शिव-सुंदर ऽऽऽ
अनन्तगुण सहित हूँ मैं... शुद्ध-बुद्ध व आनन्द ऽऽऽ (2)
यह ही मेरा आत्मविश्वास... मैं हूँ तन-मन रहित ऽऽऽ
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित... स्वयंभू-सनातन-अमूर्त ऽऽऽ
इससे मुझमें हुआ सुज्ञान... जो है वीतराग विज्ञान ऽऽऽ
यह भी मेरा मौलिक गुण... मैं मेरा वीतराग विज्ञान ऽऽऽ (3)
इससे हुई अनासक्ति-निस्पृहता... अनात्मवस्तु प्रति मोह क्षीणता ऽऽऽ
समता-शान्ति व आत्म तृप्ति... ख्याति-लाभ-पूजा की विरक्तता ऽऽऽ
स्वयं का शोध-बोध बढ़ रहा... ध्यान-अध्ययन-मौन भी ऽऽऽ
आत्मविशुद्धि से अनुभूति वृद्धि... स्वयं में बढ़ रही स्व-प्रवृत्ति ऽऽऽ(4)
संकल्प-विकल्प-संक्लेश-द्वन्द्व... अपना-पराया में राग-द्वेष ऽऽऽ
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा परे... स्वयं की उपलब्धि लक्ष्य मेरे ऽऽऽ
सुद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पाकर... समस्त विभाव से शून्य होकर ऽऽऽ
अनन्त स्वगुणों को मैं प्राप्तकर... बनूँगा शुद्ध-बुद्ध-परमेश्वर ऽऽऽ(5)
बीज ही यथा अंकुर से वृक्ष बने... सुद्रव्य-क्षेत्र-कालादि पाकर ऽऽऽ
तथाहि 'सोऽहं' से मैं 'अहं' बनूँगा ... मोक्षमार्गी से 'कनक' मोक्षेश्वर ऽऽऽ (6)

ओबरी 18/02/2018 मध्याह्न 02:15 (केशलोंच के दिन)

व्यवहार एवं निश्चय मोक्षमार्ग

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा।(39) द्र.सं.

Known that from the ordinary point of view, perfect faith, knowledge and conduct are the cause of liberation, while really one's soul consisting of these (is the cause of liberation).

सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चरित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्रस्वरूप जो निज आत्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो।

आचार्य श्री ने प्रथम महाधिकार में विश्व के मूलभूत षड्द्रव्यों का तथा द्वितीय महाधिकार में सप्त तत्त्व एंव नव पदार्थों का संक्षिप्त, सार गर्भित सांगोपांग, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक, विश्लेषण करने के अनन्तर इस तृतीय महाधिकार में स्वतन्त्रता के मार्ग का वर्णन कर रहे हैं। इस गाथा में व्यवहार एवं निश्चय मोक्ष मार्ग का वर्णन आचार्य श्री ने किया है। आचार्य उमास्वामी ने भी कहा है-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

सम्यक् दर्शन Right Darsana (belief) सम्यक् ज्ञान Right Gyan (knowledge) सम्यक् चारित्र Right Charitra (conduct) मोक्ष मार्गः the path to liberation

Right belief, right knowledge, right conduct, these together constitute the path of liberation.

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है।

रत्नत्रय : – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को धर्म या मोक्ष मार्ग इसलिए कहते हैं कि इनसे जीव बंधन में नहीं पड़ता वरन् बंधन से मुक्त होता है। जैसाकि अमृतचंद्र सूरी ने कहा है-

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चरित्रं कुत एतेभ्यो भवति बंधः।। पु.उ.

सम्यग्दर्शन आत्मा की प्रतीति को कहा जाता है। आत्मा का सम्यक् प्रकार ज्ञान करना बोध सम्यग्ज्ञान कहलाता है। आत्मा में स्थिर होना अर्थात् लवलीन होना सम्यक् चारित्र कहा जाता है। इनसे बंध कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

कुन्दकुन्द स्वामी भी यह भेदाभेदात्मक निश्चय व्यवहारात्मक मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

दंसण णाण चरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।। 16 समयसार

साधु को व्यवहार नय से सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र इन तीनों को भिन्न-भिन्न समझकर नित्य सदा ही इनकी उपासना करनी चाहिए। अपने उपयोग में लाना चाहिए लेकिन शुद्ध नय से वे तीनों एक शुद्धात्मा स्वरूप ही हैं। उससे भिन्न नहीं है ऐसा समझना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पञ्चेन्द्रियों के विषय और क्रोधादि कषायों से रहित जो निर्विकल्प समाधि है उसमें ही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों होते हैं।

णिज्जावगो य णाणं वादो झाणं चरित्तं णावा हि।
भवसागरं तु भविया तरंति तिहि सण्णिवायेण।। (100)(मूलाचार)

खेवटिया ज्ञान है, वायु ध्यान है और नौका चारित्र है। इन तीनों के संयोग से ही भव्य जीव भव सागर से तिर जाते हैं।

णाणं पयासओ तओ सोधयो संजमो य गुत्तियरो।
तिण्हंपि य संपजोगे होदि हु जिण सासणे मोक्खो।(101)

ज्ञान प्रकाशक है तप शोधक है और संयम रक्षक है इन तीनों के संयोग से ही अर्थात् मिलने पर ही जिन शासन में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तवेण धीरा विधुणंति पावं अज्झप्पजोगेण खवंति मोहं।
संखीण छुदराग दोसा उत्तमा सिद्धिगदि पयाति।।(103)

धीर मुनि तप से पाप नष्ट करते हैं। अध्यात्म योग से मोह का क्षय करते हैं। पुनः वे उत्त्म पुरुष मोह रहित और राग द्वेष रहित होते हुए सिद्धि प्राप्ति कर लेते हैं।

जीवादी सद्दहणं सम्मत तेसिमधिगमो णाणं।
रागादी परिहणं चरणं ऐसा दु मोक्खसहो।।(155)

सम्यग्दर्शन –

जीवादी सद्दहण सम्मंत = जीवादिनवपदार्थानां विपरीताभिनिवेशरहितत्वेन श्रद्धानं सम्यग्दर्शन।

जीवादि सद्दहणं सम्मतं = जीवादि नव पदार्थों का विपरीत अभिप्राय से रहित जो सही श्रद्धान है, वही सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्ज्ञान –

तेसिमधिगमो णाणं = तेषामेव संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेनाधिगमो निश्चयः परिज्ञान सम्यग्ज्ञानम्।

तेसिमधिगमो णाणं = उन्हीं जीवादि पदार्थों का संशय-उभय कोटिज्ञान, विमोह-विपरीत एक कोटि ज्ञान, विभ्रम-अनिश्चित ज्ञान, इन तीनों से रहित जो यथार्थ अधिगम होता है, निर्णय कर लिया जाता है, जान लिया जाता है, वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यक्चरित्र-

रागादि परिहरणं चरणं।
तेषामेव सम्बन्धित्वेन रागादिपरिहारश्चारित्र।

रागादि परिहरणं चरणं और उन्हीं के संबंध में होने वाले जो रागादिक विभाव होते हैं उनको दूर हटा देना सो सम्यक्चारित्र कहलाता है।

व्यवहार मोक्षमार्ग-

एसो दु मोक्खोपहो इत्येव व्यवहारमोक्षमार्गः।

यह व्यवहार मोक्षमार्ग है।

निश्चय मोक्षमार्ग-

भूतार्थनय के द्वारा जाने हुए उन्हें जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में ठीक-ठीक अवलोकन करना निश्चयसम्यग्दर्शन कहलाता है और उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में जानना सो निश्चय सम्यग्ज्ञान है और उनको शुद्धात्मा से भिन्न जानकर रागादिकरूप विकल्प से रहित होते हुए अपनी शुद्धात्मा में अवस्थित होकर रहना निश्चय सम्यक्चारित्र है इस प्रकार यह निश्चय मोक्ष मार्ग हुआ।

"Self reverence, self knowledge and self control.
These three alone lead life to sovereign power"

निश्चय से रत्नत्रयधारी आत्मा ही मोक्ष मार्ग

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्ण दवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइय होदि हु मोक्खस्सकारणं आदा।। 40

The three jewels (i.e. perfect faith, perfect knowledge and perfect conduct) do not exist in any other substance except the soul. Therefore, the soul surely is the cause of liberation.

आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में रत्नत्रय नहीं रहता है इस कारण उस रत्नत्रमयी जो आत्मा है वही निश्चय से मोक्ष का कारण हैं।

आचार्य श्री ने इस गाथा में रत्नत्रय युक्त आत्मा ही निश्चय से मोक्ष का कारण बताया है क्योंकि रत्नत्रय की पूर्णता ही मोक्ष है और रत्नत्रय आत्मा में विद्यमान रहता है।

योगेन्द्र देव ने भी योगसार में कहा है-

रयणत्तय-संजुतं जिउ उत्तिमु तित्थु पवित्तु।
मोक्खहं कारण जोइया अण्ण ण तंतु ण मंतु।। 83

हे योगिन्! रत्नत्रय युक्त जीव ही उत्तम तीर्थ है, और वही मोक्ष का कारण है। अन्य कुछ मंत्र-तंत्र मोक्ष का कारण नहीं।

अप्प दंसणु णाणु मुणि अप्पा चरणु वियाणि।
अप्पा संजमु सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि।। 81

आत्मा को ही दर्शन और ज्ञान समझो, आत्मा ही चारित्र है, और संयम, शील, तप और प्रत्याख्यान भी आत्मा को ही मानो।

रयणत्तयसजुत्तं जीव हवदि उत्तम तित्थं।
संसार तरइ जेणं रयणत्तयं दिव्व णावेण।

रत्नत्रय से युक्त जीव ही उत्तम तीर्थ है। क्योंकि ''तरंति संसारं येन भव्यास्तत्तीर्थं'' अर्थात् संसार रूपी सागर से भव्य जिसके माध्यम से तिरता उसे तीर्थ कहते हैं। कहा भी है- ''तीर्थ शब्देन मार्गो रत्नत्रयात्मकः'' तीर्थ शब्द से रत्नत्रय मार्ग जानना चाहिये। इसलिए इस गाथा में कहा गया है कि 'संसार तरइ जेणं रयणत्तयं दिव्य णावेण' यह जीव जिस दिव्य नाव से संसार रूपी सागर को पार करता है, ऐसी रत्नत्रय रूपी नौका ही उत्तम तीर्थ है।

आत्मा प्रतीति रूप जो आत्म का ही गुण है उसे 'सम्यग्दर्शन' कहते हैं। आत्मा का जो परिज्ञान रूप आत्मा का गुण है, उसे ''सम्यग्ज्ञान'' कहते हैं और आत्मा में रमण करने रूप आत्म गुण को चारित्र कहते हैं। इसलिए रत्नत्रय आत्मा का ही अभिन्न स्वभाव है। इसलिए रत्नत्रय आत्मा में ही है और साधन अवस्था में यह रत्नत्रय मोक्ष के कारण या मार्ग है तो सिद्ध अवस्था में यही रत्नत्रय मोक्षरूप कार्य या साध्य बन जाते हैं। जिस प्रकार 1. कपूर 2. अजवाइन सत्व 3. पिपरमेंट से अमृतधारा बनाते हैं। इन तीनों को जब योग्य अनुपात में मिलाते हैं तब वे तीनों अमृतधारा के लिए कारण बनते हैं। क्योंकि ये तीनों धीरे-धीरे पिघलकर अमृतधारा रूप में परिणमन कर लेते हैं। जब अमृतधारा रूप परिणमन कर लेते हैं तब कार्य रूप हो जाते हैं। अमृतधारा बनने के पहले तीनों कारण थे किंतु अमृतधारा बनने पर कार्य हो गये। इसी प्रकार रत्नत्रय भी मोक्ष के पहले कारण रहते हैं फिर मोक्ष में स्वयं कार्यरूप परिणमन कर लेते हैं। पानी से बर्फ बनती है पानी ठंडा होते-होते जब हिमांक तक ठंडा हो जाता है तब पानी ही बर्फ रूप में परिणमन हो जाता है। बर्फ बनने से पहले जो पानी बर्फ के लिए कारण था बर्फ बनने के बाद वह पानी बर्फ कार्य रूप में परिणमन हो गया। इसी प्रकार व्यवहार रूप भेद रत्नत्रय निश्चय रूप अभेद रत्नत्रय के लिए कारण है

और भेद रत्नत्रय साधन अवस्था में कारण है तो सिद्ध अवस्था में कार्य रूप हो जाते हैं।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

जीवादी सद्दहणं सम्मतं रूपमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेस विमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि।। 41

Samyaktva (perfect faith) is the belief in Jiva etc. That is a quality of the soul, and when this arises, Gyan (knowledge), being free from errors, surely becomes perfect.

जीव आदि पदार्थों को जो श्रद्धान करना है वह सम्यक्त्व है और वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है। और इस सम्यक्त्व के होने पर संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय इन तीनों दुरभिनिवेशों से रहित होकर ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

आचार्य श्री ने इस गाथा में निश्चय एवं व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप और उसके कार्य का प्रतिपादन किया है। ''जीवादीसद्दहणं सम्मतं'' अर्थात् जीवादि षट् द्रव्य या सप्त तत्त्व या नव पदार्थ का श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है और ''रूवमप्पणो तं तु'' वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। ''दुरभिणिवेसविमुक्के णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि'' अर्थात् सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान संशय विपर्यय एवं अनध्यवसाय से रहित होकर सम्यग्ज्ञान हो जाता है। ऐसा प्रतिपादन करके आचार्य श्री ने सम्यग्दर्शन की महिमा का वर्णन किया है क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान कुज्ञान रहते हैं।

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया, वरणाणी होंति अइरेण।।6।। आ. कुन्दकुन्द

जो पुरुष सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, बल और वीर्य से वृद्धि को प्राप्त हैं तथा कलिकाल संबंधी मलिन पाप से रहित हैं वे सब शीघ्र ही उत्कृष्ट ज्ञानी हो जाते हैं।

सम्मत्तसलिलपवहे, णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।
कम्मं वालुयवरणं, बंधुच्चिय णासए तस्स।।7।।

जिस मनुष्य हृदय में सम्यक्त्वरूपी जलका प्रवाह निरंतर प्रवाहित होता है उसका पूर्वबंध से संचित कर्मरूपी बालूका आवरण नष्ट हो जाता है।

जे दंसणेसु भट्ठा, णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।
ऐदे भट्ठविभट्ठा, सेसं पि जणं विणासंति।।8।।

जो मनुष्य दर्शन से भ्रष्ट हैं, ज्ञान से भ्रष्ट हैं और चारित्र से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्टों में भ्रष्ट हैं -- अत्यंत भ्रष्ट हैं तथा अन्य जनों को भी भ्रष्ट करते हैं।

जो कोवि धम्मसीलो, संजमतवणियमजोयगुणधारी।
तस्स य दोस कहंता, भग्गा भग्गत्तणं दिंति।।9।।

जो कोई धर्मात्मा संयम, तप, नियम और योग आदि गुणों का धारक है उसके दोषों को कहते हुए क्षुद्र मनुष्य स्वयं भ्रष्ट हैं तथा दूसरों को भी भ्रष्टता प्रदान करते हैं।

जह मूलम्मि विणट्ठे, दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा, मूलविणट्ठा ण सिज्झंति।।10।।

जैसे जड़के नष्ट हो जाने पर वृक्ष के परिवार की वृद्धि नहीं होती वैसे ही जो पुरुष जिनदर्शन से भ्रष्ट हैं वे मूल से विनष्ट हैं- उनका मूल धर्म नष्ट हो चुका है, अतः ऐसे जीव सिद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

जह मूलाओ खंधो, साहापरिवार बहुगुणो होई।
तह जिणदंसणमूलो, णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स।।11।।

जिस प्रकार वृक्ष की जड़ से शाखा आदि परिवार से युक्त कई गुणा स्कंध उत्पन्न होता है उसी प्रकार मोक्षमार्ग की जड़ जिनदर्शन जिनधर्म का श्रद्धान है ऐसा कहा गया है।

जे दंसणेसु भट्ठा, पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते होंति लुल्लमूआ, बोही पुण दुल्लहा तेसिं।।12।।

जो मनुष्य स्वयं सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट होकर अपने चरणों में सम्यग्दृष्टियों को पाड़ते हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टियों से अपने चरणों में नमस्कार कराते हैं वे लूले और गूँगे होते हैं तथा उन्हें रत्नत्रय अत्यंत दुर्लभ रहता है। यहाँ लूले और गूँगे से तात्पर्य स्थावर जीवों से है क्योंकि यथार्थ में वे ही गतिरहित तथा शब्दहीन होते हैं।

जे वि पडंति च तेसिं, जाणंता लज्जागारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोही, पावं अणुमोयमाणाणं।।13।।

जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मिथ्यादृष्टियों को जानते हुए भी लज्जा, गौरव और भय से उनके चरणों में पड़ते हैं वे भी पाप की अनुमोदना करते हैं अतः उन्हें रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं होती।

दुविहं पि गंथचायं, तीसुवि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे, उब्भसणे दंसणं होई।(14)

जहाँ अंतरंग और बहिरंग के भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग होता है, मन वचन काय इन तीनों योगों में संयम स्थित रहता है, ज्ञान कृत, कारित, अनुमोदन

से शुद्ध रहता है और खड़े होकर भोजन किया जाता है वहाँ सम्यग्दर्शन होता है।

सम्मत्तदो णाणं, णाणादो सव्वभाव उवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण, सेयासेयं वियाणेदि।।15।।

सम्यग्दर्शन से सम्यग्ज्ञान होता है, सम्यग्ज्ञान से समस्त पदार्थों की उपलब्धि होती है और समस्त पदार्थों की उपलब्धि होने से यह जीव सेव्य तथा असेव्य को - कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को जानने लगाता है।

सेयासेयविदण्हू, उद्धददूस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं, तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं।।16।।

सेव्य और असेव्य को जानने वाला (पुरुष) अपने मिथ्या स्वभाव को नष्ट कर शीलवान् हो जाता है तथा शीलके फलस्वरूप स्वर्गादि अभ्युदय को पाकर फिर निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणवाहिहरणं, खयकरणं सव्वदुक्खाणं।।17।।

यह जिनवचनरूपी औषधि विषय सुख को दूर करने वाली है, अमृतरूप है, बुढ़ापा, मरण आदि की पीड़ा को हरने वाली है तथा समस्त दुःखों का क्षय करने वाली है।

छह दव्व णव पयत्था, पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं, सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो।।19।।

छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्व कहे गये हैं। जो उनके स्वरूप का श्रद्धान करता है उसे सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

जीवादी सद्दहणं, सम्मतं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो, अप्पाणं हवइ सम्मतं।।20।।

जिनेन्द्र भगवान् ने सात तत्त्वों के श्रध्दान को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है और शुध्द आत्मा के श्रध्दान को निश्चय सम्यक्त्व बतलाया है।

एवं जिणपण्णत्तं, दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय, सोवाणं पढम मोक्खस्स।।21।।

इस प्रकार जिनेंद्र भगवान् के द्वारा कहा हुआ सम्यग्दर्शन रत्नत्रय में साररूप है और मोक्ष की पहली सीढ़ी है, इसलिए हे भव्य जीवों! उसे अच्छे अभिप्राय से धारण करो।

जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहि भणियं, सद्दहमाणस्स सम्मत्तं।।22।।

जितना चारित्र धारण किया जा सकता है उतना धारण करना चाहिए और जितना धारण नहीं किया जा सकता उसका श्रद्धान करना चाहिए, क्योंकि केवलज्ञानी जिनेंद्र देव ने श्रद्धान करने वालो के सम्यग्दर्शन बतलाया है।

दंसणणाणचरित्ते, तवविणये णिच्चकालसुपसत्था।
एदे दु वंदणीया, जे गुणवादी गुणधराणं।।23।।

जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप तथा विनय में निरंतर लीन रहते हैं और गुणों के धारक आचार्य आदिका गुणगान करते हैं वे वंदना करने योग्य--पूज्य हैं।

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवतितादृशः।
वर्त्तिदीपं यथोपास्यं भिन्ना भवति तादृशि।। (स.त. 97)

अपने आत्मा से भिन्न अरिहन्त, सिद्ध परमात्मा की उपासना, आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाती है। जैसे दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानी साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

येन भावेन तद्रूपं ध्यायेतमात्मानमात्मवित्।
तेन तन्मयता याति सोपाधिः स्फटिको यथा।।

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है उस स्वरूपमय हो जाता है। जैसे स्फटिक मणि विभिन्न रंगों के सम्पर्क से उस वर्ण रूप परिणमन करता है।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।
अर्हत्ध्यानविष्टो भवार्हन् स्यात् स्वयं तस्मात्।।

यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है वह उस स्वरूपमय हो जाता है। अर्हत् के ध्यान सहित ध्याता स्वयं अर्हत् रूप हो जाता है।

शुद्धात्मा होने का उपाय

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादि संपत्तावात्मनोप्यात्मता मता।।2।।

As gold in the ore is held to become pure gold on the intervention of the real causes of purification, in the same manner on the attainment to self-nature the impure (un-

emancipated) Soul is also regarded as pure spirit.

जिस प्रकार सुवर्ण परिणमन करने योग्य उपादान से युक्त सुवर्ण पाषाण योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अर्थात् तापन, ताडन, घर्षण, छेदन आदि को प्राप्त करके शुद्ध सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार भव्यजीव भी भव्यात्मा भी स्वद्रव्यादि चतुष्टय को प्राप्त करके निर्मल चैतन्य स्वरूप परमात्मा बन जाता है। भव्य जीव सुस्वद्रव्य, सुस्वक्षेत्र, सुस्वकाल, सुस्वभाव रूपी चतुष्टय को प्राप्त करके शुद्ध आत्म स्वभाव को प्राप्त कर लेता है। 'सु' शब्द प्रशंसावाची/प्रशस्तवाची है। उसका अर्थ यह है कि प्रकृत कार्य के लिए जिस द्रव्यादिक की आवश्यकता है उसकी परिपूर्णता है।

समीक्षाः- योग्य सुवर्ण पाषाण भी जब तक योग्य सुवर्णकार, अग्नि आदि निमित्त को प्राप्त नहीं करता है तब तक शुद्ध नहीं बनता है, उसी प्रकार भव्य भी जब तक गुरु उपदेश योग्य काल, उत्तमशरीर उत्तम भाव आदि को प्राप्त नहीं करता है तब तक मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाता है। परन्तु जिस प्रकार अंध सुवर्ण पाषाण को कितना भी शुद्ध करने पर वह शुद्ध सुवर्ण नहीं बनता है, भटरा मूंग को कितना भी सीजानेपर वह सीजती नहीं है, उसी प्रकार जो अभव्य होता है वह बाह्य निमित्त को प्राप्त करके भी भगवान् नहीं बन पाता है।

मैं ही मेरा सर्वस्व

(मैं ही मेरे सत्य-धर्म-यम-नियम-प्रतिज्ञा प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-संवर-निर्जरा-मोक्ष)

चाल : 1. कसमें वादे...

- आचार्य कनकनन्दी

मैं ही मेरा परम सत्य हूँ... मैं ही मेरा धर्म हूँ...
मैं ही मेरे यम-नियम हूँ... मैं ही मम सर्वस्व हूँ...(ध्रुव)
मेरे गुण ही मुझमें स्थित है... कर्म से हुए हैं विकृत...
स्व-स्वभाव की प्राप्ति हेतु... कर रहा हूँ मैं पुरुषार्थ...
मैं ही मेरा रत्नत्रय हूँ.. मैं ही मेरा मोक्षमार्ग...
मैं ही संवर-निर्जरा हूँ... मैं ही मेरा मोक्ष (भी) हूँ...(1)
इस हेतु ही मेरे यम-नियम... इस हेतु लक्ष्य-प्रतिज्ञा है...

आलोचना व प्रतिक्रमण भी... प्रत्याख्यान भी इस हेतु...
परिणमन करूँ नवकोटि से... मन-वचन-काय-कृत से ...
कारित व अनुमत में मैं हूँ... मेरे अभाव से न सम्भव है ... (2)
मेरे अभाव से सब जड़ है... जड़ में नहीं मम धर्म है...
वस्तु स्वभाव धर्म होने से... मैं चैतन्यमय धर्म हूँ...
''इच्छामि भंते'' से/(में) प्रतिज्ञा करूँ..''मिच्छा मे दुक्कडं'' प्रतिक्रमण...
''छेदोवट्ठाणं होदु मज्झं'' से/(में)... दोषों का करूँ मैं परिहरण...(3)
''समारूढं ते मे भवतु'' से/(में)... धर्म-स्थित स्वयं को करूँ...
''अभावियं भावेमि'' से/(में) मैं... अभावित स्व/(मैं) की भावना करूँ..
''भावियं च ण भावेमि'' से/(में)मैं... भावित पर भाव न भाऊँ...
ये ही संवर-निर्जरा-मोक्ष... सभी में मैं ही मैं ही रहूँ...(4)
इससे भिन्न सभी मैं नहीं हूँ... सचित्त-अचित्त या मिश्र हो...
मूर्तिक या अमूर्तिक द्रव्य हो... सब से भिन्न मैं एकला हूँ...
''अहमेक्को खलु सुद्ध'' मैं हूँ... ज्ञान दर्शन सुख वीर्य मय...
''आदा पच्चक्खाणे'' हूँ मैं... ''आदा में संवरे जोगे''..(5)
''सेसा मे बहिरा भावा'' है... ''सव्वे संजोग लक्खणा'' है...
यह है मेरा निश्चय रूप... 'कनक' का लक्ष्य स्व-स्वरूप...(6)..

ओबरी, दि. 14/02/2018, रात्रि 8.45

परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार

णाहं णारयभावो, तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं।।77।।
णाहं मग्गणठाणो, णाहं गुणठाण जीवठाणो ण।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं।।78।।
णाहं कोहो माणो, ण चेव माया ण होमि लोहोहं।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं।।81।। (नियमसार)

मैं नारक पर्याय, तिर्यंच, पर्याय, मनुष्य पर्याय अथवा देव पर्याय नहीं हूँ। निश्चय से मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ और न करनेवालों की अनुमोदना करने

वाला हूँ।।77।।

मैं मार्गणास्थान नहीं हूँ, गुणस्थान नहीं हूँ और न जीवस्थान हूँ। निश्चय से मैं उनका न करने वाला हूँ, न कराने वाला हूँ और न करनेवालों की अनुमोदना करने वाला हूँ।।78।।

मैं बालक नहीं हूँ, वृद्ध नहीं हूँ, तरुण नहीं हूँ और न उनका कारण हूँ। निश्चय से मैं उनका न करने वाला हूँ, न कराने वाला हूँ और न करनेवालों की अनुमोदना करने वाला हूँ।।79।।

मैं राग नहीं हूँ, द्वेष नहीं हूँ, मोह नहीं हूँ और न उनका कारण हूँ। निश्चयसे मैं उनका न करने वाला हूँ, न करानेवाला हूँ और करनेवालों की अनुमोदना करनेवाला नहीं हूँ।।80।।

मैं क्रोध नहीं हूँ, मान नहीं हूँ, माया नहीं हूँ और लोभ नहीं हूँ। मैं उनका करनेवाला नहीं हूँ, करानेवाला नहीं हूँ और करनेवालों की अनुमोदना करनेवाला नहीं हूँ।।81।।

एरिसभेदब्भासे, मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं।
तं दढकरणणिमित्तं, पडिक्कमणादी पवक्खामि।।82।।

इस प्रकार के भेदज्ञान का अभ्यास होने पर जीव मध्यस्थ होता है और उस मध्यस्थभाव से चारित्र होता है। आगे उसी चारित्र में दृढ़ करने के लिए प्रतिक्रमण आदि को कहूँगा।

प्रतिक्रमण किसके होता है?

मोत्तूण वयणरयणं, रागादीभाववारणं किच्च।
अप्पाणं जो झायदि, तस्स दु होदित्ति पडिकमणं।।83।।

जो वचनों की रचना को छोड़कर तथा रागादिभावों का निवारणकर आत्मा का ध्यान करता है उसके प्रतिक्रमण होता है।

आराहणाइ वट्टइ, मोत्तुण विराहणं विसेसेण।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिक्कमणमओ हवे जम्हा।।84।।

जो विराधना को विशेष रूप से छोड़कर आराधना में वर्तता है वह साधु प्रतिक्रमण कहा जाता है क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है।

भावार्थ- यहाँ अभेद विवक्षा के कारण प्रतिक्रमण करने वाले साधु को ही प्रतिक्रमण कहा जाता है।

मोत्तूण अणायारं, आयारे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा।।85।।

जो साधु अनाचार को छोड़कर आचार में स्थिरभाव करता है वह प्रतिक्रमण कहा जाता है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है।

उम्मग्गं परिचत्ता, जिणमग्गे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा।।86।।

जो उन्मार्ग को छोड़कर जिनमार्ग में स्थिरभाव करता है वह प्रतिक्रमण कहलाता है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है।

मोत्तूण सल्लभावं, णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा।।87।।

जो साधु शल्यभाव को छोड़कर निःशल्यभाव में परिणमन करता है -- उस रूप प्रवृत्ति करता है वह प्रतिक्रमण कहा जाता है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है।

चत्ता ह्यगुत्तिभावं, तिगुत्तिगुत्तो हवेइ जो साहू।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा।।88।।

जो साधु अगुप्तिभाव को छोड़कर तीन गुप्तियों से गुप्त-सुरक्षित रहता है। वह प्रतिक्रमण कहा जाता है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है।

मोत्तूणं अट्टरुद्दं, झाणं जो झादि धम्मसुक्कं वा।
सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा।।89।।

जो आर्त्त और रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म्य अथवा शुक्ल ध्यान करता है वह जिनेंद्र भगवान् के द्वारा कथित शास्त्रों में प्रतिक्रमण कहा जाता है।

मिच्छत्तपहुदिभावा, पुव्वं जीवेण भाविया सुइरं।
सम्मत्तपहुदिभावा, अभाविया होंति जीवेण।।90।।

जीव ने पहले चिरकालतक मिथ्यात्व आदि भाव भाये हैं। सम्यक्त्व आदि भाव जीव ने नहीं भाये हैं।

मिच्छादंसणणाणचरित्तं चइऊण णिरवसेसेण।
सम्मत्तणाणचरणं, जो भावइ सो पडिक्कमणं।।91।।

जो संपूर्ण रूप से मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को छोड़कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भावना है वह प्रतिक्रमण है।

आत्मध्यान ही प्रतिक्रमण है

उत्तमअट्ठ आदा, तम्हि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं।
तम्हा दु झाणमेव हि, उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं।।92।।

उत्तमार्थ आत्मा है, उसमें स्थिर मुनिवर कर्मका घात करते हैं इसलिए उत्तमार्थ -- उत्कृष्ट पदार्थ आत्मा का ध्यान करना ही प्रतिक्रमण है।

झाणणिलीणो साहू, परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।
तम्हा दु झाणमेव हि, सव्वदिचारस्स पडिकमणं।।93।।

ध्यान में विलीन साधु सब दोषों का परित्याग करता है इसलिए निश्चय से ध्यान ही सब अतिचारों समस्त दोषों का प्रतिक्रमण है।

व्यवहार प्रतिक्रमण का वर्णन

पडिकमणणामधेये, सुत्ते जह वण्णिदं पडिक्कमणं।
तह णच्चा जो भावइ, तस्स सदा होइ पडिक्कमणं।।94।।

प्रतिक्रमण नामक शास्त्र में जिस प्रकार प्रतिक्रमण का वर्णन किया है उसे जानकर जो उसकी भावना करता है उस समय उसके प्रतिक्रमण होता है।

निश्चयप्रत्याख्यानाधिकार

मोत्तूण सयलजप्पमणागयसुहमसुहवारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि, पच्चक्खाणं हवे तस्स।।95।।

जो समस्त वचनजाल को छोड़कर तथा आगामी शुभ-अशुभ का निवारण कर आत्मा का ध्यान करता है उसके प्रत्याख्यान होता है।

आत्मा का ध्यान किस प्रकार किया जाता है?

केवलणाणसहावो, केवलदंसणसहाव सुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो, सोहं इदि चिंतए णाणी।।96।।

ज्ञानी जीव को इस प्रकार चिंतन करना चाहिए कि मैं केवलज्ञानस्वभाव हूँ, केवलदर्शनस्वभाव हूँ, सुखमय हूँ और केवलशक्तिस्वभाव हूँ।

भावार्थ- ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य ही मेरे स्वभाव हैं, अन्य भाव विभाव हैं। इस प्रकार ज्ञानी जीव आत्मा का ध्यान करते हैं।

णियभावं णइ मुच्चइ, परभावं णेव गेण्हए केइं।
जाणदि पस्सदि सव्वं, सोहं इदि चिंतए णाणी।।97।।

जो निजभाव को नहीं छोड़ता है, परभाव को कुछ भी ग्रहण नहीं करता है, मात्र सबको जानता देखता है वह मैं हूँ, इस प्रकार ज्ञानी जीव को चिंतन करना चाहिए।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधहिं वज्जिदो अप्पा।
सोहं इदि चिंतिज्जो, तत्थेव य कुणदि थिरभावं।।98।।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंधों से रहित जो आत्मा है वहीं मैं हूँ, इस प्रकार चिंतन करता हुआ ज्ञानी जीव उसी आत्मा में स्थिर भाव को करता है।

ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्तिमुवट्ठदो।
आलंबणं च मे आदा, अवसेसं च वोसरे।।99।।

मैं ममत्व को छोड़ता हूँ और निर्ममत्व में स्थित होता हूँ, मेरा आलंबन आत्मा है और शेष सबका परित्याग करता हूँ।

आदा खु मज्झ णाणे, आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे।।100।।

निश्चय से मेरा आत्मा ही ज्ञान में है, मेरा आत्मा ही दर्शन और चारित्र में है, आत्मा ही प्रत्याख्यान में है और आत्मा ही संवर तथा योग शुद्धोपयोग में है।

भावार्थ - गुण-गुणीं में अभेद कर आत्माही को ज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर तथा शुद्धोपयोगरूप कहा है।

जीव अकेला ही जन्म मरण करता है

एगो य मरदि जीवो, एगो य जीवदि सयं।
एगस्स जादि मरण, सिज्झदि णीरयो।।101।।

यह जीव अकेला ही मरता है अकेला ही स्वयं जन्म लेता है। एक का मरण होता है और एक ही कर्मरूपी रजसे रहित होता हुआ सिद्ध होता है।

ज्ञानी जीव की भावना

एको मे सासदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।102।।

ज्ञान दर्शनवाला, शाश्वत एक आत्मा ही मेरा है। संयोग लक्षण वाले समस्त भाव मुझसे बाह्य हैं।

आत्मगत दोषों से छूटने का उपाय

जं किंचि मे दुच्चरितं, सव्वं तिविहेण वोसरे।
सामाइयं तु तिविहं, करेमि सव्वं णिरायारं।।103।।

मेरा जो कुछ भी दुश्चारित्र-अन्यथा प्रवर्तन है उस सबको त्रिविध--मन वचन काय से छोड़ता हूँ और जो त्रिविध (सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि के भेद से तीन प्रकार का) चारित्र है उस सबको निराकार--निर्विकल्प करता हूँ।

सम्मं मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केणवि।
आसाए वोसरित्ता णं, समाहि पडिवज्जए।।104।।

मेरा सब जीवों में साम्यभाव है, मेरा किसी के साथ वैर नहीं है। वास्तव में आशाओं का परित्याग कर समाधि प्राप्त की जाती है।

निश्चय प्रत्याख्यान का अधिकारी कौन है?

णिक्कसायस्स दंतस्स, सूरस्स ववसायिणो।
संसारभयभीदस्स, पच्चक्खाणं सुहं हवे।।105।।

जो निष्कषाय है, इंद्रियों का दमन करने वाला है, समस्त परीषहों को सहन करने में शूरवीर है, उद्यमशील है तथा संसार के भय से भीत है उसी के सुखमय प्रत्याख्यान--निश्चय प्रत्याख्यान होता है।

एवं भेदब्भासं, जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्च।
पच्चक्खाणं सक्कादि, धरिदे सो संजदो णियमा।।।106।।

इस प्रकार जो निरंतर जीव और कर्म के भेद का अभ्यास करता है वह संयत--साधु नियम से प्रत्याख्यान धारण करने को समर्थ है।

परमालोचनाधिकार

आलोचना किसके होती है?

णोकम्मकम्मरहियं, विहावगुणपज्जएहिं वदिरित्तं।
अप्पाणं जो झायदि, समणस्सालोयणं होदि।।107।।

जो नोकर्म और कर्म से रहित तथा विभावगुणपर्यायों से भिन्न आत्मा का ध्यान करता है उस साधु के आलोचना होती है।

आलोचना के चार रूप

आलोयणमालुंछणवियडीकरणं च भावसुद्धी य।
चउविहमिह परिकहियं, आलोयणलक्खणं समए।।108।।

आलोचन, आलुंछन, अविकृतीकरण और भावशुद्धि इस तरह आगममें आलोचना का लक्षण चार प्रकार का कहा गया है।

आलोचनका स्वरूप

जो पस्सदि अप्पाणं, समभावे संठवित्तु परिणामं।
आलोयणमिदि जाणह, परमजिणंदस्स उवएसं।।109।।

जो जीव अपने परिणाम को समभाव में स्थापित कर अपने आत्मा को देखता है--उसके वीतरागभाव का चिंतन करता है वह आलोचन है ऐसा परम जिनेंद्र का उपदेश जानो।

आलुंछन का स्वरूप

कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीय परिणामो।
साहिणो समभावो, आलुंछणमिदि समुद्दिट्ठं।।110।।

कर्मरूप वृक्ष का मूलच्छेद करने में समर्थ, स्वाधीन, समभावरूप जो अपना परिणाम है वह आलुंछन इस नाम से कहा गया है।

अविकृतीकरणका स्वरूप

कम्मादो अप्पाणं, भिण्णं भावेइ विमलगुणणिलयं।
मज्झत्थभावणाए, वियडीकरणं त्ति विण्णेयं।।111।।

जो मध्यस्थभावना में कर्म भिन्न तथा निर्मलगुणों के निवासस्वरूप आत्मा की भावना करता है उसकी वह भावना अविकृतीकरण है ऐसा जानना चाहिए।

भावशुद्धि का स्वरूप

मदमाणमायलोहविवज्जियभावो दु भावसुद्धि त्ति।
परिकहियं भव्वाणं लोयालोयप्पदरिसीहिं।।112।।

भव्य जीवों का मद, मान, माया और लोभ से रहित जो भाव है वह भावशुद्धि है ऐसा लोकालोक को देखने वाले सर्वज्ञ भगवान् ने कहा है।

शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकार

निश्चयप्रायश्चित का स्वरूप

वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो करणिग्गहो भावो।
सो हवदि पायछित्तं, अणवरयं चेव कायव्वो।।113।।

व्रत, समिति, शील और संयमरूप परिणाम तथा इंद्रियनिग्रहरूप जो भाव है वह प्रायश्चित्त है यह प्रायश्चित्त निरंतर करने योग्य है।

कोहादिसगब्भावक्खयपहुदिभावणाए णिग्गहणं।
पायच्छित्तं भणिदं, णियगुणचिंता य णिच्छयदो।।114।।

क्रोधादिक स्वकीय विभाव भावों के क्षय आदिक की भावना में लीन रहना तथा निजगुणों का चिंतन करना निश्चय से प्रायश्चित कहा गया है।

कषायोंपर विजय प्राप्त करने का उपाय

कोहं खमया माणं, समद्दवेणज्जवेण मायं च।
संतोसेण य लोहं, जयदि खु ए चहुविहकसाए।।115।।

क्रोध से क्षमा को , मानको स्वकीय मार्दव धर्म से, मायाको आर्जवसे और लोभ को संतोष से इस तरह चार कषायों को जीव निश्चय से जीतता है।

निश्चय प्रायश्चित किसके होता है?

उक्किट्ठो जो बोहो, णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं।
जो धरइ मुणी णिच्चं, पायच्छित्तं हवे तस्स।।116।।

उसी आत्मा का जो उत्कृष्ट बोध, ज्ञान अथवा चिंतन है उसे जो मुनि निरंतर धारण करता है उसके प्रायश्चित होता है।

किं बहुणा भणिएण दु, वरतवचरणं महेसिणं सव्वं।
पायच्छित्तं जाणह, अणेयकम्माण खयहेऊ।।117।।

बहुत कहने से क्या? महर्षियों का जो उत्कृष्ट तपश्चरण है उस सबको तू अनेक कर्मो के क्षयका कारण प्रायश्चित्त जान।

तप प्रायश्चित क्यों है?

णंताणंतभवेण, समज्जिअसुहअसुहकम्मसंदोहो।
तवचरणेण विणस्सदि, पायच्छित्तं तवं तम्हा।।118।।

क्योंकि अनंतानंत भवों के द्वारा उपार्जित शुभ-अशुभ कर्मों का समूह तपश्चरण के द्वारा विनष्ट हो जाता है इसलिए तप प्रायश्चित है।

ध्यान ही सर्वस्व क्यों है?

अप्पसरूवालंबणभावेण दु सव्वभावपरिहारं।
सक्कदि काउं जीवो, तम्हा झाणं हवे सव्वं।।119।।

आत्मस्वरूप का अवलंबन करने वाले भाव से जीव समस्त विभाव भावों का निराकरण करने में समर्थ होता है इसलिए ध्यान ही सबकुछ है।

सुहअसुहवयणरयणं, रायादीभाववारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि, तस्स दु णियमं हवे णियमा।।120।।

शुभ-अशुभ वचनों की रचना तथा रागादिक भावों का निवारण कर जो आत्मा का ध्यान करता है उसके नियम से नियम अर्थात् रत्नत्रय होता है।

कायोत्सर्ग किसके होता है?

कायाईपरदव्वे, थिरभावं परिहरत्तु अप्पाणं।
तस्स हवे तणुसग्गं, जो झायइ णिव्विअप्पेण।।121।।

जो शरीर आदि परद्रव्य में स्थिरभाव को छोड़कर निर्विकल्प रूप से आत्मा का ध्यान करता है उसके कायोत्सर्ग होता है।

मैं हूँ जीव द्रव्य-तत्त्व-पदार्थमय

आचार्य कनकनन्दी

(चाल : कसमें वादे..., भातुकली..., क्या मिलिए...)

मैं ही मेरा द्रव्य हूँ... व मैं ही मेरा तत्त्व हूँ ऽऽ
मैं ही मेरा पदार्थ हूँ... व मैं ही मेरा सत्य हूँ ऽऽ।। ध्रुव।।
मैं हूँ जीवद्रव्य चेतनमय... अनन्तज्ञान दर्शन सुखमय ऽऽ
स्वयंभू-सनातन व अमूर्तिक... उत्पादव्ययध्रौव्य संयुक्त ऽऽ
अशुद्ध रूप से संसार तत्त्व में... मैं हूँ आस्रव व बन्ध में ऽऽ
रागद्वेषादि विभावभाव मेरे... आस्रव-बन्ध में परिणमन है ऽऽ (1)

स्वरूप मेरा जब होता जागृत ... श्रद्धा-प्रज्ञा व चारित्र रूप ऽऽ
समता-शान्ति-निस्पृहता से ... परिणमता संवर-निर्जरा रूप ऽऽ
शुभाशुभ में मम परिणमन ही ... होते हैं पुण्य-पापमय ऽऽ
शुभ से पुण्य-आस्रव बन्ध ... अशुभ से पाप-आस्रव-बन्ध ऽऽ।।(2)
पूर्ण रूप से (जब) होगा स्वभाव शुद्ध ... विभाव होगा पूर्ण अभाव ऽऽ
तब ही मैं (मेरा) मोक्ष तत्त्व बनूँगा ... स्वयं में ही स्व बनूँगा सिद्ध ऽऽ
मुझ से भिन्न सभी द्रव्य हैं ... तथाहि तत्त्व-पदार्थ भी ऽऽ
चेतन-अचेतन-मिश्र सभी ही ... पुद्गल धर्माधर्माकाश काल ऽऽ।।(3)
मेरे सद्भाव से मेरे ये संभव ... मेरे अभाव से ये असंभव ऽऽ
अतः मेरे हेतु मैं ही प्रधान ... ऐसा ही हर जीव में ज्ञेय ऽऽ
सभी द्रव्य में हूँ प्रधान द्रव्य ... सभी तत्त्व में मैं ही प्रधान ऽऽ
सभी पदार्थ में मैं ही प्रधान ... अन्य (सभी) सहयोगी-निमित्त कारण ऽऽ (4)
अतः मेरे हेतु मैं ही प्रमुख... पंचपरमेष्ठी मेरे हेतु भी आदर्श ऽऽ
मेरे अभाव से मेरे लिए न निमित्त ... गतिस्थितिअवस्थान परिवर्तन ऽऽ
ये हैं परम आध्यात्मिक रहस्य ... ये हैं आत्मल्याण रहस्य ऽऽ
अज्ञानी मोही द्वारा अज्ञात रहस्य... 'कनक' लक्ष्य स्व-परम सत्य ऽऽ (5)

ओबरी 16/02/2018 पूर्वाह्न 11:11

जीव के नौ विशेष गुण

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।। (2) द्र.सं.

Jiva is characterised by upayoga, is formless and an agent, has the same extent as its own body, is the enjoyer (of the fruits of Karma), exists in Samsara, is Siddha and has a characteristic up ward motion.

जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्त है, कर्त्ता है, निज शरीर के बराबर है, भोक्ता है, संसार में स्थित है सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है, वह जीव है।

छहों द्रव्यों में से जीव द्रव्य सर्वश्रेष्ठ एवं उपादेय द्रव्य होने के कारण तथा प्रथम

गाथा में जीव द्रव्य का प्रथम निर्देश होने से इस दूसरी गाथा में आचार्य श्री ने जीव द्रव्य के नौ विशेष गुणों के नाम निर्देशपूर्वक नौ अधिकारों का संक्षेप में दिग्दर्शन किया है। स्वयं आचार्य श्री ने इसी ग्रंथ में नौ अधिकारों का विशेष वर्णन अग्रिम गाथासूत्र में किया है इसलिए यहाँ केवल सामान्य जानकारी के लिए नौ अधिकारों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से कर रहे हैं:

1. **जीव** - जो शुद्ध निश्चय नय से चैतन्य रूप भाव प्राण से जीता है एवं व्यवहार से अशुद्ध जो द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है उसे जीव कहते हैं।

2. **उपयोगमय** - शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से संपूर्ण निर्मल केवल ज्ञान एवं केवल दर्शन रूप उपयोग से रहित है एवं व्यवहार नय से क्षायोपशमिक ज्ञान एवं दर्शन से युक्त है उसे उपयोगमय कहते हैं।

3. **अमूर्तिक** - संसारी जीव व्यवहार नय से मूर्तिक कर्मों से युक्त होने के कारण मूर्तिक होते हुए भी निश्चय नय से जीव कर्म निरपेक्ष है इसलिए अमूर्तिक हैं।

4. **कर्त्ता** - शुद्ध नय से जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तथापि व्यवहार नय से जीव योग एवम् उपयोग से कर्मों का आस्रव एवं बंध करता है इसलिए कर्त्ता भी है।

5. **स्वदेह परिमाण** - निश्चय नय से जीव, लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशी होते हुए भी शरीर नाम कर्म के उदय से उत्पन्न संकोच तथा विस्तार के कारण जीव संसारी अवस्था में जिस शरीर को प्राप्त करता है उस शरीर के बराबर हो जाता है।

6. **भोक्ता** - शुद्ध निश्चय नय से जीव स्व अनंत सुख को भोगता है तथापि अशुद्ध नय से कर्म परतंत्र जीव, शुभ कर्म से उत्पन्न शुभ एवं अशुभ कर्म से उत्पन्न अशुभ कर्मों को भी भोगता है।

7. **संसार में स्थित** - यद्यपि जीव शुद्ध निश्चय नय से संसार से रहित है तथापि अशुद्ध नय से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव रूपी पंचविध संसार में रहता है।

8. **सिद्ध** - यद्यपि जीव अनादि काल से कर्म से युक्त होने के कारण असिद्ध है तथापि शुद्ध निश्चय नय से कर्म से रहित होने के कारण सिद्ध है।

9. **स्वभाव से उर्ध्वगमन करने वाला** - यद्यपि कर्म परतंत्र जीव संसार में ऊँचा, नीचा, सीधा, तिरछा गमन करता है तथापि निश्चय नय से स्वभाव रूप से इसमें ऊर्ध्वगमन शक्ति है इसलिए जीव मोक्षगमन के समय ऊर्ध्वगमन ही करता है।

उपर्युक्त गुणों से युक्त प्रत्येक जीव होता है। कुछ दार्शनिक उनमें से कुछ गुण को तो मानते हैं और कुछ गुणों को नहीं मानते जैसे- चार्वाक आदि भौतिक जड़वादी दार्शनिक चैतन्य से युक्त शाश्वतिक जीव द्रव्य को नहीं मानते हैं। नैयायिक दर्शन में मुक्त जीव को ज्ञान, दर्शन से रहित मानते हैं, भट्ट तथ चार्वाक दर्शन जीव को मूर्तिक ही मानते हैं। सांख्य दार्शनिक आत्मा (पुरुष) को कर्त्ता नहीं मानता है। नैयायिक, मीमांसक और सांख्य दर्शन आत्मा को प्राप्त शरीर प्रमाण न मानकर आत्मा को हृदय कमल में स्थित बट बीज आदि के बराबर मानते हैं। बौद्ध दर्शन क्षणिकवादी होने के कारण इस दर्शन की अपेक्षा जीव स्वपूर्वोपार्जित कर्म का भोक्ता है यह सिद्ध नहीं होता। सदाशिव मत वाले आत्मा को सदा सर्वदा मुक्त मानते हैं। भट्ट एवं चार्वाक दार्शनिक आत्मा को सिद्ध नहीं मानते हैं। उपर्युक्त असम्यक् मतों को निरसन करने के लिए इस गाथा में जीव के उपरोक्त गुणों का वर्णन किया गया है।

जीव का स्वरूप

तिक्काले चदुपाणां इंदियबलमाउआणपाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदण जस्स।। (3)

According to Vyavahara Naya, That is called Jiva, which is possessed of four Pranas viz, Indriya (the senses), Bal (Force), Ayu (Life) And Ana-prana (respiration) in the three periods of time viz, the present, the past and the future and according to Nischaya Naya that which has consciousness is called Jiva.

तीन काल में इन्द्रिय, बल, आयु और आनपान इन चारों प्राणों को जो धारण करता है वह व्यवहार नय से जीव है और निश्चय नय से जिसके चेतना है, वह जीव है।

आचार्य श्री ने इस गाथा में व्यवहार नय से एवं निश्चय नय से जीव की परिभाषा दी है। संसारी जीव अनादिकाल से कर्म संतति की अपेक्षा कर्म से युक्त है। इसलिए कर्म परतंत्र जीव यथायोग्य कर्म के उदय से प्राप्त यथा योग्य द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है। इसलिए व्यवहार नय से चार द्रव्य प्राणों से और भाव प्राणों से जीता है, जीवेगा वा पहले जीया है उसे जीव कहते हैं, अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से द्रव्येन्द्रिय आदि द्रव्य प्राण है और भावेन्द्रिय आदि क्षायोपशमिक भाव

प्राण अशुद्ध निश्चय नय से है तथा निश्चय नय से शुद्ध चैतन्य ज्ञान आदि शुद्ध भाव प्राण है।

प्रत्येक द्रव्य, 'पर' से उत्पन्न न होने वाला सत्तावान होने से प्रत्येक द्रव्य अनादि अनिधन अर्थात् शाश्वतिक है। विज्ञान के अनुसार भी द्रव्य एवम् ऊर्जा कभी भी नष्ट नहीं होते हैं परंतु परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए प्रत्येक जीव अनादि से हैं और अनंत तक रहेगा भले उसमें सतत परिवर्तन होता है। डार्विन आदि कुछ आधुनिक वैज्ञानिक एवं चार्वाक आदि कुछ प्राचीन दार्शनिक जीव को शाश्वतिक नहीं मानते हैं परंतु इनका यह मत कपोल कल्पित असत्य है। इसका विशेष वर्णन मैंने 'विश्व विज्ञान रहस्य' में किया है विशेष जिज्ञासु 'विश्व विज्ञान रहस्य' का अध्ययन करें।

रूवरसगंधफासा सद्दवियप्पा वि णत्थि जीवस्य।
णो संठाणं किरिया तेण अमुत्तो हवे जीवो।। (119 नयचक्र)

जीव में न रूप है, न रस है, न गंध है, न स्पर्श है, न शब्द के विकल्प है, न आकार है न क्रिया है इस कारण से जीव अमूर्तिक है।

जो हु अमुत्तो भणिओ जीव सहावो जिणेहि परमत्थो।
उवयरियसहावादो अचेयणो मुत्तिसंजुत्तो। 120।

जिनेन्द्र देव ने जो जीव को अमूर्तिक कहा है वह जीव का परमार्थ स्वभाव है। उपचारित स्वभाव से तो मूर्तिक और अचेतन है।

कर्त्ता के विभिन्न रूप

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं।।(8)

According to Vyavhara Naya is the doer performer of the Pudgala Karmas. According to Nischaya Naya (Jiva is the doer performer of) Thought Karmas. According to Shuddha Naya (Jiva is the doer) of Shuddha Bhavas.

आत्मा व्यवहार से पुद्गल कर्म आदि का कर्त्ता है, निश्चय से चेतन कर्म का कर्त्ता है और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

इस गाथा में जीव के विभिन्न कर्तृत्वभावों का वर्णन किया गया है। व्याकरण की दृष्टि से ''स्वतंत्र कर्त्ता'' अर्थात् जो कर्म को स्वतंत्र रूप से करता है उसे कर्त्ता

कहते हैं। जीव भी विभिन्न अवस्था में विभिन्न कर्मों का कर्त्ता बनता है। उपचरित असद्भत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म का तथा आदि शब्द से औदारिक, वैक्रियक और आहारक रूप तीन शरीर तथा आहार आदि छह पर्याप्तियों के योग्य जो पुद्गल पिण्ड रूप नो/ईषत् कर्म है उसका कर्त्ता है। स्थूल व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से घट, पट, कुर्सी, टेबल, घर, चटाई, विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण, ईंट, मूर्ति आदि का जीव कर्त्ता है। निश्चय नय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय से जीव चेतन कर्म अर्थात् मिथ्यात्व भाव, ईर्ष्या भाव, घृणा, द्वेष, लोभ, काम प्रवृति, अहं प्रवृति का कर्त्ता है परंतु परम शुद्ध निश्चय नय से जीव शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंजन, सच्चिदानंद स्वरूप स्वभाव में परिणमन करता है तब अनंत ज्ञान, अनंत अतीन्द्रिय सुखादि भावों का कर्त्ता होता है। छद्मस्थ अवस्था में भावना रूप विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय नय से स्वभाव का कर्त्ता भी होता है परंतु केवली एवं मुक्त अवस्था में तो शुद्ध निश्चय नय से पूर्णरूप से अनंत ज्ञानादि भावों का कर्त्ता होता है। वस्तुतः यहाँ जो आध्यात्मिक दृष्टि है उसकी अपेक्षा अशुभ, शुभ, शुद्ध भावों का जो परिणमन है, उसी का कर्तृत्ववपना यहाँ कहा गया है, न कि हस्तपादादि से जो कार्य किया जाता है उसे यहाँ कर्त्तापने में स्वीकार किया गया है और एक विशेष आध्यात्मिक दृष्टि यह है कि शुद्ध निश्चय नय से जो शुद्ध भावों का कर्त्ता कहा गया है उसका अर्थ यह है कि उन शुद्ध भावों का जीव वेदन करता है न कि उन शुद्ध भावों का निर्माण करता है या बनाता है। प्राचीन आचार्यों ने भी जीव के विभिन्न कर्त्तापने का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से किया है। यथा-

जीव परिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गल परिणमदि।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदे।। गा. 18 समयसार

जीव परिणाम को निमित्त मात्र करके पुद्गल कर्मभाव से परिणमन करते हैं। इसी प्रकार दैव (कर्म) को शक्ति प्रदान करने वाला पुरुष परम पुरुषार्थ से हीन पुरुषार्थ है और उस शक्ति के अनुशासन में शासित होने वाला पुरुष है। जब पुरुष उसको शक्ति प्रदान करता है, तब दैव विभिन्न रूप धारण करके विभिन्न कार्य करता है।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं।
मंसवसारूहिरादिभावे उदराग्गे संजुत्तो।।

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदराग्नि से युक्त हुआ अनेक प्रकार

मांस, रुधिर आदि भावों रूप परिणमता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी जीवों के रागादि भावों को प्राप्त करके 8 प्रकार अथवा अनेक प्रकार दैव रूप में परिणमन करता है।

भावो कम्म णिमित्तो कम्मं पुण भाव कारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं।।(गा. 60 पंचास्तिकाय)

निर्मल चैतन्यमई ज्योति स्वभाव रूप शुद्ध जीवास्तिकाय से प्रतिपक्षी भाव जो मिथ्यात्व व रागादि परिणाम है वह कर्मों के उदय से रहित चैतन्य का चमत्कार मात्र जो परमात्मा स्वभाव है, उससे उल्टे जो हृदय में प्राप्त कर्म है, उनके निमित्त से होता है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मों से रहित जो शुद्धात्म तत्त्व है, उससे विलक्षण जो नवीन द्रव्यकर्म है सो निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूति से विरुद्ध जो रागादि भाव हैं उनके निमित्त से बंधते हैं। ऐसा होने पर भी जीव संबंधी रागादिभावों का और द्रव्य कर्मों का परस्पर उपादान कर्त्ता जीव ही है तथा द्रव्यकर्मों का उपादानकर्त्ता कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल ही है। दूसरे व्याख्यान से यह तात्पर्य है कि यद्यपि शुद्ध निश्चय नय से विचार किए जाने पर जीव रागादि भावों का कर्त्ता है यह बात सिद्ध है।

आदा कम्म मिलिमसो परिणामं लहदि कम्म संजुत्तं।
तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामे।। 121 प्रवचनसार

''संसार'' नामक जो यह आत्मा का तथाविध उस प्रकार का परिणाम है वही द्रव्यकर्म के चिपकने का बंध हेतु है, अब उस प्रकार के परिणाम का हेतु कौन है? इसके उत्तर में कहते हैं कि द्रव्यकर्म उसका हेतु है क्योंकि द्रव्यकर्म की संयुक्तता से ही वह बंध है।

ऐसा होने से इतरेतराश्रय दोष आएगा क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्म के साथ संबद्ध आत्मा का जो पूर्व का द्रव्यकर्म है उसका वहाँ हेतु रूप से ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म जिसका कार्यभूत है और पुराना द्रव्यकर्म जिसका कारणभूत है, ऐसा आत्मा का तथाविध परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से द्रव्य कर्म ही है और आत्मा भी अपने परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से है।

जीव परिणाम हेदु कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि।।86
ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्ण णिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि। 87

यद्यपि जीव के रागद्वेष परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्व रूप

परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गलिक कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीवकर्म के गुण रूपादिक को स्वीकार नहीं करता, उसी भाँति कर्म भी जीव के चेतनादिक गुणों को स्वीकार नहीं करता किंतु मात्र इन दोनों का परस्पर एक दूसरे के निमित्त से उपर्युक्त विकारी परिणमन होता है।

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सकेण भावेण।
पुग्गल कम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं।। गा. 88 समयसार

इस प्रकार जीव और पुद्गल के परस्पर में निमित्त कारणपना है इसका व्याख्यान किया गया है।

व्यवहार नय से भिन्न षट्कारक के अनुसार जीव के रागद्वेष निमित्त पाकर कर्मपरमाणु, द्रव्यकर्म रूप में परिणमन करता है। द्रव्य कर्म के उदय से भाव कर्म उत्पन्न होते हैं परंतु निश्चयनय से एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्त्ता नहीं होने से जीव के परिणाम का हेतु पुद्गल नहीं है एवं पुद्गल के परिणाम का हेतु जीव नहीं है।

पंचास्तिकाय में कहा है-

''निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वाकर्मणो
जीवस्य च स्वयं स्वरूप कर्तृत्वमुक्तम्।''

निश्चय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के अपने-अपने रूप के कर्त्ता हैं। निश्चय से जीव, पुद्गल का कर्त्ता नहीं होने पर भी व्यवहार नय से कर्त्ता है।

यदि एकान्ततः निश्चयनय के समान व्यवहारनय से भी जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तब अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जायेंगे। व्यवहार से भी जीव कर्म का कर्त्ता नहीं होने पर कर्मबंधन नहीं होगा, कर्मबंध के अभाव से संसार का अभाव हो जाएगा। संसार के अभाव से मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा, जो कि आगम, तर्क, प्रत्यक्ष एवं अनुभव विरुद्ध है। निश्चयनय का विषय व्यवहार से संयोजना करके शिष्य, गुरुवर्य कुन्दकुन्दाचार्य से निम्न प्रकार प्रश्न करता है।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।
किध तस्स फलं भुञ्जदि अप्पा कम्मं च देदि फलं।।
गा.63 पंचास्तिकाय प्राभृत

आगे पूर्वोक्त प्रकार के अभेद छह कारक का व्याख्यान करते हुए निश्चयनय से यह व्याख्यान किया गया है। इसे सुनकर 'नयों' के विचारों को न जानता हुआ

शिष्य एकांत का ग्रहण करके पूर्व पक्ष करता है।

यदि द्रव्यकर्म एकांत से बिना जीव के परिणाम की अपेक्षा करता है और वह आत्मा अपने को ही करता है- द्रव्यकर्म को नहीं करता है तो किस तरह आत्मा का उस बिना किए हुए कर्म के फल को भोगता है और यह जीव से बिना किया हुआ कर्म आत्मा को फल कैसे देता है? इस प्रश्न का आगमोक्त यथार्थ प्रत्युत्तर देते हुए कुन्दकुन्द स्वामी बताते हैं-

जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढ़गहणपडिबद्धा।
काले विभुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजन्ति।।67

संसारी जीवों के अपने-अपने रागादि परिणामों के निमित्त से तथा पुद्गलों में स्निग्ध-रुक्ष गुण के कारण द्रव्य-कर्मवर्गणायें जीव के प्रदेशों में जो पहले से ही बंधी हुई होती हैं वे ही अपनी स्थिति के पूरे होते हुए उदय में आती हैं तब अपने अपने फल को प्रगट कर झड़ जाती है, उसी समय वे कर्म अनाकुलता लक्षण जो पारमार्थिक सुख है उससे विपरीत परम आकुलता को उत्पन्न करने वाले सुख तथा दुःख उन जीवों का मुख्यता से देती है, जो मिथ्यादृष्टि हैं अर्थात् जो निर्विकार चिदानंदमयी एकस्वरूपभाव जीव को और मिथ्यात्व रागादि भावों को एक रूप ही मानते हैं और जो मिथ्याज्ञानी हैं अर्थात् जिनको यह ज्ञान है कि जीव रागद्वेष-मोहादि रूप ही होते हैं तथा जो मिथ्याचारित्री हैं अर्थात् जो अपने को रागादि के परिणमन करते हुए जीव अभ्यंतर में अशुद्ध निश्चय से ही हर्ष या विषाद रूप तथा व्यवहार से बाहरी पदार्थों में नाना प्रकार इष्ट-अनिष्ट इन्द्रियों के विषयों के प्राप्ति रूप मधुर या कटुक विष के रस के आस्वादन रूप सांसारिक सुख या दुःख की वीतराग परमानन्दमयी सुखामृत के रसास्वाद के भोग को न पाते हुए भोगते हैं, ऐसा अभिप्राय जानना।

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंच्छण्णो।।69

इस प्रकार अपने कर्मों से कर्त्ता भोक्ता होता हुआ आत्मा मोहाच्छादित वर्तता हुआ अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

इस प्रकार प्रगट प्रभुत्व शक्ति के कारण जिसने अपने कर्मों द्वारा कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व का अधिकार ग्रहण किया है ऐसे इस आत्मा को अनादि मोहाच्छादितपने के कारण विपरीत अभिनिवेश की उत्पत्ति होने से सम्यग्ज्ञान ज्योति अस्त हो गई है, इसलिए यह सान्त अथवा अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

जं जं जे जे जीवा पज्जाणं परिणमंति संसारे।
रायस्सं य दोसस्स य मोहस्स वसा मुणेयव्वा।।988

संसार में जो जो जीव जिस जिस पर्याय में परिणमन करते हैं वे सब रागद्वेष व मोह के वशीभूत होकर ही परिणमते हैं ऐसा जानना।

भोक्ता के विभिन्न रूप

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स।। (9)

According to Vyavahara Naya, Jiva enjoys happiness and misery as fruits of Pudgala karmas, According to Nischaya Naya, Jiva has conscious Bhavas only.

आत्मा व्यवहार से सुख-दुःख रूप पुद्गल कर्मों को भोगता है और निश्चय नय से आत्मा चेतन स्वभाव को भोगता है।

क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। न्यूटन के तृतीय गति सिद्धांतानुसार -

To every action, there is an equal and opposite reaction.

अर्थात् जहाँ क्रिया है, वहाँ पर उसी प्रतिक्रिया भी होती है एवं प्रतिक्रिया उस क्रिया की विपरीत समानुपाती क्रिया होती है। जो जैसा करता है, वह उसी प्रकार उसका भोक्ता भी होता है। जैसे बबूल के वृक्ष बोने पर बबूल का वृक्ष उत्पन्न होगा और उसमें बबूल की ही फलियाँ लगेंगी, आम के बीज बोने पर आम के वृक्ष ऊगेंगे एवं उसमें आम के फल लगेंगे। इसलिए कहते हैं "As you sow, sow you reap" अर्थात् जैसा बोयेगें वैसा काटेंगे व पायेंगे। आत्मानुशासन में गुणभद्र स्वामी ने कहा भी है।

यत्प्राग्जन्मनि संचितं तनुभृतां कर्माशुभं व शुभं।
यद्दैव यदुदीरणादनुभवन् दुःख सुख वागतम्।।

जीव ने पूर्व भव में जिस अशुभ भाव रूप कर्त्तापने से पाप कर्म का एवं शुभभाव रूप कर्त्तापने से पुण्य कर्म का संचय किया है वह दैव है उसकी उदीरणा उदय से यथाक्रम से दुःख एवं सुख का अनुभव करता है।

गोस्वामी तुलसी दास ने भी कहा है-

कर्म प्रधान विश्व करिराखा।

जो जस करहि फलहि तस चाखा।।

अमितगति आचार्य ने कहा भी है-

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।। (30)

पहले जो जीव पुण्य एवं पाप कर्म करता है उसका ही फल शुभ एवं अशुभ रूप से प्राप्त करता है। यदि कोई दूसरे के द्वारा किए गए शुभ एवं अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तो स्वयं किया हुआ कर्म निरर्थक हो जाएगा।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,
न कोऽपि कस्याऽपि ददापि किंचन्।
विचार यत्रेवमनन्य मानसः
परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्।। 3

अपने उपार्जित कर्म छोड़कर कोई भी प्राणी किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार करते हुए हे आत्मन्। तू एकाग्रचित हो और दूसरा देता है इस बुद्धि को छोड़।

जीव उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से इष्ट तथा अनिष्ट पाँचों इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न सुख एवं दुःख को भोगता है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय में अतरंग में सुख तथा दुःख को उत्पन्न करने वाला द्रव्य कर्म रूप पुण्य एवं पाप का उदय है उसको भोगता है। अशुद्ध निश्चयनय से हर्ष तथा विषाद रूप सुख-दुःख को भोगता है और शुद्ध निश्चयनय से रत्नत्रय से उत्पन्न अविनाशी अतीन्द्रिय अक्षय आनन्द रूप सुखामृत को भोगता है।

जीव का प्रदेशत्व स्वभाव

अणुगुरु देहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणदो असंखदेसो वा।। (10)

According to Vyavahara, the conscious Jiva, being without Samudghata, becomes equal in extent to a small or a large body, by contraction and expansion;but according to Nischaya Naya (it) exist in innumerable Pradesas.

व्यवहार नय से समुद्घात अवस्था के बिना यह जीव, संकोच तथा विस्तार में छोटे और बड़े शरीर के प्रमाण रहता है और निश्चयनय से जीव असंख्यात प्रदेशों का धारक है।

जीव में संकोच-विस्तार करने की शक्ति है, जिस प्रकार रबड़, प्लास्टिक आदि में संकोच-विस्तार की शक्ति होती है। इस संकोच-विस्तार की शक्ति के कारण ही जीव संसार अवस्था में शरीर-नाम-कर्म के उदय से जिस छोटे-बड़े शरीर को प्राप्त करता है उस शरीर के आकार रूप यह जीव हो जाता है। जिस प्रकार दीपक का प्रकाश छोटे-बड़े कमरे के कारण संकोच-विस्तार को प्राप्त हो जाता है।

आचार्य उमा स्वामी ने कहा भी है-

प्रदेशसंहार विसर्पाभ्याम् प्रदीपवत्। अ. 2

प्रदेश संहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवनामवगाहो भवति।

मार्गणागुणस्थानैः चतुर्दशभिः भवन्ति तथा अशुद्धनयात्।
विज्ञेयाः संसारिणः सर्वे शुद्धाःखलु शुद्धनयात्।।

Again, according to impure (Vyavahara) Naya, Samsari Jivas are of fourteen kinds according to Margana and Gunasthana. But according to pure Naya, all Jivas should be understood to pure.

संसारी जीव अशुद्ध नय से चौदह मार्गणास्थानों से तथा चौदह गुणस्थानों से चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं और शुद्धनय से तो सब संसारी जीव शुद्ध ही हैं।

शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय से सिद्ध जीव तो शुद्ध हैं ही परंतु संसारी जीव भी शुद्ध हैं क्योंकि शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय केवल शुद्ध द्रव्य का ही ग्रहण करता है पर मिश्र अवस्थाओं को ग्रहण नहीं करता है क्योंकि इस नय का प्रतिपादित विषय शुद्ध द्रव्य ही होता है। अशुद्ध नय अर्थात् व्यवहार नय से संसारी जीव कर्म से संयुक्त है। इस अवस्था में जीव के अनेक भेद प्रभेद हो जाते है क्योंकि संसारी जीव अनंतानंत हैं और कर्म भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इस अपेक्षा से संसारी जीव के भी संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं तथापि समझने के लिए एवं समझाने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली को अपनाकर उसमें समस्त भेद प्रभेदों को गर्भित किया जाता है।इस गाथा में आचार्य श्री ने संसारी जीवों के वर्गीकरण को मुख्य दो

भेदों में किया है। (1) मार्गणा स्थान, (2) गुणस्थान। मार्गणा स्थान के पुनः 14 अंतर्भेद हो जाते हैं और उस अतर्भेदों में भी अनेक प्रभेद होते हैं इसी प्रकार गुणस्थान के 14 भेद होते हैं उन 14 भेद के भी अनेक प्रभेद हो जाते हैं।

मानसिक शक्ति

अपने मूल्यों पर जीने का साहस जुटाएं

मानसिक शक्ति का अर्थ है अपनी भावनाओं को नियंत्रित करना, विचारों को मैनेज करना और विपरीत परिस्थितियों के बावजूद सकारात्मक ढंग से व्यवहार करना।

मानसिक शक्ति बढ़ाना यानी अपने मूल्यों के अनुसार जीने का साहस जुटाना और इतना बोल्ड होना कि सफलता की अपनी परिभाषा गढ़ सकें। कुछ तरीकों और बातों को ध्यान में रखकर कोई भी मानसिक शक्ति बढ़ा सकता है।

1. 10 मिनट रूल : यदि कोई काम बंद करने का मन करें उसे दस मिनट और करें। जैसे दौड़ने जाने के समय सोने का मन करें तो 10 मिनट दौड़ें, क्योंकि शुरू करना ही सबसे कठिन होता है। आप फिर पीछे नहीं लौटते।

2. भावनात्मक स्थिरता : आप क्या महसूस कर रहे हैं उसे दरकिनार कर ऑब्जेक्टिव रहकर फैसले लेने का अभ्यास करें। यह रोज के कामों में किया जा सकता है।

3. निर्लिप्तता : आप मुसीबतों से शक्तिशाली होकर निकल सकते हैं यदि यह याद रखें कि यह आपके बारे में नहीं है। यानी चीजों को निजी स्तर पर न लें या यह सोचने में वक्त बर्बाद न करें कि 'मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है?' जो चीजें आपके बस में हो उस पर फोकस रखें।

4. उपलब्धि पर फोकस : दूसरों की कार मकान, जॉब आदि से ईर्ष्या करने से बचें। जो मिला है उसके प्रति आभारी रहें। जो हासिल हुआ है और जो करना है उस पर फोकस रखें।

5. अटल सकारात्मकता : सकारात्मक बने रहें खासतौर पर तब भी जब आपका सामना नकारात्मक लोगों से हो। खुद नीचे आने की बजाय उन्हें ऊपर उठाएँ। आप जो हासिल कर रहे हैं उसे इन लोगो को बर्बाद न करने दें।

मेरी आत्माश्रित धर्म साधना

(धन-जन-मान-नाम-संकीर्ण धर्म आश्रित से परे मैं (कनक सूरी) आत्माश्रित धर्म कर रहा हूँ)

आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे ..., सायोनारा ...)

'कनक' तू! आत्मकल्याण कर ऽऽ
द्रव्यक्षेत्रकालभावानुसार... स्व-आश्रित धर्म तू कर ऽऽ।। (ध्रुव)
वस्तु स्वभावमय धर्म होने से ... तेरा धर्म तुझ में ही स्थित ऽऽ
द्रव्य-भाव-नोकर्म आधीन से ... तेरा धर्म हुआ सुप्त विकृत ऽऽऽ
कर्मातीत तेरा स्व/(आत्मा) धर्म ऽऽ ।। कनक ... (1)

स्वतंत्र-स्वाधीन-स्वधर्म-सुधर्म... आत्मधर्म-मोक्ष-परिनिर्वाण ऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-आनन्द व सच्चिदानन्द... अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्य ऽऽ
इत्यादि तेरे धर्म के ही सुनाम ऽऽ ।। कनक... (2)

धन-जन-मान परे तेरा स्वधर्म... तीर्थंकर भी त्यागते राज्य-वैभव
यदि धनादि से होता परम धर्म... शान्ति-कुन्थु-अरह क्यों त्यागे वैभव
तीनों ही थे तीर्थंकर-चक्री-कामदेव ऽऽ।। कनक ... (3)

साधु बनकर एकान्त-मौन-निस्पृहता से... करते स्वआत्मा का शोध-बोध
बाह्य प्रभावना व प्रवचन भी न करते... मन्दिर-मूर्ति-धर्मशालादि निर्माण
इनके स्वामीत्व त्याग से बने श्रमण ऽऽ।। कनक... (4)

त्याग को पुनः न ग्रहण करने योग्य... त्यागे हुए भोजन भी न ग्रहण योग्य
धन-जनादि आश्रित धर्म होता पराधीन... संकल्प-विकल्प-संक्लेश पूर्ण ऽऽ
याचना-दबाव-प्रलोभन-भयपूर्ण ऽऽ।। कनक... (5)

इससे तेरा होगा आत्मपतन... होंगे प्रदूषित भी मूल-उत्तरगुण ऽऽ
समता-शान्ति-आत्मविशुद्धि क्षीण... आधि-व्याधि-उपाधि से जराजीर्ण ऽऽ
इहपरलोक होगा तेरा दुःख पूर्ण ऽऽ।। कनक... (6)

अपना-पराया-धनी-गरीब में पक्षपात...निन्दा-अपमान व कलह-वैरत्व ऽऽ
भद्र गृहस्थ से भी होंगे नीच काम... श्रमिक हो जाओगे न रहोगे श्रमण ऽऽ

चक्री से भी पूज्य तू हो श्रमण ऽऽ।। कनक...(7)

तेरे आदर्श हैं तीर्थंकर नहीं क्षुद्रजन.. 'वन्दे तद्गुणलब्धये' हेतु करो यत्न ऽऽ
नकल-प्रतिस्पर्द्धा परे करो आत्मोद्धार... स्व-उद्धार से ही पार होगा संसार ऽऽ
'कनक' बनो सत्य-शिव-सुन्दर ऽऽ।। कनक...(8)

ओबरी 12/02/2018 मध्याह्न 1:56

संदर्भ-

सत्तूमित्ते य समा, पसंसणिद्दा अलद्धिलद्धि समा।
तणकणए समभावा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।46।। (अष्टपा.)

जो शत्रु और मित्र, प्रशंसा और निंदा, हानि और लाभ, तथा तृण और सुवर्ण में समान भाव रखती है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।

उत्तममज्झिमगेहे, दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा।
सव्वत्थगिहिदपिंडा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।47।।

जहाँ उत्तम और मध्यम घर में, दरिद्र तथा धनवान् में, कोई भेद नहीं रहता तथा सब जगह आहार ग्रहण किया जाता है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।

णिग्गंथा णिस्संगा, णिम्माणासा अराय णिद्दोसा।
णिम्मम णिरहंकारा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।48।।

जो परिग्रहरहित है, स्त्री आदि परपदार्थ के संसर्ग रहित है, मानकषाय और भोग-परिभोग की आशा से रहित है, दोष से रहित है, ममता रहित है और अहंकार से रहित है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।

णिण्णेहा णिल्लोहा, णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा।
णिब्भव णिरासभावा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।49।।

जो स्नेहरहित है, लोभरहित है, मोहरहित है, विकाररहित है, कलुषतारहित है, भयरहित है और आशारहित है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।

जह जायरूवसरिसा, अवलंबियभुय णिराउहा संता।
परकियणिलयणिवासा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।50।।

जिसमें सद्योजात बालक के समान नग्न रूप धारण किया जाता है, भुजाएँ नीचे की ओर लटकायी जाती हैं, जो शस्त्ररहित है, शांत है और जिसमें दूसरे के द्वारा बनायी हुई वसतिका में निवास किया जाता है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।

उवसमखमदमजुत्ता, सरीरसंक्कारवज्जिया रूक्खा।
मयरायदोसरहिया, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।51।।

जो उपशम, क्षमा तथा दमसे युक्त है, शरीर के संस्कार से वर्जित है, रूक्ष है, मद राग एवं द्वेष से रहित है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।

विवरीयमूढभावा, पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता।
सम्मत्तगुणविसुद्धा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।52।।

मिच्छत्तं अण्णाणं, पावं पुण्णं चएवि तिविहेण।
मोणव्वएण जोई, जोयत्थो जोयए अप्पा।।28।।

मिथ्यात्व, अज्ञान, पाप और पुण्य को मन वचन कायरूप त्रिविधयोगों से छोड़कर जो योगी मौन व्रत से ध्यानस्थ होता है वही आत्मा को द्योतित करता है--प्रकाशित करता है--आत्मा का साक्षात्कार करता है।

जं मए दिस्सदे रूवं, तण्ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे णंतं, तम्हा जंपेमि केण हं।।29।।

जो रूप मेरे द्वारा देखा जाता है वह बिलकुल नहीं जानता है और जो जानता है वह दिखायी नहीं देता, तब मैं किसके साथ बात करूँ?

सव्वासवणिरोहेण, कम्मं खवदि संचिदं।
जोयत्थो जाणए जोई, जिणदेवेण भासियं।।30।।

सब प्रकार के आस्रवोंका निरोध होने से संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं तथा ध्याननिमग्न योगी केवलज्ञान को उत्पन्न करता है ऐसा जिनेंद्रदेव ने कहा है।

जो सुत्तो ववहारे, सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे, सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।।31।।

जो मुनि व्यवहार में सोता है वह आत्मकार्य में जागता है और जो व्यवहार में जागता है वह आत्मकार्य में सोता है।

इय जाणिऊण जाई, ववहारं चयइ सव्वहा दव्वं।
झायइ परमप्पाणं, जह भणियं जिणवरिंदेण।।32।।

ऐसा जानकर योगी सब तरह से सब प्रकार के व्यवहार को छोड़ता है और जिनेंद्रदेव ने जैसा कह है वैसा परमात्मा का ध्यान करता है।

ममकार के त्याग बिना मुक्ति नहीं

वसदि पडिमोवयरणो गण गच्छे समयसंघ जाइकुले।
सिस्स पडिसिस्स छत्ते सुयजाते कप्पडे पुच्छे।।161।। र.सा.

ममकार के त्याग बिना मुक्ति नहीं

पिच्छे संत्थरणे इच्छासु लोहेण कुणइ ममयारं।
यावच्च अट्टरुद्धं ताव ण मुंचेदि ण हु सोक्खं।।162।।

अर्थ :- साधु-त्यागी मुनि जनों को जहाँ पर गुफा, धर्मशाला, मंदिर आदि रूकने के स्थान वसतिका मिलते हैं अथवा रूकते हैं इनमें, प्रतिमा, उपकरणों में आसक्ति, बहुत साधुओं का समूह अर्थात् गण आचार्य की परंपरा आम्नाय में चलने वाले साधुजन को गच्छ कहते हैं। इनमें शास्त्र पुराण, संघ ऋषि यति अनगार और मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं का समूह संघ में जाति कुल में, शिष्य प्रतिशिष्य विद्यार्थी छात्र में, पुत्र पौत्रादि में संस्थर-चटाई पाटा घास फलालादि इनकी इच्छाओं में लोभ से आसक्त पूर्वक, ममकार-मैं-मैं, मेरा-मेरा, अच्छा-अच्छा ऐसे ममत्व भाव को रखता है, जब तक इनमें आर्त रौद्र ध्यान परिणाम रहते हैं, प्रवृत्ति करता है इनको जब तक भाव से और बाह्य से नहीं छोड़ता है तब तक इस जीव का कर्म हल्का नहीं होता है, अगले कर्म भी बांधता रहता है। ऐसे जीव को सुख की प्राप्ति कभी नहीं होती है। मोक्ष का रास्ता भी नहीं मिलता है।

किसी भी प्रकार से पर वस्तु में, कार्य आदि में इस जीव का मन, भाव लगा रहता है, वह परभाव ही है, आत्मकल्याण का, कर्म निर्जरा का कार्य नहीं है। इसे समझकर सब प्रकार का ममत्व, प्रेम, आस्था, संकल्प, विकल्प रूप भावों को परिणामों को तथा बाह्य समस्त पदार्थों को छोड़ना ही हितकर है, सुखकर है आत्म हितेशी सच्चा साधु का धर्म है।

रत्नत्रय युक्त निर्मल आत्म समय है

रयणत्तयमेव गणं गच्छं गमणस्स मोक्खमग्गस्स।
संघो गुणसंधाओ समयो खलु णिम्मलो अप्पा।।163।।

अर्थ :- मोक्षमार्ग में गमन करने वाले साधु का रत्नत्रय ही गण है। निस्संग होकर आत्मा के गुणवृद्धि समूह को लेकर मोक्षमार्ग में गमन करना ही गच्छ है।

निश्चयकर आत्मा के गुण समूह का प्रकाशमान होना ही संघ है। निर्मल ज्ञान रूप आत्मा ही समय आगम है।

जिनलिंग मुक्ति का हेतु

जिणलिंग धरो जोई विराय सम्मत्त संजुदो णाणी।
परमोवेक्खाइरियो सिवगइ पहणायगो होई।।164।।

अर्थ :- जिस आत्म उत्सुक भव्य ने मुनि दीक्षा अर्थात् जिनलिंग को धारण किया है, नग्न निर्ग्रंथ दिगम्बर अवस्था को पाया है, जो आत्मज्ञान से परिपूर्ण है, परम वैराग्य युक्त है, जिसका सम्यग्दर्शन अत्यंत शुद्ध है और रागद्वेष से सर्वथा रहित है, बाह्य संसार विषय में उपेक्षा भाव है और वीतराग भावों में एक रूप है ऐसे आचार्य मुनि मोक्ष पथ के सच्चे नायक है, प्रधान है, अन्यथा नहीं।

संदर्भ-

पूयादिसु णिरवेक्खो जिण-सत्थं जो पढेइ भत्तीए।
कम्म-मल-सोहणट्ठं सुय-लाहो सुहयरो तस्स। (462 स्वा. का.)

जो मुनि अपनी पूजा, प्रतिष्ठा की अपेक्षा न करके, कर्म मल को शोधन करने के लिये जिन शास्त्रों को भक्ति पूर्वक पढ़ता है, उसका श्रुतलाभ सुखकारी होता है।

पूजादिषु निरपेक्षः पूजालाभख्यातिप्रशंसनाद्व्यादिप्राप्तिषु वांछारहितः निरीहः।

जो जिण-सत्थं सेवदि पंडिय-माणी फलं समीहंतो।
साहम्मिय-पडिकूलो सत्थं पि विसं हवे तस्स।।463।।

जो पण्डिताभिमानी लौकिक फल की इच्छा रखकर जिन शास्त्रों की सेवा करता है और साधर्मी जनों के प्रतिकूल (विरोध) रहता है उसका शास्त्रज्ञान भी विषरूप है।

जो जुद्ध-काम-सत्थं रायादोसेहिं परिणदो पढइ।
लोयावंचण-हेदुं सज्झाओ णिप्फलो तस्स।।464।।

जो पुरुष राग-द्वेष से प्रेरित होकर लोगों को ठगने के लिए युद्ध शास्त्र और कामशास्त्र को पढ़ता है उसका स्वाध्याय निष्फल है।

रागद्वेषाभ्यां परिणतः क्रोधमानमायालोभहास्यादिस्त्रीवेदादिरागद्वेषैः परिणतिं प्राप्तः एकत्वं गतः। किमर्थम्। लोकवंचनार्थ जनानां

प्रतारणनिमित्तम्।

जो अप्पाणं जाणदि असुई-सरीरादु तच्चदो भिण्णं।
जाणग-रूव-सरूवं सो सत्थं जाणदे सव्वं।।465।।

जो अपनी आत्मा को इस अपवित्र शरीर से निश्चय से भिन्न तथा ज्ञायकस्वरूप जानता है वह सब शास्त्रों को जानता है।

स्वात्मानं जानाति। कीदृशमात्मानम्। ज्ञायकस्वरूपं ज्ञायकरूपः वेदकस्वभावः स्वरूपः आत्मा यस्य स तथोक्तस्तं केवलज्ञानदर्शनमयमात्मानमित्यर्थः। कथम् आत्मानं जानन् सर्वशास्त्रं जानातीति। तदुक्तं च। ''जो हि सुदेण भिगच्छदि अप्पामिणं तु केवलं सुद्धं। तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।। जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवली तमाहु जिणा। सुदणाणमाद सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।।''

जो णवि जाणदि अप्पं णाण-सरूवं शरीरदो भिण्णं।
सो णवि जाणदि सत्थं आगम-पाढं कुणंतो वि।।466।।

जो ज्ञान स्वरूप आत्मा को शरीर से भिन्न नहीं जानता, वह आगम का पठन पाठन करते हुए भी शास्त्र को नहीं जानता।

मुनि के अलौकिक आकिंचन्य धर्म

ति-विहेण जो विवज्जदि चेयणमियरं च सव्वहा संगं।
लोय-ववहार-विरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स।।402।।

जो लोकव्यवहार से विरक्त मुनि चेतन और अचेतन परिग्रह को मन वचन काय से सर्वथा छोड़ देता है उसके निर्ग्रन्थपना अथवा आकिंचन्य धर्म होता है।

लोकव्यवहारविरतःलोकानांव्यवहारः मानसन्मानदानपूजालाभादिलक्षणः तस्मात् विरतः विरक्तः निवृत्तः, अथवा संघयात्राप्रतिष्ठाप्रतिमाप्रासादोद्धरणादिपुण्यकरणादि रहितः।

मुनि दान, सन्मान, पूजा, प्रतिष्ठा, विवाह आदि लौकिक कर्मों से विरक्त होते ही हैं, अतः पुत्र, स्त्री, मित्र, बन्धु-बान्धव आदि सचेतन परिग्रह तथा जमीन जायदाद, सोना, चांदी, मणि, मुक्ता आदि अचेतन परिग्रह से और पींछी कमण्डुल आदि अचेतन परिग्रह से भी ममत्व नहीं करते। अथवा संघयात्रा, पंचकल्याण आदि प्रतिष्ठा, प्रतिमा-प्रसाद (मूर्ति, मन्दिर, धर्मशाला) आदि के जीर्णोद्धार आदि पुण्य कार्य भी रहित इसी का नाम आकिंचन्य है। मेरा कुछ भी नहीं है, इस प्रकार के भाव को आकिंचन्य कहते है। अर्थात् 'यह मेरा है' इस प्रकार के संस्कार को दूर करने के लिये अपने शरीर वगैरह में भी ममत्व न रखना आकिंचन्य धर्म है। शरीर वगैरह से भी निर्ममत्व

होने से मोक्षपद की प्राप्ति होती है।

हिंसारंभो ण सुहो देव-णिमित्तं गुरुण कज्जेसु।
हिंसा पावं ति मदो दया-पहाणो जदो धम्मो।।406।।

चुकि हिंसा को पाप कहा है और धर्म को दया प्रधान कहा है, अतः देव के निमित्त से अथवा गुरुके कार्य के निमित्त से भी हिंसा करना अच्छा नहीं है।

इत्येतत्सूत्रेण देवार्थं गुरु कार्येषु हिंसारम्भो निराकृतः, यतः हिंसा पापं इति जीववधसंकल्पं पापमिति धर्मः यतिधर्मः दयाप्रधानो मतः कथितः षट्जीवनिकायरक्षापरः यतिधर्मः प्रतिपादितोऽस्ति। तथा प्रकारान्तरेण अस्याः गाथाया व्याख्यानमाह। देवनिमित्तं देवानामिज्याचैत्यचैत्यालयसंघयात्राद्यर्थः यतिभिः हिंसारम्भः कियमाणः शुभो न भवति। तथा गुरुणां कार्येषु वसतिकानिष्पादनपाकादिवि धानसचित्तजलफल धान्यादिप्रासुक-करणादिषु च हिंसारम्भः सावद्यारम्भः पापारम्भः कियमाणः शुभो न भवति। वसुनन्दिना यत्याचारे प्रोक्तं च।

''सावज्जकरणजोग्गं सव्वं तिविहेण तियरणविसुद्धं।
वज्जंति वज्जभीरू जावज्जीवा य णिग्गंथा।।''

निर्ग्रन्थाः अवद्यभीरवः पापभीरवः सावद्यकरणं योगं सर्वमपि त्रिविधेन त्रिप्रकारेण कृतकारितानुमतरूपेण त्रिकरणविशुद्धं यथा भवति मनोवचनकायकियाशुद्धं यथा भवति तथा वर्जयन्ति परिहरन्ति यावज्जीवं मरण पर्यन्तम्। तथा

''तणरूक्खहरिदछेदणतयपत्तपवालकैदमूलाइं।
फलपुप्फबीयघादं ण करंति मुणी ण कारेंति।।''

तृणच्छेदं वृक्षच्छेद हरिच्छेदनं च न कुर्वन्ति न कारयन्ति मुनयः। तथा

''पुढवीय समारंभं जलपवणग्गीतसाणमारंभं।
ण करंति ण कारेन्ति य कीरंतं णाणुमोदंति।।''

पृथिव्याः समारंभं खननोत्कीरणचूर्णनादिकं न कुर्वन्ति न कारयन्ति नानुमन्यन्ते धीरा बुद्धिमन्तो मुनयः। तथा जलपवनाग्नित्रसानां सेचनोत्कर्षणवीजनज्वालमर्दन-त्रासनादिकं न कुर्वन्ति न कारयन्ति नानुमन्यन्त इति।

ग्रन्थकार ने उक्त गाथा के द्वारा इन सब प्रकार की हिंसाओं का निषेध किया है। उनका कहना है कि धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा भी शुभ नहीं है। अथवा इस गाथा का दूसरा व्याख्यान इस तरह भी है कि देव पूजा, चैत्यालय, संघ और यात्रा वगैरह के लिए मुनियों को आरम्भ करना ठीक नहीं है। तथा गुरुओं के लिए वसतिका

बनवाना, सचित जल फल धान्य वगैरह का प्रासुक करना आदि आरम्भ भी मुनियों के लिए उचित नहीं है, क्योंकि ये सब आरम्भ हिंसा के कारण है। वसुनन्दी आचार्य ने यति-आचार बतलाते हुए लिखा है- निग्रंथ मुनि पाप के भय से अपने मन, वचन, और काय को शुद्ध करके जीवन पर्यन्त के लिए सावद्य योग का त्याग कर देते हैं।। तथा मुनि हरित तृण, वृक्ष, छाल, पत्र, कोंपल, कन्दमूल, फल, पुष्प और बीज वगैरह का छेदन भेदन न स्वयं करते हैं और न दूसरों से कराते हैं। तथा मुनि पृथ्वी को खोदना, जल को सींचना, अग्नि को जलाना, वायु को उत्पन्न करना और त्रसों का घात न स्वयं करते हैं, न दूसरों से कराते हैं और यदि कोई करता हो उसकी अनुमोदना भी नहीं करते।

प्रसिद्धि के विभिन्न उपाय-

उष्ट्राणां विवाहेषु गीत गायति गर्दभा।
परस्पर प्रशंसंति अहो रूप अहो ध्वनि।।

अर्थात् ऊँट के विवाह में ऊँट ने गधे को गीत गाने के लिए निमंत्रण दिया। गधा आकर उसके विवाह में उसके रूप की प्रशंसा में गीत गाया तो ऊँट प्रसन्न होकर गधे की ध्वनि की प्रशंसा की। इसी प्रकार साधु, श्रावक जिससे स्वयं की स्वार्थ सिद्धि होती है। उसकी प्रशंसा में सुललित मधुर कंठ से राग अलापते रहते हैं।

घटं भित्वा पटं छित्वा कृत्वां गर्दभंरोहणं।
येन-केन प्रकारेण मनुष्यः प्रसिद्धः भवेत्।।

घट तोडकर, वस्त्र फाडकर, गधे के ऊपर चढकर येन केन प्रकार से भी से भी मनुष्य प्रसिद्ध बनना चाहते हैं अर्थात् मनुष्य प्रसिद्ध बनने के लिए योग्य-अयोग्य, न्याय-अन्याय, करणीय-अकरणीय, शोभनीय-अशोभनीय आदि सब कार्य करता है। मेरे दीर्घ अनुभव भी हैं कि अधिकांश सामान्य जन से लेकर साधु-संत तक दान, तप, पूजा-विधान, पंचकल्याणक, केंशलोच, जन्मजयंयति, दीक्षाजयंति, चातुर्मास, विहार, भाषण-प्रवचन, ज्ञानार्जन से लेकर धर्मार्जन, फैशन-व्यसन, हाव-भाव, बोली बोलना, चलना, खाना, जीना आदि प्रसिद्धि/दिखावा के लिए करते हैं। यदि अच्छी भावना से दान आदि श्रावक करते हैं तथा मुनि स्व-कर्त्तव्यों का पालन करते हैं तब आत्म विशुद्धि, पाप कर्म का संवर तथा निर्जरा, पुण्य संचय के साथ-साथ आनुसंगिक रूप से और भी अधिक कीर्ति/प्रसिद्धि स्वयमेव होती है। परंतु जीव मोह, अहंकार आदि के कारण यथार्थ का परिपालन नहीं कर पाता है। जैसा कि ''मृग

मरीचिका''

जिस प्रकार से सर्प का कांचली त्यागना सरल है परंतु विष त्यागना कठिन है उसी प्रकार मनुष्य का धनादि बाह्य त्याग करना सरल है परंतु प्रसिद्धि त्यागना कठिन है। इतना ही नहीं बाह्य त्याग भी लोकेष्णा(प्रसिद्धि) को घटाने के लिए ही नहीं या स्वयमेव जो त्याग से प्रसिद्धि होती है उसके लिए भी नहीं परंतु अहंकार पूर्ण प्रसिद्धि के लिए करते हैं। कहा भी है-

कंचन तजना सहज है, सहज तिया का नेह।
मान बढाई ईर्ष्या दुर्लभ तजना येह।।

वस्तुतः अंतरंग में जो मान, कषाय, ईर्ष्याभाव, अहं ग्रन्थि, हीन ग्रंथि है उसके कारण मान बढाई (लोकेष्णा) की भावना होती है। इसलिए यह लोक प्रसिद्धि की तृष्णा मानसिक गंभीर व्यापक रोग है। इसलिए इसके सद्भाव में मनुष्य विभिन्न प्रकार के कषाय, ईर्ष्या, द्वेष, लडाई, झगड़ा, मायाचारी, निंदा, चापलूसी, संक्लेश, तनाव, युद्ध, हिंसा, हत्या, फैशन, व्यसन, आडम्बर, दिखावा आदि करता है जिससे उसे शांति के परिवर्तन में अंशाति ही अंशाति मिलती है, शारीरिक, मानसिक रोग हो जाते हैं, सज्जनों की दृष्टि में उसकी प्रसिद्धि और भी घट जाती है। नीति वाक्य है-

क्षांति तुल्यं तपो नास्ति संतोषान्न सुखं परम्।
नास्ति तृष्णा समो व्यार्धिन च धर्मः दया परः।।

इतना ही नहीं इस पाप के कारण अगले भव में भी दुःखी होता है। यथा-

मान बढाई कारज जो धन खरचे मूढ।
मर करके हाथी होयेगा आगे लटकाये सूंढ।।

प्राचीन कथानुसार एक दीर्घ तपस्वी भी अपनी प्रशंसा, प्रसिद्धि के लिए अपने यथार्थ परिचय के छिपाने के भाव के कारण मर करके हाथी हुआ। कहा है-

अधीत्य सकलं श्रुतं चिरमुपास्य घोरं तपो।
यदीच्छसि फलं तयोरहि हिलाभपूजादिकम्।।
छिन्नसि सुतपस्तरोः प्रसवमेव शून्याशयः।
कथं समुपलप्स्यसे सुरसमस्य पक्वं फलम्।।189 आत्मानुशासन

समस्त आगम का अभ्यास और चिरकाल तक घोर तपश्चरण करके यदि उन दोनों का फल तू यहाँ सम्पति आदि का लाभ और प्रतिष्ठा आदि चाहता है तो समझना चाहिए कि तू विवेकहीन होकर उस उत्कृष्ट तपरूप वृक्ष के फूल को ही नष्ट करता है।

फिर ऐसी अवस्था में तू उसके सुंदर व सुस्वादु पके हुए रसीले फल को कैसे प्राप्त कर सकेगा? नहीं कर सकेगा। जिस प्रकार कोई मनुष्य वृक्ष को लगाता है, जल सिंचन आदि से उसे बढ़ाता है, और आपत्तियों से उसका रक्षण भी करता है, परंतु समयानुसार जब उसमें फूल आते हैं तब वह उन्हें तोड़ लेता है और इसी में संतोष अनुभव करता है। इस प्रकार से वह मनुष्य भविष्य में आने वाले उसके फलों से वंचित ही रहता है। कारण यह है कि फलों की उत्पत्ति के कारण तो वे फूल ही थे जिन्हें कि उसने तोड़कर नष्ट कर दिया है। ठीक इसी प्रकार से जो प्राणी आगम का अभ्यास करता है और घोर तपश्चरण भी करता है परंतु यदि वह उसके फलस्वरूप प्राप्त हुई ऋद्धियों एवं पूजा प्रतिष्ठा आदि में ही सन्तुष्ट हो जाता है तो उसको उस तप का जो यथार्थ फल स्वर्ग मोक्ष का लाभ था वह कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है। अतएव तपरूप वृक्ष के रक्षण एवं संवर्द्धन का परिश्रम उसका व्यर्थ हो जाता है। अभिप्राय यह हुआ कि यदि तप से ऋद्धि आदि की प्राप्ति रूप लौकिक लाभ होता है तो इससे साधु को न तो उसमें अनुरक्त होना चाहिए और न किसी प्रकार का अभिमान ही करना चाहिए। इस प्रकार से उसे उसके वास्तविक फल स्वरूप उत्तम मोक्ष सुख की प्राप्ति अवश्य होगी।

प्रसिद्धि रूपी रोग दूर करने के उपाय

तथा श्रुतमधीष्व शश्वदिह लोक पंक्ति विना
शरीरमपी शोषय प्रथितकाय संक्लेशनैः।
कषायविषयद्विषो विजय से यथा दुर्जयान्
शमं हि फलमामनन्ति मुनयस्तपः शास्त्रयोः।।190 आत्मानुशासन

लोकेष्णा/ प्रसिद्धि बिना अर्थात् प्रतिष्ठा आदि की अपेक्षा न करके निष्कपटरूप से यहाँ इस प्रकार से निरन्तर शास्त्र का अध्ययन कर तथा प्रसिद्धि कायक्लेशादि तपों के द्वारा शरीर को भी इस प्रकार से सुखा कि जिससे तू दुर्जय कषाय एवं विषय रूप शत्रुओं को जीत सके। कारण कि मुनिजन राग द्वेषादि की शांति को ही तप और शास्त्राभ्यास का फल बतलाते हैं।

अभिप्राय इतना ही है कि प्राप्त हुए विशिष्ट आगमज्ञान एवं तप के निमित्त से किसी प्रकार के अभिमान आदि को न प्राप्त होकर जो राग द्वेष एवं विषय वांछा आदि परमार्थ सुख की प्राप्ति में बाधक हैं अतः उन्हें ही नष्ट करना चाहिए। यही उस आगमज्ञान एवं तप का फल है।

धर्म पालन, कर्त्तव्य निर्वहन, साधुत्व, प्रभावना, शिक्षा, दीक्षा, गुरु उपदेश आदि के माध्यम से आत्म कल्याण के साथ-साथ कीर्ति संपादन करनी चाहिए या यथार्थ से कहे तो कीर्ति/प्रसिद्धि आनुसंगिक रूप से हो ही जाती है, परंतु ऐसा कोई भी कार्य व्यवहार नहीं करना चाहिए जिससे आत्मग्लानि, संक्लेश, तनाव, लोकनिंदा, धर्म की हँसी, सद्गुरु की अपकीर्ति आदि हो। यथा-

जिस प्रकार मैं संसार से पार उतरू, जिस प्रकार से आपको परम संतोष हो, मेरे कल्याण में संलग्न आपका और संघ का परिश्रम जिस प्रकार से सफल हो।।1477

जिस प्रकार मेरी और संघ की कीर्ति फैले, मैं संघ की कृपा से उस प्रकार रत्नत्रय की आराधना करूँगा।।1478

वीर पुरुषों ने जिसका आचरण किया है, कायर पुरुष जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते, मैं ऐसी आराधना करूँगा।।1479 भ.आ.

उट्ठानवतो सतिमतो सुयिकम्मस्स निसम्मकारिनो।
सञ्ञतस्य च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्य यसोभिवड्ढति।। ध.प. श्लोक4

जो उद्योगी, सचेत, शुचि कर्म वाला, सोचकर काम करने वाल है, संयत धर्मानुसार जीविका वाला एवं अप्रमादी है, उसका यश बढता है। (महात्मा बुद्ध)

क्रोधः कामो लोभ मोहो विधित्साऽकृपासूये मान शोकौ स्पृहाच।
ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्य दोषा वर्ज्या सदा द्वादशैते नराणाम्।। महाभारत

काम, क्रोध, मोह, लोभ, कुछ बिगाड़ने की इच्छा, क्रूरता, असूया, अभिमान, शोक, कामना, ईर्ष्या, घृणा ये 12 दोष मनुष्यों को छोड़ देने चाहिए।

जैन धर्म के आत्मानुशासन, परमात्म प्रकाश, समयसार आदि ग्रंथों में तथा उपनिषद में ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि, लोकेष्णा लाभादि से दूर रहने के लिए आध्यात्मिक साधक को बार-बार संबोधित किया है, सचेत किया है। उपनिषद् में तो ख्याति आदि को शुकर विष्ठा कहा है। इसका रहस्य है कि जिस प्रकार शुकर विष्ठा मनुष्य की विष्ठा की विष्ठा होने के कारण घृणित है, त्यजनीय है उसी प्रकार ख्याति, प्रसिद्धि आदि घृणित है, त्यजनीय है। संसारी जीव भौतिक संपति भोग आदि में लिप्त रहता है, परंतु साधु तो बाह्यतः ये सब त्याग कर लिए हैं, परंतु अंतरंग में जो राग द्वेष मान आदि कषायें हैं उनके त्याग के बिना ख्याति पूजा आदि की भावना होती है और तद्वुकूल वे उसी प्रकार का कार्य करने के लिए विवश होते हैं। इसलिए गृहस्थ बाह्य भौतिक साधनों के लिए जो कुछ आरंभ समारंभ, लंद-फंद, संक्लेश, तेरा-मेरा, आकर्षण-

विकर्षणात्मक कार्य करता है उसी प्रकार साधुओं को भी करना पड़ता है भले बाह्यतः उसका रंग-रूप, आकार-प्रकार कुछ भी हो अंतरंग स्वरूप एक परिग्रहधारी गृहस्थ के समान होता है। आध्यात्मिक ग्रंथों में कहा है-

'ख्याति पूजा लाभ रूप लावण्य सौभाग्य पुत्र कलत्र राज्यादि
विभूति निमित्तं रागद्वेषापहतार्तरौद्र- परिणत यदाराधनं करोति'

अर्थात् जीव ख्याति (लोक में प्रसिद्धता) पूजा, लाभ, रूप, लावण्य, सौभाग्य, पुत्र, स्त्री, राज्यादि की संपदा को प्राप्त होने के लिए राग द्वेष से युक्त आर्त रौद्र ध्यान रूप परिणामों से सहित आराधना करता है वह यथार्थ से सम्यक्दृष्टि धार्मिक नहीं है भले इससे वह पापानुबंधी पुण्य बाँधकर उसके फलस्वरूप थोड़ा सा सांसारिक वैभव आदि प्राप्त कर ले तथापि उसका परिणाम कटु ही होता है जैसा कि रावण, कंस, हिटलर, मुसोलिन, सिंकदर आदि प्रसिद्ध उदाहरण हैं। आध्यात्मिक ग्रंथों में कहा है ऐसे दुषित परिणामों से उपार्जित पुण्य पापानुबंधी पुण्य है। जिसके फलस्वरूप जीव उस पुण्य के फल से प्राप्त वैभव आदि से अहंकारी बन जाता है जिससे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बुद्धि भ्रष्ट होने पर भयंकर पाप करता है। यथा- पूर्वोक्त रावण आदि। जैनागमों में मद (अहंकार) करने वालों को भी अधार्मिक कहा है तथा जो इन मदों को त्याग करता है वही यथार्थ से सम्यग्दृष्टि, धार्मिक, त्यागी, साधक, साधु, संत है।

1. विज्ञान (कला अथवा हुन्नर)का मद 2. ऐश्वर्य (हुकूमत) का मद 3. ज्ञान का मद 4. तप का मद 5. कुल का मद 6. बल का मद 7. जाति का मद 8. रूप का मद।

इस प्रकार नामों के धारक जो 8 मद हैं इनका सराग सम्यक् दृष्टि को त्याग करना चाहिए। और मान कषाय से उत्पन्न जो मद, मात्सर्य, ईर्ष्या आदि समस्त विकल्पों का समूह है इसके त्याग पूर्वक जो ममकार और अंहकार से रहित शुद्ध आत्मा में भावना है वही वीतराग सम्यग्दृष्टि के आठ मदों का त्याग है। कर्मों से उत्पन्न जो देह, पुत्र, स्त्री आदि हैं इनमें यह मेरा शरीर है, यह मेरा पुत्र है इस प्रकार की जो बुद्धि है वह ममकार है और उस शरीर आदि में अपनी आत्मा से भेद न मानकर जो मैं गोरे वर्ण का हूँ, मोटे शरीर का धारक हूँ, राजा हूँ, मेरी प्रसिद्धि है, इस प्रकार मानना सो अहंकार है।

अथ ख्याति पूजा लाभ दृष्ट श्रुतानुभूत भोगाकांक्षारूप निदान

बंधादिसमस्त शुभाशुभ संकल्पविकल्पवर्जित शुद्धात्मा संवित्तलक्षणपरमोपेक्षासंयमासाध्ये संवरव्याख्याने।

अर्थ- आगे संवर तत्त्व का व्याख्यान करते हैं, जो संवर अपनी प्रसिद्धि, पूजा, लाभ व देखे सुने अनुभव हुए भोगों की इच्छा रूप निदान बंध आदि सर्व शुभ व अशुभ संकल्पों से रहित शुद्धात्मा के अनुभव लक्षणमई परम उपेक्षा संयम के द्वारा सिद्ध किया जाता है।

यूके में डॉक्टरों ने सामान्य बीमारियों के लिए दवाइयों की बड़ी-बड़ी पर्ची लिखना बंद कर दिया है। वे ऐसे नुस्खे लिख रहे हैं, जिससे दिनचर्या में सुधार होता है।

दवा की पर्ची नहीं, व्यायाम के नुस्खे लिख रहे हैं डॉक्टर

आप किसी अस्पताल या डॉक्टर के क्लीनिक में बैठे हैं। प्रारंभिक जांच की प्रक्रिया पूरी करने के बाद जैसे ही डॉक्टर अपने दवा के पर्चे की तरफ पेन उठाते हैं, तो ज्यादातर लोगों को यही लगता है कि ढेर सारी दवाइयां और सिरप आदि के बारे में लिखा जाएगा। कुछ लोग सोचते हैं कि उन्हें किसी जिम या सेवा कार्य करने के लिए भेजा जाएगा। लेकिन, यूके में खासतौर पर लंदन और उसके आसपास के शहरों के डॉक्टरों ने यह सामाजिक 'नुस्खे' बदल दिए हैं। इसकें बजाय वे लोगों को दिनचर्या में बदलाव करने के सुझाव लिखने लगे हैं। इसमें बगीचे की सैर करना, घर के आंगन में व्यायाम करना और पैदल चलने जैसी बातें लिखी होती हैं। कुछ लोगों को लगता है कि डॉक्टरों ने राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाओं के बजट में कटौती करने के लिए ऐसा किया है।

डॉक्टरों के नए नुस्खे को वहां 'सोशल प्रीस्क्राइबिंग स्कीम्स' नाम दिया गया है। इसमें डॉक्टर मरीज को दवाई-गोली-सिरप आदि लिखने की बजाय प्राकृतिक उपचार की तरफ मोड़ रहे हैं। 'सोशल प्रीस्क्राइबिंग नेटवर्क ऑफ हैल्थ वर्कर्स एंड एकेडमिक्स' की सह-अध्यक्ष मैरी पॉली कहती हैं- इस तरह का उपचार डाइबिटीज जैसे लंबी अवधि तक चलने वाले रोगों में ज्यादा कारगर साबित हो रहा है। इसमें मरीजों को उनकी दिनचर्या में सुधार लाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। पिछले वर्ष लंदन के मेयर सादिक खान ने भी इस 'नुस्खे' को राजधानी के स्वास्थ्य कार्यक्रम में शामिल किया है। आज वहां ऐसे 50 कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। ग्लूस्टरशायर में सभी सामान्य डॉक्टर रोगियों को सोशल प्रीस्क्राइबिंग सेवाओं में

भेजने लगे हैं। सभी मामलो में एक सामान्य नुस्खा व्यायाम को बढ़ावा देने और पैदल चलने का है। यॉर्कशायर में डॉक्टरों ने रोगियों के लिए ऐसे केंद्रों में बुकिंग शुरू कर दी है, जहां वे शारीरिक गतिविधियों में बदलाव ला सकें। इसमें स्वीमिंग करने और जिम में व्यायाम करने के सत्र भी हैं। रोगियों की उम्र एवं बीमारी के लक्षण देखते हुए उन्हें अलग-अलग कार्यक्रमों में सब्सिडी प्रदान की जाती है, एक-एक करके 20 सत्रों के लिए मात्र तीन हजार रूपए रोगी से लिए जाते हैं।

इस तरह के कार्यक्रमों में एक सामान्य है कि लोगों की दिमागी सेहत में पहले सुधार होना चाहिए। अत्यधिक तनाव, ज्यादा सोच-विचार के कारण रोग या तो बढ़ते हैं या उत्पन्न होते हैं। कैम्ब्रिजशायर और कॉर्नवाल में चेरिटी संस्था 'आट्र्स एंड माइंड' साप्ताहिक वर्कशॉप चलाती है। वहां रोगी अपने विचारों से कोई भी पेन्टिंग, स्कैच या कलाकृतियां बना सकते है। शोधकर्ताओं ने अध्ययन में पाया कि जिन रोगियों ने 12 सप्ताह के कार्यक्रमों में हिस्सा लिया वे पहले से कई गुना अधिक खुशनुमा और तनावरहित हो गए थे। इसी तरह स्कॉटलैंड और ब्लैकबर्न में तो डॉक्टर वॉलेंटियरिंग करने के नुस्खे दे रहे हैं। इसका बड़ा फायदा यह है कि रोगी का अकेलापन दूर होता है, वह कई लोगों से मिलता है और सामूहिक रूप से कार्य करता है। लिवरपूल के समीप वेलबीइंग एंटरप्राइजेज सामाजिक संस्था है, वह रोगियों के लिए डांस कक्षाएं लगाती है। इसी तहर एक समूह गाना गाने वालों का है, उसके लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना से आर्थिक सहायता दी जाती है। उसके प्रमुख मार्क स्विफ्ट कहते हैं, बाहर से मदद जरूर मिलती है लेकिन अधिक राशि हमें ही जुटाना होती है। उनका दावा है कि उनके प्रयासों से लोगों की 10 गुना वह राशि बच रही है जो दवाइयों पर खर्च होती।

इस तरह के कार्यक्रमों का दूसरा फायदा यह है कि डॉक्टरों पर दबाव कम होने लगा है। सामन्य डॉक्टर जो रोगियों के घर या अस्पतालों में विजिट करते थे, उसमें 28 फीसदी कमी आई है। यही नहीं, इमरजेंसी वार्ड में भर्ती होने वालों में 24 फीसदी कमी आई है। इस तरह के नुस्खे अगर शीर्ष स्तर पर पहुंचते हैं तो राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाओं के प्रमुख डांस करते हुए गाना गाते हुए भी नजर आ सकते हैं।

मैं हूँ मेरे दशधाधर्म

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- कसमें-वादे ...)

''वस्तु स्वरूप धर्म'' होने से ... मेरा ही मैं दशधाधर्म ऽऽऽ
मेरा स्वरूप ही मेरा धर्म ... मेरा विभाव ही (मम) अधर्म ऽऽऽ (ध्रुव)
क्रोध विभाव अभाव से मेरा ... क्षमाधर्म होता उत्पन्न ऽऽऽ
मोह-क्षोभ रहित मम स्वभाव ... उत्तमक्षमादि दशधा धर्म ऽऽऽ
मान-विभाव अभाव से मेरा ... मार्दव धर्म उत्पन्न ऽऽऽ
अष्टमद रहित मम स्वभाव ... 'सोऽहं' से 'अहं' बनना धर्म ऽऽऽ(1)
माया विभाव शून्य मेरा रूप ... आर्जव धर्म (मम) शुद्ध रूप ऽऽऽ
कुटिल भाव से मैं रहित ... सहज मेरा आत्मतत्व ऽऽऽ
लोभविभाव शून्य मम भाव ... शौच धर्म है (मम) शुद्ध भाव ऽऽऽ
आसक्ति-तृष्णा-मूर्च्छा रहित ... शुद्ध-बुद्ध-आनंद हूँ ऽऽऽ (2)
असत्य विभाव रिक्त मम भाव... सत्य धर्म (मम) शुद्ध भाव ऽऽऽ
नवकोटि असत्य से परे ... 'सत् द्रव्य लक्षणं' स्वरूप हूँ ऽऽऽ
असंयम विभाव परे स्व-लीन से ... संयम-धर्म स्वरूप हूँ ऽऽऽ
मन-वचन-काय-इन्द्रिय परे ... कर्त्ता-भोक्ता स्वयं का हूँ ऽऽऽ (3)
कामना विभाव रहित शुद्ध भाव से ... तपधर्म से मैं सहित हूँ ऽऽऽ
मोह व अपूर्णता के अभाव से... स्वयं में/(से) तृप्तवाला हूँ ऽऽऽ
विभाव भाव त्याग होने से ... त्याग धर्म (मम)स्वभाव हैऽऽऽ
पर भाव अभाव विराग से ... सम्पूर्ण-स्वयंभू रूप हूँ ऽऽऽ (4)
पराधीनता शून्य मैं हूँ ... आकिंचन्य धर्ममय हूँ ऽऽऽ
स्वयंभू-सनातन-सम्पूर्ण हूँ ... सत्य-शिव-सुन्दर भाव हूँ ऽऽऽ
विभाव अभाव से स्वभाव हूँ ... ब्रह्मचर्य धर्ममय हूँ ऽऽऽ
ज्ञायक स्वभाव सुखमय हूँ ... 'कनक' शुद्ध-बुद्ध-आनन्द हूँ ऽऽऽ (5)
मेरे बिना मेरे नहीं धर्म ... न धर्मो धार्मिकैर्बिना ऽऽऽ
द्रव्याश्रयानिर्गुणागुणाः ... 'कनक' तव धर्म न तेरे बिना ऽऽऽ (6)

ओबरी 16/02/2018 रात्रि 09:12

धर्मानुप्रेक्षा

एयारसदसभेयं, धम्मं सम्मत्तपुव्वयं भणियं।
सागारणगाराणं, उत्तमसुहसंपजुत्तेहिं।।68।। आ. कुन्दकुन्द

उत्तम सुख से संपन्न जिनेंद्र भगवान् ने कहा है कि गृहस्थों तथा मुनियों का वह धर्म क्रम से ग्यारह और दश भेदों से युक्त है तथा सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है।

भावार्थ- आत्मा की निर्मल परिणति को धर्म कहते हैं। वह धर्म गृहस्थ और मुनि के भेद से दो प्रकार का होता है। गृहस्थ धर्म के दर्शन प्रतिमादि ग्यारह भेद हैं और मुनिधर्म के उत्तम क्षमा आदि दस भेद हैं। इन दोनों प्रकार के धर्मों के पहले सम्यग्दर्शन का होना आवश्यक है, उसके बिना धर्म का प्रारंभ नहीं होता।

गृहस्थ के ग्यारह धर्म

दंसणवयसामाइयपोसहसच्चित्तरायभत्ते य।
बम्हारंभपरिग्रह, अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेय।।69।।

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तत्याग, रात्रिभक्तव्रत, ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग ये देशविरत अर्थात् गृहस्थ के भेद हैं।

उत्तमखममद्दवजवसच्चसउच्चं च संजमं चेव।
तवचागमकिंचणहं, बम्हा इदि दसविहं होदि।।70।।

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये मुनिधर्म के दश भेद हैं।

उत्तम क्षमा का लक्षण

कोहुप्पत्तिस्स पुणो, बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं।
ण कुणदि किंचि वि कोहो, तस्स खमा होदि धम्मो त्ति।।71।।

यदि क्रोध की उत्पत्ति का साक्षात् बहिरंग कारण हो फिर भी जो कुछ भी क्रोध नहीं करता उसके क्षमा धर्म होता है।

मार्दव धर्म का लक्षण

कुलरूवजादिबुद्धिसु, तपसुदसीलेसु गारवं किंचि।
जो ण वि कुव्वदि समणो, मद्दवधम्मं हवे तस्स।।72।।

जो मुनि कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत तथा शील के विषय में कुछ भी गर्व नहीं करता उसके मार्दव धर्म होता है।

आर्जव धर्मका लक्षण

मोत्तूण कुडिलभावं, णिम्मलहिदएण चरदि जो समणो।
अज्जवधम्मं तइओ, तस्स दु संभवदि णियमेण।।73।।

जो मुनि कुटिलभाव को छोड़कर निर्मल हृदय से आचरण करता है उसके नियम से तीसरा आर्जव धर्म होता है।

सत्य धर्म का लक्षण

परसंतावणकारणवयणं मोत्तूण सपरिहदवयणं।
जो वददि भिक्खू तुरियो, तस्स दु धम्मं हवे सच्चं।।74।।

दूसरों को संताप करने वाले वचन को छोड़कर जो भिक्षु स्वपरहितकारी वचन बोलता है उसके चौथा सत्यधर्म होता है।

शौच धर्म का लक्षण

कंखाभावणिवित्तिं, किच्चा वेरग्गभावणाजुत्तो।
जो वट्टदि परममुणी, तस्स दु धम्मो हवे सोच्चं।।75।।

जो उत्कृष्ट मुनि कांक्षा भाव से निवृत्ति कर वैराग्य भाव से रहता है उससे शौचधर्म होता है।

संयमधर्म का लक्षण

वदसमिदिपालणाए, दंडच्चाएण इंदियजएण।
परिणममाणस्स पुणो, संजमधम्मो हवे णियमा।।76।।

मन वचन काय की प्रवृत्तिरूप दंड को त्यागकर तथा इंद्रियों को जीतकर जो व्रत और समितियों से पालनरूप प्रवृत्ति करता है उसके नियम से संयमधर्म होता है।

उत्तम तप का लक्षण

विसयकसायविणिग्गहभावं काऊण झाणसज्झाए।
जो भावइ अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण।।77।।

विषय और कषाय के विनिग्रहरूप भाव को करके जो ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा आत्मा की भावना करता है उसके नियम से तप होता है।

णिव्वेगतियं भावइ, मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु।
जो तस्स हवे चागो, इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं।।78।।

जो समस्त द्रव्यों के विषय में मोह का त्याग कर तीन प्रकार के निर्वेद की भावना करता है उसके त्याग धर्म होता है, ऐसा जिनेंद्रदेव ने कहा है।

आकिंचन्य धर्म का लक्षण

होऊण य णिस्संगो, णियभावं णिग्गहित्तु सुदुहदं।
णिद्दंदेण दु वट्टदि, अणयारो तस्स किंचण्हं।।79।।

जो मुनि निःसंग निष्परिग्रह होकर सुख और दुःख देने वाले अपने भावों का निग्रह करता हुआ निर्द्वंद्व रहता है अर्थात् किसी इष्ट-अनिष्ट के विकल्प में नहीं पड़ता उसके आकिंचन्य धर्म होता है।

ब्रह्मचर्य धर्मका लक्षण

सव्वंगं पेच्छंतो, इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं।
सो बम्हचेरभावं, सक्कदि खलु दुद्धरं धरिदुं।।80।।

जो स्त्रियों के सब अंगों को देखता हुआ उनमें खोटे भाव को छोड़ता है अर्थात् किसी प्रकार के विकार भाव को प्राप्त नहीं होता वह निश्चय से अत्यंत कठिन ब्रह्मचर्य धर्म को धारण करने के लिए समर्थ होता है।

सावयधम्मं चत्ता, जदिधम्मे जो हु वट्टए जीवो।
सो णय वज्जदि मोक्खं, धम्मं इदि चिंतए णिच्चं।।81।।

जो जीव श्रावक धर्म को छोड़कर मुनिधर्म धारण करता है वह मोक्ष को नहीं छोड़ता है अर्थात् उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है इस प्रकार निरंतर धर्म का चिंतन करना चाहिए।

भावार्थ - गृहस्थ धर्म परंपरा से मोक्ष का कारण है और मुनिधर्म साक्षात् मोक्ष का कारण है इसलिए यहाँ गृहस्थ के धर्म को गौण कर मुनिधर्म की प्रभुता बतलाने के लिए कहा गया है कि जो गृहस्थधर्म को छोड़कर मुनिधर्म में प्रवृत्त होता है वह मोक्ष को नहीं छोड़ता अर्थात् उसे मोक्ष अवश्य प्राप्त होता है।

णिच्छयणएव जीवो, सागारणगारधम्मदो भिण्णो।
मज्झत्थभावणाए, सुद्धप्पं चिंतए णिच्चं।।82।।

निश्चयनय से जीव गृहस्थधर्म और मुनिधर्म से भिन्न है इसलिए दोनों धर्मों में मध्यस्थ भावना रखते हुए निरंतर शुद्ध आत्मा का चिंतन करना चाहिए।

भावार्थ - मोह और लोभ से रहित आत्मा की निर्मल परिणति को धर्म कहते हैं। गृहस्थ धर्म तथा मुनिधर्म उस निर्मल परिणति के प्रकट होने में सहायक होने से धर्म कहे जाते हैं, परमार्थ से धर्म नहीं है इसलिए दोनों में माध्यस्थ भाव रखते हुए शुद्ध आत्मा के चिंतन की ओर आचार्य ने यहाँ प्रेरणा दी है।

स्व/(मैं) में केन्द्रित है 12 अनुप्रेक्षायें (आध्यात्मिक दृष्टि से)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- कसमें वादे ... 2. भातुकली ... 3. क्या मिलिए ...)

बारह भावनाओं का चिन्तन... मेरे द्वारा ही मुझमें करूँ ऽऽऽ
सतत अनुप्रेक्षण द्वारा ही... निश्चय-व्यवहार से करूँ ऽऽऽ (ध्रुव)
अध्रुव है मेरी विभाव दशा... कर्मज व अशुद्ध होने से ऽऽऽ
द्रव्यभाव व नोकर्म अध्रुव... ध्रुव हूँ मैं निश्चय से ऽऽऽ
अध्रुव दशा ही मेरी अशरण है... मेरा स्वभाव न होने से ऽऽऽ
विभाव सभी अनात्मभूत है... मेरा ध्रुव रूप मेरा शरण है ऽऽऽ(1)
एकत्व ही मेरा ध्रुव-शरण है... ''अहमेक्क खलु सुद्ध'' होने से ऽऽऽ
एकत्व में न बन्ध-विभाव है... एकत्व ही शुद्ध-बुद्ध-आनन्द हैऽऽऽ
एकत्व परे सभी अन्यत्व है... चेतन-अचेतन द्रव्य सभी ऽऽऽ
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध आदि... शत्रु-मित्र भाई-बन्धु आदि ऽऽऽ(2)
अन्यत्व में राग-द्वेष (मोह) संसार है... विभाव परिणमन होने से ऽऽऽ
पंचपरिवर्तनमय संसार है... स्वभाव मेरा अपवर्ग हैऽऽऽ
विभाव से किया (हूँ) लोक में भ्रमण... तीनसौतैतालीस धन राजू में ऽऽऽ
लोक तो शाश्वत-अकृत्रिम है... मैं न कर्त्ता-धर्त्ता लोक का हूँ ऽऽऽ(3)
(स्व-कर्त्ता-(धर्त्ता)भोक्ता से स्वमें निवास करूँ)
विभाव सभी ही अशुचि है... द्रव्य-भाव-नोकर्म सभी ऽऽऽ
स्वभाव मेरा परम शुचि है... द्रव्य-भाव-नोकर्म शून्य से ऽऽऽ

विभाव भाव ही आस्त्रव है... मिथ्यात्व से नोकषाय तक ऽऽऽ
आस्त्रव से ही बन्ध व अशुचि ... संसार भ्रमण व दुःख तक ऽऽऽ(4)
स्वभाव बुद्धि से संवर वृद्धि... संवर से होता विभाव क्षीण ऽऽऽ
त्रिगुप्ति से होता कर्म निरोध... संसार भ्रमण होता क्षीण ऽऽऽ
इससे ही होती सकाम निर्जरा... जिससे आत्मा की विशुद्धि वृद्धिऽऽऽ
इस हेतु ही तपस्या विधेय... भाव विशुद्धि ही तप ज्ञेय ऽऽऽ(5)
स्वभाव ही धर्म विभाव अधर्म... वस्तुस्वभाव धर्म होने से ऽऽऽ
आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र धर्म ... समता-शान्ति-सत्य ही धर्म ऽऽऽ
स्व को जानना-मानना-पाना ... यह बोधि ही अति दुर्लभ ऽऽऽ
इससे ही होता है भेदविज्ञान ... जिससे होता केवल/(अनन्त) ज्ञान ऽऽऽ(6)
मुझमें ही मेरी बारह भावना... मेरे बिना इनकी न संभावना ऽऽऽ
मुझमें ही शोध-बोध-आचरण... स्व-उपलब्धि 'कनक' की भावना ऽऽऽ

ओबरी 15/02/2018 रात्रि 08:43

भय का मूल कारण क्या है...

वर्तमान में होते हुए भविष्य की सैर भय का कारण बनती है। वर्तमान को अपना घर और अपने जीवन की प्राथमिकता बना लो, भय आसपास भी नहीं फटकेगा।

भय की मनोवैज्ञानिक दशा किसी भी ठोस और तात्कालिक जोखिम से विलग है। वह अनेक रूपों में प्रकट होता है: बेचैनी, चिंता, व्यग्रता, अधीरता, तनाव, भय, संत्रास इत्यादि। इस प्रकार मानसिक भय इसलिए होता है कि कुछ हो सकता है, न कि इसलिए कि अभी कुछ घट रहा है। हम तो वर्तमान में हैं, परंतु हमारा मन भविष्य में चला जाता है। यह व्यग्रता पैदा करता है और यदि हम अपने मन से जुड़े हों और वर्तमान की सादगी और शक्ति से हमारा सम्पर्क टूट गया है, तो फिर यह व्यग्रता हमेशा का साथी बन जाएगी। हम वर्तमान क्षण का सामना कर सकते हैं, परंतु उसका कैसे सामना करेंगे, जो केवल मन का ठेला है। हम भविष्य का सामना नहीं कर सकते।

जब हमारी हमारे मन से पहचान होती है, अहम् हमारे जीवन को चलाता है। अपने काल्पनिक स्वभाव व विस्तृत बचावी ढांचे के होते हुए भी, अहम् बहुत ही

संवेदशील और डरा हुआ महसूस करता है और उसे हरदम खतरे की आशंका लगी रहती है। यह तब भी होता है, जब अहम् बाहरी तौर पर बहुत विश्वास से भरा प्रतीत होता है। याद रखने की बात यह है कि कोई भी संदेश, हमारे मन के विरुद्ध की गई शरीर की प्रतिक्रिया है। वह कौन-सा संदेश है, जो हर क्षण हमारा अहम्, झूठा, मन-निर्मित अहम्, हमारे शरीर को दे रहा है? ख़तरा, मैं खतरे में हूं। और वह कौन-सी भावना है जो इस हरदम मिल रहे संदेश के कारण उपजती है? भय, और क्या।

भय के अनेक कारण हो सकते हैं...

खोने का भय, असफलता का भय, चोट लगने का भय, इत्यादि। परंतु देखें तो सब भय में मृत्यु का भय या मिट जाने का भय होता है। अहम् के लिए मृत्यु बस अगले मोड़ पर इंतजार कर रही होती है। मन से पहचान करने की स्थिति में, मृत्यु का भय हमारे जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, हर बहस में सही होने की जरूरत और दूसरे व्यक्ति को गलत ठहराने की छोटी-सी और साधारण प्रतीत होने वाली आदत जिसमें हम उस मानसिक स्थिति का बचाव कर रहे होते हैं जिससे हमारा मन जुड़ा होता है इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि हमें मृत्यु का भय है। यदि हम किसी मानसिक स्थिति से जुड़ते हैं और फिर हम अगर गलत हैं, तो मन-निर्मित होने के भाव को मिटने का खतरा सताने लगता है।

एक बार हम मन से अपनी पहचान को छोड़ दें, तो चाहे सही हो या गलत, उससे हमारे आत्मबोध को कोई फर्क नहीं पड़ता और इस वजह से जबरन सही होने की गहरी अचेतन जरूरत, जो कि एक तरह की हिंसा है, वह हमारे अंदर नहीं उठेगी। हम स्पष्ट रूप से और जोर देकर यह बता पाएंगे कि हमें कैसा लग रहा है या फिर हम क्या सोच रहे हो और ऐसा करते हुए न तो हममें स्वयं को बचाने की चाह होगी और न ही जरूरत से ज्यादा उत्तेजित होंगे। ऐसा होने पर हमारा 'होने का भाव' अंदर के एक गहरे और सच्चे स्थान से आएगा, न कि मन से।

बचाव करने की भावना के प्रति सचेत रहें

हम किसका बचाव कर रहे हैं? एक भ्रामक पहचान, मन में उभरा एक चित्र? एक काल्पनिक सत्ता। इस वृत्ति को चेतन करके, उसके साक्षी बनकर, हम उससे अपने सम्बन्ध को तोड़ देते हैं। हमारी चेतना के प्रकाश में अचेतन वृत्तियां बहुत जल्दी ही घुल जाएंगी। रिश्तों को खोखला बनाने वाली सभी बहसों और सत्ता-

खेल का यही अंत हो जाता है। दूसरों पर अधिकार जमाना, शक्ति के भेष में छिपी कमजोरी है। सच्ची शक्ति हमारे अंतर में है और इस क्षण में उपलब्ध है।

मन हमेशा वर्तमान को नकारने की कोशिश करता रहता है और उससे भागने की भी। दूसरे शब्दों में, जितनी अधिक हमारी मन से पहचान है, उतना अधिक हमें कष्ट भी होगा। या फिर ऐसा भी कह सकते हैं, जितना अधिक हम वर्तमान को स्वीकार कर सकते हैं और उसका आदर कर सकते हैं, उतना अधिक कष्ट या दर्द से मुक्त होते हैं और अहम्-मन से मुक्त होते हैं।

वर्तमान को अपना घर बना लो

यदि हम अपने या फिर दूसरो के लिए दर्द नहीं चाहते हैं और इसे अधिक नहीं बढ़ाना चाहते जो अब भी हमारे अंदर में है, तो समय का और निर्माण मत करो। या कम से कम केवल उतने ही समय का निर्माण करो, जितना कि हमें जीवन के व्यावहारिक पहलुओं में लगता है। समय का निर्माण करना कैसे बंद किया जाए?

यह अच्छे से समझ लें कि हमारे पास केवल वर्तमान क्षण ही है। वर्तमान को अपने जीवन की प्राथमिकता बना लें। पहले हम समय में रहते थे और कभी-कभी वर्तमान में आते थे। अब वर्तमान को अपना घर बना लो और भूत व भविष्य में तभी आओ जब जीवन की किसी व्यावहारिक परिस्थिति को समझना हो। वर्तमान क्षण को हरदम अपनी स्वीकृति दो। उसे हां कहो।

जीवणिबद्धं देहं, खीरोदयमिव विणस्सदे सिग्घं।
भोगोपभोगकारणदव्वं णिच्चं कहं होदि।।6।।

जब दूध और पानी की तरह जीव के साथ मिला हुआ शरीर शीघ्र नष्ट हो जाता है तब भोगोपभोग का कारणभूत द्रव्य स्त्री आदि परिकर नित्य कैसे हो सकता है?

परमट्ठेण दु आदा, देवासुरमणुवरायविभवेहिं।
वदिरित्तो सो अप्पा, सस्सदमिदि चिंतए णिच्चं।।7।।

परमार्थ से आत्मा देव, असुर और नरेंद्रों के वैभवों से भिन्न है और वह आत्मा शाश्वत है ऐसा निरंतर चिंतन करना चाहिए।

अशरणानुप्रेक्षा

मणिमंतोसहरक्खा, हयगयरहओ य सयलविज्जाओ।
जीवाणं ण हि सरणं, तिसु लोए मरणसमयम्हि।।8।।

मरण के समय तीनों लोकों में मणि, मंत्र, औषधि, रक्षक सामग्री, हाथी, घोड़े, रथ और समस्त विद्याएँ जीवों के लिए शरण नहीं हैं अर्थात् मरण से बचाने में समर्थ नहीं हैं।

जाइजरामरणरोगभयदो रक्खेदि अप्पणो अप्पा।
तम्हा आदा सरणं, बंधोदयसत्तकम्मवदिरित्तो।।11।।

जिस कारण आत्मा ही जन्म, जरा, मरण, रोग और भय से आत्मा की रक्षा करता है उस कारण बंध उदय और सत्तारूप अवस्था को प्राप्त कर्मों से पृथक् रहने वाला आत्मा ही शरण है-- आत्मा की निष्कर्म अवस्था ही उसे जन्म जरा आदि से बचाने वाली है।

अरुहा सिद्धायरिया, उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठदि आदे, तम्हा आदा हु मे सरणं।।12।।

द्वादशानुप्रेक्षा

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच परमेष्ठी हैं। चूँकि ये परमेष्ठी भी आत्मा में निवास करते हैं अर्थात् आत्मा स्वयं पंच परमेष्ठीरूप परिणमन करता है इसलिए आत्मा ही मेरा शरण है।

सम्मतं सण्णाणं, सच्चारित्तं च सत्तवो चेव।
चउरो चिट्ठदि आदे, तम्हा आदा हु मे सरणं।।13।।

चूँकि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप ये चारों भी आत्मा में स्थित हैं इसलिए आत्मा ही मेरा शरण हैं।

एक्को करेदि कम्मं, एक्को हिंडदि य दीहसंसारे।
एक्को जायदि मरदि य, तस्स फलं भुंजदे एक्को।।14।।

जीव अकेला ही कर्म करता है, अकेला ही दीर्घ संसार में भ्रमण करता है, अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही कर्म का फल भोगता है।

एक्को करेदि पावं, विसयणिमित्तेण तिव्वलोहेण।
णिरयतिरिएसु जीवो, तस्स फलं भुंजदे एक्को।।15।।

विषयों के निमित्त तीव्र लोभ से जीव अकेला ही पाप करता है और नरक तथा तिर्यंच गति में अकेला ही उसका फल भोगता है।

एक्को करेदि पुण्णं, धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण।

मणुवदेवेसु जीवो, तस्स फलं भुंजदे एक्को।।16।।

धर्म के निमित्त पात्रदान के द्वारा जीव अकेला ही पुण्य करता है और मनुष्य तथा देवों में अकेला ही उसका फल भोगता है।

एक्कोहं णिम्ममो सुद्धो, णाणदंसणलक्खणो।
सुद्धेयत्तमुपादेयमेवं चिंतेइ संजदो।।20।।

मैं अकेला हूँ, ममत्व से रहित हूँ, शुद्ध हूँ तथा ज्ञान-दर्शन रूप लक्षण से युक्त हूँ इसलिए शुद्ध एकत्वभाव ही उपादेय है -- ग्रहण करने के योग्य है। इस प्रकार संयमी साधु को सदा विचार करते रहना चाहिए।

अन्यत्वानुप्रेक्षा

मादापिदरसहोदरपुत्तकलत्तादिबंधुसंदोहो।
जीवस्स ण संबंधो, णियकज्जवसेण वंट्टति।।21।।

माता, पिता, सगा भाई, पुत्र तथा स्त्री आदि बंधुजनों इष्ट जनों का समूह जीव से संबंध रखने वाला नहीं है। ये सब अपने कार्य के वश साथ रहते हैं।

अण्णो अण्णं सोयदि, मदो वि मम णाहगो त्ति मण्णंतो।
अप्पाणं ण हु सोयदि, संसारमहण्णवे बुड्डं।।22।।

यह मेरा स्वामी था, यह मर गया इस प्रकार मानता हुआ अन्य जीव अन्य जीव के प्रति शोक करता है परंतु संसाररूपी महासागर में डूबते हुए अपने आप के प्रति शोक नही करता।

अण्णं इमं सरीरादिगं पि होज्ज बाहिरं दव्वं।
णाणं दंसणमादा, एवं चिंतेहि अण्णत्तं।।23।।

यह जो शरीरदिक बाह्य द्रव्य है वह सब मुझसे अन्य है, ज्ञान दर्शन ही आत्मा है अर्थात् ज्ञान दर्शन ही मेरे हैं। इस प्रकार अन्यत्व भावना का चिंतन करो।

पंचविहे संसारे, जाइजरामरणरोगभयपउरे।
जिणमग्गमपेच्छंतो, जीवो परिभमदि चिरकालं।।24।।

जिन भगवान के द्वारा प्रणीत मार्ग की प्रतीति को नहीं करता हुआ जीव, चिरकाल से जन्म, जरा, मरण, रोग और भय से परिपूर्ण पाँच प्रकार के संसार में परिभ्रमण करता रहता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ये पाँच परिवर्तन ही पांच प्रकार का संसार कहलाते हैं।

भावपरिवर्तनका स्वरूप

सव्वे पयडिट्ठिदिओ, अणुभागपदेसबंधठाणाणि।
जीवो मिच्छत्तवसा, भमिदो पुण भावसंसारे।।25।।

इस जीव ने मिथ्यात्व के वश समस्त कर्मप्रकृतियों की सब स्थितियों, सब अनुभागबंधस्थानों आप सब प्रदेशबंध स्थानों को प्राप्त कर बार-बार भाव संसार में परिभ्रमण किया है।

पुत्तकलत्तणिमितं, अत्थं अज्जयदि पापबुद्धीए।
परिहरदि दयादाणं, सो जीवो भमदि संसारे।।30।।

तो जीव पुत्र तथा स्त्री के निमित्त पापबुद्धि से धन कमाता है और दयादान का परित्याग करता है वह संसार में भ्रमण करता है।

ममपुत्तं मम भज्जा, मम धणधण्णो त्ति तिव्वकंखाए।
चइऊण धम्मबुद्धिं, पच्छा परिपडदि दीहसंसारे।।31।।

जो जीव, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा धनधान्य है इस प्रकार की तीव्र आकांक्षा धर्मबुद्धि को छोड़ता है वह पीछे दीर्घ संसार में पड़ता है।

लोकानुप्रेक्षा

जीवादिपयट्ठाणं, समवाओ सो णिरुच्चए लोगो।
तिविहो हवेइ लोगो, अहमज्झिमउड्ढभेएण।।39।।

जीव आदि पदार्थों का जो समूह है वह लोक कहा जाता है। अधोलोक, मध्यमलोक और ऊर्ध्वलोक के भेद से लोक तीन प्रकार का होता है।

असुहेण णिरयतिरियं, सुहउवजोगेण दिविजणरसोक्खं।
सुद्धेण लहइ सिद्धिं, एवं लोयं विचिंतिज्जो।।42।।

अशुभोपयोग से नरक और तिर्यंच गति प्राप्त होती है, शुभोपयोग से देव और मनुष्यगति का सुख मिलता है और शुद्धोपयोग से जीव मुक्ति को प्राप्त होता है -- इस प्रकार लोक का विचार करना चाहिए।

अशुचित्वानुप्रेक्षा

अट्ठीहिं पडिबद्धं, मंसविलित्तं तएण ओच्छण्णं।
किमिसंकुलेहिं भरियमचोक्खं देहं सयाकालं।।43।।

यह शरीर हड्डियों से बना है, मांस से लिपटा है, चर्म से आच्छादित है,

कीटसंकुलों से भरा है और सदा मलिन रहता है।

देहादो वदिरित्तो, कम्मविरहिओ अणंतसुहणिलयो।
चोक्खो हवेइ अप्पा, इदि णिच्चं भावणं कुज्जा।।46।।

आत्मा इस शरीर से भिन्न है, कर्मरहित है, अनंत सुखों का भंडार है तथा श्रेष्ठ है इस प्रकार निरंतर भावना करनी चाहिए।

आस्त्रवानुप्रेक्षा

मिच्छत्तं अविरमणं, कसायजोगा य आसवा होंति।
पण पण चउ तिय भेदा, सम्मं परिकित्तिदा समए।।46।।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये आस्त्रव हैं। उक्त मिथ्यात्व आदि आस्त्रव क्रम से पाँच, पाँच, चार और तीन भेदों से युक्त हैं। आगम में इनका अच्छी तरह वर्णन किया गया है।

रागो दोसो मोहो, हास्सादिणोकसायपरिणामो।
थूलो वा सुहुमो वा, असुहमणो त्ति य जिणा वेंति।।52।।

राग, द्वेष, मोह तथा हास्यादिक नोकषायरूप परिणाम चाहे स्थूल हों चाहे सूक्ष्म, अशुभ मन है ऐसा जिनेंद्रदेव जानते हैं।

मोत्तूण असुहभावं, पुव्वुत्तं णिरवसेसदो दव्वं।
वदसमिदिसीलसंजमपरिणामं सुहमणं जाणे।।54।।

पहले कहे हुए अशुभ भाव तथा अशुभ द्रव्य को व्रत, समिति, शील और संयमरूप परिणामों का होना शुभ मन है ऐसा जानो।

पुव्वुत्तासवभेदा, णिच्छयणयएण णत्थि जीवस्स।
उहयासवणिम्मुक्कं, अप्पाणं चिंतए णिच्चं।।60।।

पहले जो आस्त्रव के भेद कहे गये हैं वे निश्चयनय से जीव के नहीं हैं, इसलिए आत्मा को दोनों प्रकार के आस्त्रवों से रहित ही निरंतर विचारना चाहिए।

संवरानुप्रेक्षा

चलमलिनमगाढं च, वज्जिय सम्मत्तदिढकवाडेण।
मिच्छत्तासवदारणिरोहो होदि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं।।61।।

चल, मलिन और अगाढ़ दोष को छोड़कर सम्यक्त्वरूपी दृढ़ कपाटों के द्वारा मिथ्यात्वरूपी आस्त्रवद्वार का निरोध हो जाता है ऐसा जिनेद्रदेव ने कहा है।

सुहजोगस्स पवित्ती, संवरणं कुणदि असुहजोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो, सद्धुवजोगेण संभवदि।।63।।

शुभयोग की प्रवृत्ति अशुभ योग का संवर करती है और शुद्धोपयोग के द्वारा शुभयोग का निरोध हो जाता है।

सुद्धुवजोगेण पुणो, धम्मं सुक्कं च होदि जीवस्स।
तम्हा संवरहेदू, झाणो त्ति विचिंतए णिच्चं।।64।।

शुद्धोपयोग से जीव के धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान होते हैं, इसलिए ध्यान संवर का कारण है ऐसा निरंतर विचार करना चाहिए।

जीवस्स ण संवरणं, परमट्ठणएण सुद्धभावादो।
संवरभावविमुक्कं, अप्पाणं चिंतए णिच्चं।।65।।

परमार्थ नय -- निश्चय नय से जीव के संवर नहीं है क्योंकि वह शुद्ध भाव से सहित है। अतएव आत्मा को सदा संवरभाव से रहित विचारना चाहिए।

बंधपदेसग्गलणं, णिज्जरणं इदि जिणेहि पण्णत्तं।
जेण हवे संवरणं, तेण दु णिज्जरणमिदि जाण।।66।।

बंधे हुए कर्मों का गलना निर्जरा है ऐसा जिनेंद्र भगवान ने कहा है। जिस कारण से संवर होता है उसी कारण से निर्जरा होती है।

सा पुण दुविहा णेया, सकालपक्का तवेण कयमाणा।
चदुगदियाणं पढमा, वयजुत्ताणं हवे बिदिया।।67।।

फिर वह निर्जरा दो प्रकार की जाननी चाहिए -- एक अपना उदयकाल आने पर कर्मों का स्वयं पककर झड़ जाना और दूसरी तप के द्वारा की जाने वाली। इनमें पहली निर्जरा तो चारों गतियों के जीवों की होती है और दूसरी निर्जरा व्रती जीवों के होती है।

धर्मानुप्रेक्षा

एयारसदसभेयं, धम्मं सम्मत्तपुव्वयं भणियं।
सागारणगाराणं, उत्तमसुहसंपजुत्तेहिं।।68।।

उत्तम सुख से संपन्न जिनेंद्र भगवान ने कहा है कि गृहस्थों तथा मुनियों का वह धर्म क्रम से ग्यारह और दश भेदों से युक्त है तथा सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है।

उत्तमखममद्दवजवसच्चउच्चं च संजमं चेव।
तवचागमकिंचण्हं, बम्हा इदि दसविहं होदि।।70।।

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये मुनिधर्म के दश भेद हैं।

उत्तम क्षमा का लक्षण

कोहुप्पत्तिस्स पुणो, बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं।
ण कुणदि किंचि वि कोहो, तस्स खमा होदि धम्मो त्ति।।71।।

यदि क्रोध की उत्पत्ति का साक्षात् बहिरंग कारण हो फिर भी जो कुछ भी क्रोध नहीं करता उसके क्षमा धर्म होता है।

मार्दव धर्म का लक्षण

कुलरूवजादिबुद्धिसु, तपसुदसीलेसु गारवं किंचि।
जो ण वि कुव्वदि समणो, मद्दवधम्मं हवे तस्स।।72।।

जो मुनि कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत तथा शील के विषय में कुछ भी गर्व नहीं करता उसके मार्दव धर्म होता है।

बोधिदुर्लभ भावना

उप्पज्जदि सण्णाणं, जेण उवाएण तस्सुवायस्स।
चिंता हवेइ बोहो, अच्चंतं दुल्लहं होदि।।83।।

जिस उपाय से सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है उस उपाय की चिंता बोधि है, यह बोधि अत्यंत दुर्लभ है।

भावार्थ - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को बोधि कहते हैं, इसकी दुर्लभताका विचार करना सो बोधिदुर्लभभावना है।

कम्मुदयजपज्जायां, हेयं खाओवसमियणाणं तु।
सगदव्वमुवादेयं, णिच्छयत्ति होदि सण्णाणं।।84।।

कर्मोदय से होने वाली पर्याय होने के कारण क्षायोपशमिक ज्ञान हेय है और आत्मद्रव्य उपादेय है ऐसा निश्चय होना सम्यग्ज्ञान है।

मूलुत्तरपयदीओ, मिच्छत्तादी असंखलोगपरिमाणा।
परदव्वं सगदव्वं, अप्पा इदि णिच्छयणएण।।85।।

मिथ्यात्व को आदि लेकर असंख्यात लोकप्रमाण जो कर्मों की मूल तथा उत्तर प्रकृतियाँ हैं वे परद्रव्य हैं और आत्मा स्वद्रव्य है ऐसा निश्चयनय से जानना चाहिए।

भावार्थ - ज्ञायक स्वभाव से युक्त आत्मा स्वद्रव्य है और उसके साथ लगे हुए जो नोकर्म द्रव्यकर्म तथा भावकर्म हैं वे सब परद्रव्य हैं ऐसा निश्चयनय से जानना चाहिए।

एवं जायदि णाणं, हेयमुवादेय णिच्चये णत्थि।
चिंतिज्जइ मुणि बोहिं, संसारविरमणट्ठे य।।86।।

इस प्रकार स्वद्रव्य और परद्रव्य का चिंतन करने से हेय और उपादेय का ज्ञान हो जाता है अर्थात् परद्रव्य हेय है और स्वद्रव्य उपादेय है। निश्चयनय में हेय और उपादेयका विकल्प नहीं है। मुनि को संसार का विराम करने के लिए बोधि का विचार करना चाहिए।

बारस अणुवेक्खाओ, पच्चक्खाणं तहेव पडिकमणं।
आलोयणं समाहिं, तम्हा भावेज्ज अणुवेक्खं।।87।।

ये बारह अनुप्रेक्षाएँ ही प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, आलोचना, और समाधि है इसलिए इन अनुप्रेक्षाओं की निरंतर भावना करनी चाहिए।

मेरी षोडशकारण भावना मैं ही हूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- कसमें-वादे...)

मैं ही मेरी भावना हूँ... षोडशकारण रूप में ऽऽऽ
भाव से भावित होने से ... मम बिन असम्भव है ऽऽऽ (ध्रुव)
दर्शन विशुद्धि भावना ... देव-शास्त्र-गुरु प्रति श्रद्धान ऽऽऽ
तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन ... निश्चय स्व-आत्मश्रद्धान ऽऽऽ
विनय सम्पन्नता मम ... पंचविध विनय युक्त से ऽऽऽ
संयम-तप-ज्ञान इसी से ... (स्व) आत्मिक गुण प्रगट से ऽऽऽ(1)
शीलव्रत में निरतीचार ... (स्व) आत्मिक गुण प्रगट से ऽऽऽ
राग-द्वेष-मोह-क्षीण होने से ... ऐसी भावना होती मुझमें ऽऽऽ
अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना ... ज्ञानावरणीय क्षयोपशमसे ऽऽऽ

वीतरागविज्ञान जन्मा ... ज्ञानगुणमय आत्मा है ऽऽऽ(2)
सतत संवेग भावना मम ... संसार शरीर भोगों से ऽऽऽ
अनन्त आत्म वैभव प्राप्ति हेतु ... लक्ष्य होने से भाव से ऽऽऽ
शक्तिअनुसार त्याग भावना ... अनात्मवस्तु अनासक्ति से ऽऽऽ
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुसार ... बाह्य से होती निवृत्ति ऽऽऽ (3)
शक्ति अनुसार तप भावना है ... सांसारिक इच्छा क्षीण से ऽऽऽ
समता-शान्ति-निस्पृहता से ... आत्मविशुद्धि के भाव से ऽऽऽ
साधुसमाधि भावना मेरी ... साधुतागुणों में प्रवृत्ति ऽऽऽ
''णमोलोए सव्व साहुणं'' रूप से ... साधुसमाधि में मम भक्ति ऽऽऽ (4)
वैयावृत्ति की भावना मेरी ... सर्व साधु की हो सेवाभक्ति ऽऽऽ
गुण-गुणी में श्रद्धा-भक्ति ... किसी से न निन्दादिवृत्ति ऽऽऽ
अर्हदाचार्य बहुश्रुतप्रवचन 'वन्दे तद् गुणलब्धये' भावना ऽऽऽ
ख्याति-पूजा-लाभ रिक्त भावना ... आत्मिक गुण लब्धये भावना ऽऽऽ (5)
आवश्यक क्रियाओं की भावना... स्व-आत्मविशुद्धि हेतु ऽऽऽ
अवश्य करणीय आत्म कार्य... त्यजनीय सर्व अनात्म काम ऽऽऽ
(मम) प्रकृष्ट भावना प्रभावना... स्व-रत्नत्रय तेज द्वारा ऽऽऽ
रत्नत्रय भी मम स्वभाव... स्वभाव ही मम अस्तित्व ऽऽऽ(6)
प्रवचन वात्सल्य भी भावना ... धर्म वात्सल्य से भावीत है ऽऽऽ
धर्म धर्मी अभेद सम्बन्ध ... (अतः) सभी भावना मम स्वभाव है ऽऽऽ
भावना बिन शब्दादि उच्चारण ... नहीं षोडश भावनामय ऽऽऽ
मेरी भावना मुझसे अभिन्न ... 'कनक' चेतना भावमय ऽऽऽ(7)

ओबरी 18/02/2018 रात्रि 08:16

संदर्भ - तीर्थंकर प्रकृति का आस्त्रव

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता
शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ
शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिवैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुत
प्रवचनभक्तिरावश्यपकापरिहाणिमार्गप्रभावना
प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य। (24) मोक्षशास्त्र

दर्शनविशुद्धि, विनय संपन्नता, शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना, ज्ञान में सतत उपयोग, सतत् संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वैयावृत्य करना, अरिहंत भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव हैं।

(1) दर्शनविशुद्धि - जिनोपदिष्ट निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग में निःशंकितादि आठ गुण सहित रूचि करना दर्शनविशुद्धि है। जिनेन्द्र भगवान् अर्हत् परमेष्ठी के द्वारा प्रतिपादित निर्ग्रंथ लक्षण मोक्षमार्ग में रूचि होना दर्शनविशुद्धि है। इस दर्शनविशुद्धि के 1. निःशंकितत्व, 2. निःकांक्षता, 3. निर्विचिकित्सा, 4. अमूढ़दृष्टिता, 5. उपवृहण वा उपगूहन, 6. स्थितिकरण, 7. वात्सलता और 8. प्रभावना ये आठ अंग हैं।

(1) निःशंकितत्व - इहलोकभय, परलोकभय, व्याधिभय, मरणभय, अगुप्तिभय, अरक्षणभय और आकस्मिकभय इन सात भयों से मुक्त रहना अर्थात् मरण आदि से भयभीत नहीं होना अथवा जिनेन्द्र भगवान् कथित तत्व में 'यह है या नहीं' इस प्रकार की शंका नहीं करना निःशंकित है।

(2) निःकांक्षता - धर्म को धारण करके इस लोक और परलोक में विषयभोगों की कांक्षा नहीं करना और अन्य कुदृष्टियों की (मिथ्यादृष्टि सम्बन्धी) आकांक्षाओं का निरास करना अर्थात् मिथ्याधर्म की वांछा नहीं करना निःकांक्षित अंग है।

(4) निर्विचिकित्सा - शरीरादि के अशुचि स्वभाव को जानकर उसमें शुचित्व के मिथ्यासंकल्प को छोड़ देना अथवा अर्हत् के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन में 'यह अयुक्त है' 'जिन प्रवचन घोर कष्टदायक है' 'ये जिनकथन घटित नहीं हो सकते'

(5) अमूढ़दृष्टिता - तत्व के समान अवभासमान अनेक प्रकार के मिथ्यावादियों के मिथ्या मार्गों में युक्त-अयुक्त(योग्यायोग्य) भावों का परीक्षा रूपी चक्षुओं के द्वारा भले प्रकार से निर्णय करके उनसे मोह नहीं करना अमूढ़दृष्टि अंग है।

(6) स्थितिकरण - कषायोदय से धर्मभ्रष्ट होने के कारण उपस्थिति होने पर भी अपने धर्म से परिच्युत नहीं होना, उसका बराबर पालन करना स्थितिकरण अंग है।

(7) वात्सलता - जिनप्रणीत धर्मामृत से नित्य अनुराग रखना वात्सल्य अंग है।

(8) प्रभावना - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय के प्रभाव से आत्मा को प्रकाशित करना प्रभावना अंग है।

(2) विनयसम्पन्नता - ज्ञानादि में तथा ज्ञानधारियों में आदर करना तथा उनमें कषाय की निवृत्ति करना विनयसम्पन्नता है। सम्यग्ज्ञानादि मोक्ष के साधनों में तथा ज्ञानादि के साधन (निमित्त) गुरु आदि में योग्य रीति से सत्कार आदर करना तथा कषाय की निवृत्ति करना विनयसम्पन्नता है।

(3)शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना- चारित्र के विकल्परूप शीलव्रतों में निर्दोष प्रवृत्ति शीलव्रतेष्वनतिचार है। अहिंसा आदि व्रत तथा उपने परिपालन के लिए क्रोधादि के त्याग रूप शीलों में मन, वचन, काय की निर्दोष प्रवृत्ति करना शीलव्रतेष्वनतिचार है।

(4) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग - ज्ञानभावना से नित्युक्तता ज्ञानोपयोग है। जीवादि पदार्थरूप स्वतत्वविषय को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जानना है लक्षण जिनका ऐसे मतिज्ञानादि विकल्परूप ज्ञान पाँच प्रकार के है। अज्ञान की निवृत्ति इनका साक्षात् फल है तथा हित प्राप्ति, अहित-परिहार और उपेक्षा यह व्यवहित (परोक्ष) फल है। इस ज्ञान की भावना में सदा तत्पर रहना ही अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है।

(5) सतत संवेग - संसार के दुःखों से नित्य भयभीत रहना संवेग है। शारीरिक, मानसिक आदि अनेक प्रकार के प्रियवियोग, अप्रियसंयोग इष्ट वस्तु का अलाभ आदि जनित दुःख अतिकष्टदायक हैं, अतः उन संसार दुःखों से नित्य भयभीत रहना संवेग है।

(6) शक्ति के अनुसार त्याग - पर की प्रीति के लिए अपनी वस्तु को देना त्याग है। पात्र के लिए दिया गया आहार उस दिन उसकी प्रीति का हेतु बनता है। अभयदान उस भव के दुःखों को दूर करने वाला है और पात्र को संतोषजनक है। सम्यग्ज्ञान का दान अनेक सहस्र भवों के दुःखों से छुटकारा दिलाने वाला है अर्थात् अनेक भवों के दुःखों के नाश में कारणभूत है। अतः ये यथाविधि (विधिपूर्वक) दिये गये तीनों प्रकार के दान ही त्याग कहलाते हैं।

(7) शक्ति के अनुसार तप - अपनी शक्ति को नहीं छिपाकर मार्गअविरोधी कायक्लेश आदि करना तप कहलाता है। यह शरीर दुःख का कारण है, अशुचि है, यथेष्ट (इच्छानुसार) पंचेन्द्रिय के भोगों को भोगने पर भी तृप्ति नहीं होती है। अतः इसे यथेष्ट भोगविधि से पुष्ट करना युक्त नहीं है। यह अशुचि शरीर भी शीलव्रतादि गुणों

के संचय में आत्मा की सहायता करता है, ऐसा विचार करके विषयों से विरक्त हो आत्मकार्य के प्रति शरीर का नौकर की तरह उपयोग लेना उचित है। अतः इस शरीर से यथाशक्ति मार्ग-अविरोधी कायक्लेश रूप अनुष्ठान करना तप कहलाता है।

(8) साधु-समाधि - भाण्डागार की अग्निप्रशमन के समान मुनिगणों के तप का संधारण करना साधु-समाधि है। जैसे - भण्डार में आग लगने पर भण्डार बहुउपकारी होने से उस अग्नि का प्रयत्नपूर्वक शमन किया जाता है अर्थात् अग्नि के शमन करने का प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकार अनके व्रतशीलों से समृद्ध मुनिगण के तप आदि में विघ्न हो जाने पर उस विघ्न का निवारण करना साधु-समाधि है।

(9) वैयावृत्य करना - गुणवानो पर दुःख आने पर निर्दोष विधि से उसको दूर करना वैयावृत्य है। गुणवान् (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारी) साधुजनों पर आये हुए संकट, रोग आदि आपत्ति को निर्दोष रीति से दूर करना उनकी सेवादि करना बहु उपकारी वैयावृत्य है।

(10 से 13) अरिहंतादि भक्ति - अर्हत्, आचार्य, बहुश्रुत और प्रवचन में भावविशुद्ध युक्त जो अनुराग है, उसका नाम भक्ति है। केवलज्ञानरूपी दिव्य नेत्र के धारी अर्हंत में, श्रुतज्ञान रूपी दिव्य नेत्र के धारी आचार्य में, परहितप्रवण और स्वसमय एवं परसमय के विस्तार के निश्चय करने वाले बहुश्रुत (उपाध्याय) में तथा श्रुतदेवता के प्रसाद से प्राप्त होने वाले मोक्ष-महल में आरूढ़ होने के लिए सोपान रूप प्रवचन (जिनवाणी) में, भावशुद्धिपूर्वक अनुराग करना भक्ति है। यह भक्ति तीन या चार प्रकार की है।

(14) आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना - षट् आवश्यक क्रियाओं का यथाकाल प्रवर्तन करना आवश्यक अपरिहाणि भावना है। सामायिक, चतुर्विंशतिसंस्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक क्रियाएँ है। सर्वसावद्य योगों का त्याग करना तथा चित्त को एकाग्र रूप से ज्ञान में लगाना सामायिक है। चतुर्विंशति तीर्थंकरों का कीर्तन चतुर्विंशतिस्तव है। मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक खड्गासन या पद्मासन से चार-चार शिरोनति और बारह आवर्तपूर्वक वन्दना होती है। कृत दोषों की निवृत्ति प्रतिक्रमण है। भविष्य में होने वाले दोषों का अपोहन-त्याग करना अर्थात् 'भविष्य में दोष न होने देने के लिए सन्नद्ध होना प्रत्याख्यान है।' प्रतिक्रमण तक शरीर से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है। इन षडावश्यक क्रियाओं को यथाकाल बिना नागा किये स्वाभाविक क्रम से करते

रहना, उत्सुकता का त्याग नहीं करना अर्थात् उत्सुकतापूर्वक करना आवश्यक अपरिहाणि भावना कहलाती है।

(15) मोक्षमार्ग की प्रभावना - ज्ञान, तप, जिनपूजा विधि आदि के द्वारा धर्म का प्रकाशन करना मार्ग प्रभावना है। परसमय रूपी खद्योत के प्रकाश को पराभूत करने वाले ज्ञान रूपी सूर्य की प्रभा से, इन्द्र के सिंहासन को कँपा देने वाले महोपवास आदि सम्यक् तपों के द्वारा और भव्यजन रूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य की प्रभा के समान जिनपूजा के द्वारा सद्धर्म का प्रकाशन करना मार्ग प्रभावना है।

(16) प्रवचन वात्सल्य - बछड़े में गाय के समान धार्मिक जनों में स्नेह प्रवचनवात्सल्य है। जैसे गाय अपने बछड़े से अकृत्रिम स्नेह करती है, उसी प्रकार साधर्मिक जनों को देखकर तद्गत स्नेह से ओतप्रोत हो जाना, वा चित्त का धर्मस्नेह से आर्द्र हो जाना प्रवचनवात्सल्यत्व है; जो साधर्मियों के साथ स्नेह है, वही तो प्रवचनस्नेह है।

सम्यक् प्रकार से पृथक्-पृथक् या सर्वरूप से भावित ये षोडशकारण भावनाएँ तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण होती हैं।

मैं ही मेरे 14 गुणस्थान रूप हूँ व सिद्ध रूप हूँ

आचार्य कनकनन्दी

(चाल : कसमें-वादे ...)

मैं ही मेरे गुणस्थान हूँ ... मैं ही मेरे परिणाम ऽऽ
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य... गुण-पर्याय स्वरूप हूँ ऽऽ।। ध्रुव।।
अनादि काल से मोहोदय से ... था मैं मिथ्यात्वगुणस्थान में ऽऽ
पंचलब्धि की उपलब्धि से ... पाया सम्यक्त्व गुणस्थान ऽऽ
सासादन व मिश्र बने ... सम्यक्त्व पतन व मिश्रण हुआ ऽऽ
पूर्व सम्यक्त्व संस्कार बल से ... पुनः सम्यग्दृष्टि बना ऽऽ।।
देव शास्त्र गुरू श्रद्धान सहित ... तत्वार्थ श्रद्धानमय बना ऽऽ
इससे स्वयं का श्रद्धान किया ... स्वयं को शुद्ध-बुद्ध माना ऽऽ
अष्टमद से रहित हुआ मैं ... स्वाभीमानी से 'सोहं' 'अहं' माना ऽऽ
अष्टगुण व अष्टअंग बना ... श्रद्धान से (मैं) सम्यग्ज्ञानी बना ऽऽ

आत्मविशुद्धि से मोह क्षीण से ... बना पंचमगुणस्थान वाला ऽऽ
क्षुल्लक बनकर आगे बढ़ा ... चारित्र मोह को और (भी) क्षीण किया ऽऽ
अभी मैं बना निर्ग्रन्थ श्रमण ... छट्ठा-सप्तम गुणस्थानवर्ती बना ऽऽ
समता शान्ति-निस्पृह बना ... आत्म-शोध-बोध में मग्न हुआ।।
सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव पाकर ... पुनः बनूँगा श्रमण मानव होकर ऽऽ
आत्म साधना से आत्मशुद्धि कर आत्म विकास (करूँगा) क्षपक श्रेणी पर
अष्टम-नवम-दशम गुणस्थान पर ... बारहवें (गुणस्थान) में घातीनाश परे ऽऽ
तेरहवें गुणस्थान में बनूगाँ सर्वज्ञ ... अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यमय ऽऽ।।
अठारहदोष रहित बनूँगा आप्त ... अनिच्छा से होंगे उपदेशादि समस्त ऽऽ
सर्वज्ञ-हितोपदेशी-(वीतरागी) बनूँगा ... (परम) समता-शान्ति कर स्वामी बनूँगा
अन्त में योग निरोध होगा ... अघाती कर्म भी पूर्ण नाशूगाँ ऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-आनन्द-बनूँगा ... उर्ध्वगमन से लोकाग्र में रहूँगा ऽऽ।।
तन-मन-इन्द्रिय परे बनूँगा ... जन्म-जरा-मृत्यु रहित हुआ ऽऽ
सत्य-शिव-सुन्दर बनूँगा ... अक्षय-अनन्तकालतक रहूँगा ऽऽ
अष्टमूलगुण तो प्रधान होंगे ... अनन्तानन्तगुण सह होंगे ऽऽ
कृतकृत्य परमात्मा बनूँगा ... स्वयं का ही कर्त्ता-भोक्ता बनूँगाऽऽ।।
पुनः अशुद्ध (मैं) कभी न होऊगाँ ... संसार परिभ्रमण कभी न होगा ऽऽ
गुणस्थान अतीत तब बनूँगा ... तीनलोक का स्वामी बनूँगा ऽऽ
ये मेरे पुराण व भविष्य ज्ञान ... भव्य जीवों का भी मेरे समान ऽऽ
''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' सिद्धान्त... 'कनकसूरी' का जीवन वृतान्त ऽऽ।।

ओबरी 19/02/2018 मध्याह्न 1:20

जीव का अशुद्ध एवं शुद्ध स्वरूप

संदर्भ -

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।। (13)

Again, according to impure (Vyavahara) Naya, Samsari Jivas are of fourteen kinds according to Margana

and Gunasthana. But according to pure Naya, all Jivas should be understood to pure.

संसारी जीव अशुद्ध नय से चौदह मार्गणास्थानों से तथा चौदह गुणस्थानों से चौदह प्रकार के होते हैं और शुद्धनय से तो सब संसारी जीव शुद्ध ही हैं।

शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय से सिद्ध जीव तो शुद्ध हैं ही परंतु संसारी जीव भी शुद्ध हैं क्योंकि शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय केवल शुद्ध द्रव्य का ही ग्रहण करता है पर मिश्र अवस्थाओं को ग्रहण नहीं करता है क्योंकि इस नय से संसारी जीव कर्म से संयुक्त है। इस अवस्था में जीव के अनेक भेद प्रभेद हो जाते है क्योंकि संसारी जीव अनंतानंत हैं और कर्म भी असंख्यात लोक प्रमाण है।

इस अपेक्षा से संसारी जीव के भी संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं तथापि समझने के लिए एवं समझाने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली को अपनाकर उसमें समस्त भेद प्रभेदों को गर्भित किया जाता है। इस गाथा में आचार्य श्री ने संसारी जीवों के वर्गीकरण को मुख्य दो भेदों में किया है। (1) मार्गणा स्थान, (2) गुणस्थान। मार्गणा स्थान के पुनः 14 अंतर्भेद हो जाते हैं और उस अंतर्भेदों में भी अनेक प्रभेद होते हैं इसी प्रकार गुणस्थान के 14 भेद होते हैं उन 14 भेद के भी अनके प्रभेद हो जाते हैं।

1. मार्गणा

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा।
ताओ चोद्दस जाणे सुण्णाणे मग्गणा होंति।।

(141 गोम्मट सार जीवनकांड)

जीव जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में खोजे जाते हैं - अनुमार्गण किये जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं। जीवों का अन्वेषण करने वाली ऐसी मार्गणाएँ श्रुतज्ञान में चौदह कही गयी है।

गुणस्थानों के 14 चौदह भेद

मिच्छो सासण मिस्सो, अवरिदसम्मो य देसविरदो य।
विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुहमो य।।9
उवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगि य।
चउदस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा।।10

1. मिथ्यात्व, 2.सासादन, 3 मिश्र, 4. अविरतसम्यदृष्टि, 5. देशविरत, 6.

प्रतत्तविरत, 7. अप्रमत्तविरत, 8. अपूर्वकरण, 9.अनिवृत्तिकरण, 10. सूक्ष्मसाम्पराय, 11. उपशान्त मोह, 12. क्षीण मोह, 13. सयोगकेवलिजिन और 14. अयोगकेवलिजिन ये चौदह जीव समास, गुणस्थान हैं और सिद्ध इन जीव समासों-गुणस्थानों से रहित हैं।

1. मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्च-अत्थाणं।
एयंतं विवरीयं, विणयं संसयिदमण्णाणं।। 15

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्वार्थ के अश्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं - एकान्त, विपरीत, विनय, संशयित और अज्ञान।

2. दूसरे सासादन गुणस्थान का स्वरूप

आदिमसम्मत्तद्धा समयादो छावलित्ति वा सेसे।
अणअण्णदरुदयादो, णासियसम्मो त्ति सासणक्खो सो।।19

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अथवा यहाँ पर 'वा' शब्द ग्रहण किया है, इसलिए द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्तमात्र काल में से जब जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल शेष रहे उतने काल में अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी के भी उदय में आने से सम्यक्त्व की विराधना होने पर सम्यग्दर्शन गुण की जो अव्यक्त अतत्वश्रद्धानरूप परिणति होती है, उसको मासन या सासादन गुणस्थान कहते हैं।

3. तृतीय गुणस्थान का लक्षण

सम्मामिच्छुदयेण य, जत्तंरसव्वघादिकज्जेण।
ण य सम्मं मिच्छं पि य, सम्मिस्सो होदि परिणामो।।21

जिसका प्रतिपक्षी आत्मा के गुण को सर्वथा घातने का कार्य दूसरी सर्वघाति प्रकृतियों से विलक्षण जाति का है उस जात्यान्तर सर्वघाति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से केवल सम्यक्त्व रूप या मिथ्यात्वरूप परिणाम न होकर जो मिश्ररूप परिणाम होता है, उसको तीसरा मिश्रगुणस्थान कहते हैं।

4. अविरत सम्यग्दृष्टि

णो इंदियेसु विरदो, णो जीवे थावरे तसे वापि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो। 29

जो इन्द्रियों के विषयों से तथा त्रस स्थावर जीवों की हिंसा से विरक्त नहीं हैं, किंतु जिनेन्द्र देव द्वारा कथित प्रवचन का श्रद्धान करता है वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।

5. देशविरत

जो तसवहाउ विरदो, अविरदओ तह य थावरवहाओ।
एक्कसमयम्हि जीवो, विरदाविरदो जिणेक्कमई।।31

जो जीव जिनेन्द्र देव में अद्वितीय श्रद्धा को रखता हुआ त्रस की हिंसा से विरत और उस ही समय में स्थावर की हिंसा से अविरत होता है, उस जीव को विरताविरत कहते हैं।

6. प्रमत्त गुणस्थान

वत्तावत्तपमादे, जो वसइ पमत्तसंजदो होदि।
सयलगुणसीलकलिओ, महव्वई चित्तलायरणो।33

जो महाव्रती सम्पूर्ण 28 मूलगुण और शील भेदों से युक्त होता हुआ भी व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार के प्रमादों को करता है, वह प्रमत्तसंयत गुणस्थान वाला है। अतएव वह चित्रल आचरण वाला माना गया है।

7. सप्तम गुणस्थान का स्वरूप

संजलणणोकसायाणुदओ मंदो जदा तदा होदि।
अपमत्तगुणो तेण य, अपमत्तो संजदो होदि।।45

जब संज्वलन और नोकषाय का मंद उदय होता है तब सकल संयम से युक्त मुनि के प्रमाद का अभाव हो जाता है इसलिए इस गुणस्थान को अप्रमत्त संयत कहते हैं। इसके दो भेद हैं - एक स्वस्थानाप्रमत्त दूसरा सातिशयाप्रमत्त।

8. अपूर्वकरण गुणस्थान -

अंतोमुहुत्तकालं, गमिऊण अधापवत्तकरणं तं।
पडिसमयं सुज्झंतो, अपुव्वकरणं समल्लियइ।।50

जिसका अन्तर्मुहूर्तमात्र काल है, ऐसे अधःप्रवृत्त करण को बिताकर वह सातिशय अप्रमत्त जब प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि को लिए हुए अपूर्वकरण जाति के परिणामों को करता है, तब उसको अपूर्वकरण नामक अष्टमगुणस्थानवर्ती कहते हैं।

9. नवमें गुणस्थान का स्वरूप

एक्कम्हि कालसमये, संठाणादीहि जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहावि य, परिणामेहिं मिहो जेहिं।।
होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जेस्सिमेक्क परिणामा।
विमलयर झाणहुयवहिसहाहिं णिद्दड्ढ कम्मवणा।।57

अन्तर्मुहूर्तमात्र अनिवृतिकरण के काल में से आदि या मध्य अन्त के एक समयवर्ती अनेक जीवों में जिस प्रकार शरीर की अवगाहना आदि ब्राह्य कारणों से तथा ज्ञानावरणादिक कर्म के क्षयोपशमादि अन्तरंग कारणों से परस्पर में भेद पाया जाता है, उसी प्रकार जिन परिणामों के निमित्त से परस्पर में भेद नहीं पाया जाता, उनको अनिवृतिकरण कहते हैं अनिवृतिकरण गुणस्थान का जितना काल है, उतने ही उसके परिणाम हैं। इसलिए उसके काल के प्रत्येक समय में अनिवृत्तिकरण का एक-एक ही परिणाम होता है तथा ये परिणाम अत्यंत निर्मल ध्यानरूप अग्नि की शिखाओं की सहायता से कर्मवन को भस्म कर देता है।

10. दशवे गुणस्थान का स्वरूप

धुदकोसुंभयवत्थं, होहि जहा सुहमरायसंजुत्तं
एवं सुहमकसाओ, सुहमसरागोत्ति णादव्वो।।59

जिस प्रकार धुले हुए कसूमी वस्त्र में लालिमा-सुर्खी-सूक्ष्म रह जाती है, उसी प्रकार जो जीव अत्यंत सूक्ष्म राग-लोभ कषाय से युक्त है उसको सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशम गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

11. उपशांत कषाय

कदक फलजुदजलं वा, सरवाणियं व णिम्मलयं।
सयलोवसंतमोहो उपसंतकसायओ होदि।।61

निर्मली फल से युक्त जल की तरह अथवा शरद ऋतु में ऊपर से स्वच्छ हो जाने वाले सरोवर के जल की तरह संपूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणामों को उपशांत कषाय नाम का ग्यारहवाँ गुणस्थान कहते हैं।

12. बारहवें गुणस्थान का स्वरूप

णिस्सेसखीण मोहो, फलिहामलभायणुदयसमचित्तो।
खीण कषाओ भण्णदि णिग्गथो वीयरागेहिं।62

जिस निर्ग्रंथ का चित्त मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल हो गया है उसको वीतराग देव ने क्षीण कषाय नाम का बारहवां गुणस्थानवर्ती कहा है।

13. तेरहवें गुणस्थान का वर्णन

केवलणाण दिवायर किरण कलावप्पणासिअण्णाणो।
णवकेवललद्धुग्गम सुजणियपरमप्प ववएसो।।63
असहायणाण दंसणसहियो इदि केवली हु जोगेण।
जुत्तो त्ति सजोगी, जिणो, अणाइणिहणारिसे उत्तो।।64

जिसका केवलज्ञान रूपी सूर्य की अविभाग प्रतिच्छेद रूप किरणों के समूह से (उत्कृष्ट अनन्तान्त प्रमाण) अज्ञान अंधकार सर्वथा नष्ट हो गया हो और जिसको नव केवलब्धियों के (क्षायिक-सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) प्रकट होने से परमात्मा यह व्यपदेश (संज्ञा) प्राप्त हो गया है, वह इन्द्रियाँ, आलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले ज्ञान दर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग से युक्त रहने के कारण सयोग तथा घाति कर्मों से रहित होने के कारण जिन कहा जाता है, ऐसा अनादिनिधन आर्ष आगम में कहा है।

14. चौदहवें अयोग केवली गुणस्थान का वर्णन

सीलेसिं संपत्तोणिरूद्धणिस्सेस आसओ जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होदि।।65

जो अठारह हजार शील के भेदों के स्वामी हो चुके हैं और जिसके कर्मों के आने का द्वाररूप आस्रव सर्वथा बंद हो गया है तथा सत्व और उदयरूप अवस्था को प्राप्त कर्मरूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से जो उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सम्मुख है, उस योग रहित केवली को चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते है।

उपर्युक्त जो मार्गणा एवं गुणस्थान का वर्णन किया गया है, इसमें संपूर्ण संसारी जीवों का कथन है तथापि दोनों में कुछ सूक्ष्म भेद है। वह भेद यह है कि मार्गणा स्थान में तो विशेषतः बाह्य गति, शरीर, इन्द्रिय आदि को माध्यम करके प्ररूपणा की गयी है तो गुणस्थान में अंतरंग भावों को प्रधानता दी गयी है।

''सव्वे सुद्धा हू सुद्धणया'' यह सिद्धांत बहुत ही व्यापक एवं रहस्यपूर्ण है। इस सिद्धांत से सिद्ध होता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से कोई भी जीव न छोटा है और न बड़ा है। भले ही बाह्य शरीर, गति इन्द्रिय आदि से या गुणस्थान की अपेक्षा छोटे-

बड़े हो सकते हैं। विशेष जिज्ञासु को प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, समयसार आदि का अवलोकन करना चाहिए। यह जैन धर्म का सार्वभौम/साम्यभाव/समताभाव/समानाधिकार सिद्धांत है। इस सिद्धांत से ही राजनीति में समाजवाद, लोकतंत्र, साम्यवाद की सही स्थापना हो सकती है। इसी से ही विश्व मैत्री, विश्वप्रेम, विश्वसमाज, विश्वबंधुत्व निरस्त्रीकरण (अस्त्ररहित राष्ट्र निर्माण) विश्वशांति आदि महान् उदात्त भावना की संपूर्ति हो सकती है। सिद्धांततः शुद्ध निश्चय नय से संसारी जीव भी अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख संपन्न सिद्ध भगवान् के समान होते हुए भी व्यवहारतः अशुद्धनय से संसारी जीव सिद्ध स्वरूप नहीं है। क्योंकि संसारी जीव कर्म परतंत्रता के कारण संसार अवस्था में अनंत शारीरिक, मानसिक दुःखों को भोगता रहता है। यदि व्यवहार नय से भी शुद्ध मानेंगे तो अनुभव रूप में उपलब्ध रूप जो दुःख है कर्म परतंत्रता है उसका अभाव होने का प्रसंग आएगा परंतु वस्तुतः ऐसा नहीं है और एक अनर्थ यह हो जाएगा कि संसारी जीव मुक्त जीव की तरह अनंत सुखी होगा तो मोक्ष के लिए जो भगवान् तथा संसार में स्थित, अभव्य मिथ्यादृष्टि कीड़े-मकोड़े, कुत्ता, सियार, सुअर, नारकी, पापी, कामी आदि जीवों में किसी में भी किसी प्रकार अंतर नहीं रहेगा। अभव्य तो सम्यग्दृष्टि तक कभी भी नहीं हो सकता तो वह सिद्ध कैसे हो सकता है? इतना ही नहीं संसार मोक्ष, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मुनि व्रत, श्रावक व्रत, धर्म ध्यान, शुक्लध्यान आदि का लोप हो जाएगा।

द्रव्य संग्रह एक संक्षिप्त सूत्रबद्ध आध्यात्मिक ग्रंथ होने के कारण इसमें संक्षिप्त रूप से संसारी जीवों का वर्णन किया गया है। ऐसे तो जैन धर्म सर्वज्ञ प्रणीत, अनादि, अनिधन, अनेकांतात्मक वस्तु स्वरूप एवं अहिंसा प्रधान होने के कारण इस धर्म में जीवों का जितना सांगोपांग, व्यापक-सूक्ष्म वर्णन पाया जाता है ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं पाया जाता है। विशेष जिज्ञासु विस्तृत अध्ययन के लिए गोम्मटसार जीवकांड, स्वतंत्रता के सूत्र (तत्वार्थ सूत्र) धवला आदि का आलंबन लें।

यहां पर जिन-जिन मुख्य प्रणालियों के माध्यम से जीवों का अन्वेषण शोध-बोध किया गया है। उसका कुछ दिग्दर्शन मैं यहां कर रहा हूं। यथा -

गुण जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।
उवओगो विय कमसो वीसं तु परूवणा भणिदा।।2
गोम्मटजीवकाण्डे कर्णाटकवृति।

यहाँ चौदह गुणस्थान, अठानवें जीवसमास, छह पर्याप्ति, दस प्राण, चार संज्ञा,

चार गति मार्गणा, पाँच इन्द्रिय-मार्गणा, छह काय-मार्गणा, पन्द्रह योग-मार्गणा, तीन वेद-मार्गणा, चार दर्शन-मार्गणा, आठ ज्ञान-मार्गणा, सात संयम-मार्गणा, चार दर्शन-मार्गणा, दो संज्ञी-मार्गणा, दो आहार-मार्गणा, दो उपयोग इस प्रकार ये जीव प्ररूपणा बीस कही है। प्रत्येक प्ररूपणा की निरूक्ति कहते हैं - ''गुण्यते'' अर्थात् जिसके द्वारा द्रव्य से द्रव्यांतर को जाना जाता है वह गुण है। कर्म की उपाधि की अपेक्षा सहित ज्ञान, दर्शन, उपयोगरूप चैतन्य प्राणों से जो जीता है वह जीव है। वे जीव जिनमें सम्यक्रूप से ''आसते'' रहते हैं वे जीवसमास हैं। ''परि'' अर्थात् समंतरूप से आप्ति अर्थात् प्राप्ति पर्याप्ति है, जिसका अर्थ है शक्ति की निष्पत्ति। जिनसे जीव ''मृग्यन्ते'' खोजे जाते हैं वे मार्गणा हैं। मार्गयिता खोजने वाला तत्वार्थ का श्रद्धालु भव्यजीव हैं। ''मृग्य'' अर्थात् खोजने योग्य चौदह मार्गणा वाले जीव हैं मृग्यपने के कारणपने या अधिकरणपने को प्राप्त गति आदि मार्गणाओं में उन-उन मार्गणावाले जीवों को खोजा जाता है। ज्ञान सामान्य और दर्शन सामान्य रूप उपयोग मार्गणा का उपाय है। इस प्रकार इन प्ररूपणाओं के सामान्य अर्थ का कथन किया।

जीव के सिद्ध स्वरूप एवं उर्ध्वगमन स्वभाव

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूण चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहि संजुत्ता।।14

The Siddhas (or libreated Jivas) are void of Karmas, Possessed of eight qualities, silghty less then the final body, eternal, possessed of Utpada (rise) and Vyaya (fall) and existent at the summit of Loka.

जो जीव ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हैं, सम्यक्त्व आदि आठगुणों के धारक हैं तथा अंतिम शरीर से कुछ कम हैं वे सिद्ध हैं और ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में स्थित हैं, नित्य हैं तथा उत्पाद और व्यय इन दोनों से युक्त हैं।

इस गाथा में आचार्य श्री ने जीव के सिद्धत्व एवं ऊर्ध्वगमन का वर्णन किया है। तेरहवीं गाथा के पूर्वार्ध में चौदहवें गुणस्थान तक का वर्णन किया गया है। सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि से 14 वें गुणस्थान तक संसार अवस्था है क्योंकि इस गुणस्थान में भी चार अघाति कर्म की सत्ता है। भले की इस गुणस्थान में चार घाति कर्म न होने के कारण अनंत चतुष्टय प्रगट हो गया है एवं भाव मोक्ष भी हो गया है तथापि द्रव्य-मोक्ष एवं संपूर्ण मोक्ष नहीं हुआ है। 14 वें गुणस्थान के अंतिम समय में संपूर्ण कर्मों के क्षय

से जीव पूर्ण मुक्त हो जाता है। समस्त विरोधात्मक कर्म के अभाव से जीव के अनंत गुण प्रगट हो जाते हैं तथापि सिद्ध के आठ कर्म के अभाव से आठ विशेष गुण प्रगट होते हैं। यथा-

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।

1. सम्यक्त्व 2. अनंत ज्ञान 3. अनंत दर्शन 4. अनंत वीर्य 5. सूक्ष्मत्व 6. अवगाहनत्व 7. अगुरुलघुत्व 8. अव्याबाधत्व।

सिद्ध भगवान् में जो आठ गुण प्रगट होते हैं वे आठ कर्मों के संपूर्ण क्षय से प्रगट होते हैं। यथा-

	कर्म का अभाव	**गुण प्रगट**
1.	ज्ञानवरणीय कर्म	अनंत ज्ञान गुण
2.	दर्शनावरणीय कर्म	अनंत दर्शन गुण
3.	मोहनीय कर्म	सम्यक्त्व गुण
4.	अंतराय कर्म	अनंत वीर्य गुण
5.	वेदनीय कर्म	अव्याबाध गुण
6.	आयु कर्म	अवगाहनत्व गुण
7.	नाम कर्म	सूक्ष्मत्व गुण
8.	गोत्र कर्म	अगुरुलघुत्व गुण

सिद्ध भगवान् संपूर्ण कर्म से रहित होने के कारण अमूर्तिक हैं, इसलिए उनका मूर्तिक आकार नहीं है तथापि अनंत गुणों का अखंड पिण्ड होने के कारण एवं प्रदेशत्व गुण होने के कारण उनका बहुत ही सुंदर आकार होता है। वह आकार अंतिम शरीर के किंचित् न्यून (कुछ छोटा) है। भले संसारी जीवों के शरीर में यहाँ तक कि अर्हंत् भगवान् के शरीर में भी छेद है, पोल है परंतु सिद्ध भगवान् के आत्म प्रदेश में (सिद्धाकार में) किसी प्रकार छेद या पोल नहीं होता है। इसलिए सिद्ध भगवान् की प्रतिमा सुंदर, सुरुचिपूर्ण, समचतुरस्त्र संस्थान युक्त घनाकार होती हैं अरिहंत की प्रतिमा अष्ट प्रतिहार्य, लांछन एवं केश आदि से युक्त होती है किंतु सिद्ध प्रतिमा इन अष्ट प्रतिहार्यादि से रहित होती है। अनेक अकृत्रिम सिद्ध प्रतिमायें होती हैं। नवदेवता में सिद्ध भगवान् की प्रतिमा होती है और अलग से भी सिद्ध भगवान् की प्रतिमा होती है।

कर्नाटक के शेडबाल में रत्नत्रय मंदिर में एक विशाल सिद्ध भगवान् की प्रतिमा है। होसदुर्ग में भी सिद्ध भगवान् की प्रतिमा है। वर्तमान में जो सिद्ध भगवान् की खोखली प्रतिमा बनाते हैं वह आगमोक्त नहीं है। खंडित प्रतिमा अपूज्यनीय है, तो खोखली सिद्ध भगवान् की प्रतिमा में तो और भी अधिक आंगोपांग की कमी है तो वह प्रतिमा कैसे पूज्यनीय है?

अष्टकर्म से रहित होते ही सिद्ध जीव 1 समय में 7 राजू दूरी को पार करके लोकाग्र में जाकर स्थिर हो जाते हैं।

ऊर्ध्वगमन करना जीव का स्वाभाविक गुण है तथापि कर्म परतंत्रता के कारण जीव विभिन्न गति में गमन करता है परंतु कर्म से रहित होने से स्वाभाविक ऊर्ध्वगति से ऋजुगति से गमन करता है कहा भी है-

पयडि ठिदि अणुभागप्पदेस बंधेहि सव्वदो मुक्को।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसा वज्जं गदिं जंति।।

प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध, प्रदेश बंध से सम्पूर्ण रूप से मुक्त होने के बाद परिशुद्ध, स्वतंत्र, शुद्धात्मा तिर्यक् आदि गतियों को छोड़ कर ऊर्ध्वगमन करता है। स्वतंत्रता के सूत्र/मोक्षशास्त्र में मुक्त जीव के ऊर्ध्वगमन के विभिन्न कारण बताते हुए कहा है -

पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामच्च। 6

पूर्व प्रयोग से, संग का अभाव होने से, बंधन के टूटने से, वैसा गमन करना स्वभाव होने से मुक्त जीवन ऊर्ध्वगमन करता है।

संसारी जीव ने मुक्त होने से पहले कितनी बार मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया है अतः पूर्व का संस्कार होने से जीव ऊर्ध्वगमन करता है जीव जब तक कर्मभार सहित रहता है तब तक संसार में बिना किसी नियम के गमन करता है और कर्मभार से रहित हो जाने पर ऊपर को ही गमन करता है। अन्य जन्म के कारणभूत गति, जाति आदि समस्त कर्मबंध के उच्छेद हो जाने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है। आगम में जीव का स्वभाव ऊर्ध्वगमन करने वाला बताया है। अतः कर्म नष्ट हो जाने पर अपने स्वाभाविक अवस्था के कारण मुक्तात्मा का एक समय में ऊर्ध्वगमन होता है।

अचौर्य की आत्मकथा (आध्यात्मिक से भौतिक तक)

(समस्त पर द्रव्यों की अस्वीकार्यता ही परम अचौर्य)

(आध्यात्मिक अचौर्य, अचौर्य महाव्रत, अणुव्रत आदि का स्वरूप)

(चाल :- आत्मशक्ति...)

अचौर्य मेरा नाम है, चोरी न करना काम है।
पर द्रव्य की अस्वीकार्यता, मेरा परम काम है।।
स्व-वैभव में ही रमण करना, परभाव से पूर्ण विरक्त होना।
पंद्रह प्रमाद से विरक्त होता, निस्पृह-निराडम्बर-सन्तोष होना।। (1)
सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री, ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व आदि।
तन-मन-इन्द्रिय के भोगोपभोगादि, राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोधादि।।
सचित्त-अचित्त-मिश्रपरिग्रह, शत्रु-मित्र-भाई-बन्धु-आग्रह।
समस्त अनात्म भाव अस्वीकार्यता, यथार्थ से मेरी परम पराकाष्ठा।।(2)
इस हेतु अचौर्य महाव्रत उपाय, नवकोटि से भौतिकद्रव्य ग्राह्य।
आहार-औषधि व ज्ञान-उपकरण, दाता द्वारा देय होने पर ही ग्राह्य।।
श्रमण की भ्रामरी वृत्ति उदाहरण, गोचरी रूप में इसे करते अभिधेय।
पडगाहन के अनन्तर भी गृहप्रवेश, विराजमान हेतु उच्चासन निवेदन।।(3)
नवधाभक्ति सप्त गुण सहित दान, तब ही ग्रहण करते आहार श्रमण।
याचना-दबाव-प्रलोभन-भय विहीन, आहार ग्रहण समान अचौर्य गुण।।
ऐसा ही साधुयोग्य सर्व आचरण, निस्पृह-निराडम्बर-समता पूर्ण।
अनाग्रह-अनासक्त (सदा) पर द्रव्यों में, यह है साधुयोग्य अचौर्य गुण।। (4)
पर स्वतन्त्रता व मर्यादा-जीवन-धन, सभ्यता-संस्कृति-शोध-बोध-निर्माण।
पंथ-मत व विचार एकता-समन्वय, इन का भी अपहरण होता चौर्य।।
ऐसा पालन हेतु जो होते असमर्थ, उन्हें पालन योग्य मेरा अणुस्वरूप।
अदेय परद्रव्य न ग्रहण योग्य, स्वेच्छिक-नैतिक रूप में देय ही ग्राह्य।।(5)
आक्रमण युद्ध जो अन्याय युक्त, शासन करना भी होकर जय युक्त।
उपनिवेश व तानाशाही-आन्तकवाद, भ्रष्टाचार-मिलावट-जमाखोर सहित।।
चोरी-डकैती से कम नहीं मम उक्त रूप, कामचोरी-बहाना-ठगी-प्रपंच।
ये सभी भी मेरा है वैश्विक रूप, केवल चोरी-डकैती मेरा छोटा रूप।।(6)

चोरी-डकैती को तो मानते (हैं) मेरा रूप, उसे करनेवालों को मानते चोर-डकैत।
अन्य रूप सेवनवालों को न मानते चोर, चोर-चोर मौसेरे भाई के समान।।
चोर यथा मचाता शोर चोर पकडो, बड़े चोर छोटे चोर को माने चोर।
ऐसा होता मेरा रहस्यमय स्वरूप, लोभमोह स्वार्थ से (जीव) मुझे करते स्नेह।। (7)
मेरा आध्यात्मिक रूप होता शुद्धात्मा, महाव्रत रूप में होती इसकी साधना।
अणुव्रत में होती सामाजिक भी शुद्धता, व्यक्ति निर्माण से ले वैश्विक समरसता।।
मेरा है विश्वरूप आत्मा से समाजिक, आध्यात्मिक से ले भौतिक तक।
मेरे पालन से स्व-पर-विश्वकल्याण, 'कनक सूरी' मान्य मेरा सत्य स्वरूप।।(8)

ओबरी 11/02/2018 रात्रि 08:22

चोरी रूपी हिंसा

अवितीर्णस्य ग्रहणं, परिग्रहस्य प्रमत्त-योगाद्यत्।
तत्प्रत्येयं स्तेयं, सैव च हिंसा वधस्य हेतुत्वात्।।102।।(पु.सि.)

The taking by Pramatta Yoga, of objects which have not been given is to be deemed theft, and that is Himsa because it is the cause of injury.

व्याख्या-भावानुवाद :- यहाँ से आचार्य श्री द्वितीय असत्य विरति व्रत का व्याख्यान करके तृतीय स्तेय/चौर्य विरति लक्षण व्रत का निरूपण कर रहे हैं। जो प्रमत्त योग से नहीं दिया हुआ परिग्रह का ग्रहण करता है वह चौर्य है क्योंकि वह प्रत्यय/विश्वास/प्राण वध के लिए कारण होने से बिना दिया हुआ परिग्रह/धन-धान्य का ग्रहण/अपहरण करना चोरी है, द्रव्य प्राण-भाव प्राण की हिंसा के लिए हेतु होने से।

समीक्षा :- क्रोध-मान-माया-लोभ-कामूक आदि भाव से अन्य द्रव्यों को ग्रहण करना या आत्म द्रव्य को छोड़कर अन्य द्रव्य को स्वीकार करना चोरी है। यदि अन्तरंग में विकार भाव नहीं है तो द्रव्यों का ग्रहण होने पर भी चोरी का दोष नहीं लगेगा। जैसे शून्यगृह, छोड़े हुए घर में मुनि रहते हैं हाथ धोने के लिए प्रतिबंध रहित मिट्टी प्रयोग में लाते हैं, प्रासुक झरने का पानी प्रयोग करते हैं तो भी उनको चोरी का दोष नहीं लगता है क्योंकि उनके हृदय में चोरी करने रूपी भाव नहीं है। यदि अन्तरंग में कषाय भाव होने पर भी दूसरों की धन-सम्पत्ति प्रतिकूल परिस्थिति के कारण चोरी नहीं कर पाया तो भी वह दोष का भागी ही है। जैसे एक चोर को रात्रि में सेंध खोदते

समय कोतवाल ने पकड़ लिया, यह चोर चोरी नहीं कर पाया तो भी न्यायाधीश उसको दोषी साबित करके दण्ड देंगे।

केवल डाका डालकर, सेंध बनाकर चोरी करना ही चोरी नहीं है परन्तु अधिक मुनाफा लेना, कम तौलकर देना, अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, न्यायपूर्ण सेल्सटेक्स, इनकम टैक्स नहीं देना, श्रमिकों (मजदूरों)को उपयुक्त वेतन नहीं देना, रिश्वत लेना, राष्ट्र के न्याय नीति के विरूद्ध व्यवसाय करना, चावल में कंकड़ मिलाकर बेचना, घी में डालडा मिलाना, डालडा में चर्बी मिलाना आदि चोरी रूप गर्हित पाप है। धन-सम्पत्ति मनुष्यों का ग्यारहवाँ प्राण है, जो दूसरों की धन-सम्पत्ति हड़प करता है, वह उसका प्राण हर लेता है। जो अन्याय से धन उपार्जन करता है, उसका धन अधिक दिन तक नहीं रहता है।

अन्यायेन उपार्जितं धनं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते तु एकादशवर्षे समूलं च विनश्यति।।

अन्याय से उपार्जित धन 10 वर्ष तक रहता है। ग्यारहवें वर्ष में मूल सहित नष्ट हो जाता है।

ह्वेनसांग भारत के विषय में लिखते हैं कि भारत एक समृद्धशाली देश होते हुए भी कोई घर में ताला नहीं लगाते थे। इससे सिद्ध होता है कि भारत में पहले विशेष चोरी नहीं होती थी। अभी भी कुछ वैदेशिक देश में चोरी कम होती है परन्तु भारतीय लोग स्वयं को श्रेष्ठ एवं धार्मिक देश की प्रजा मानते हुए भी विचित्र चोरी करते हैं। व्यापारी क्षेत्र में काला बाजारी, मिश्रण (मिलावट) आदि चोरी के कार्य के साथ-साथ शैक्षणिक, शासकीय, न्यायालय आदि में भी चोरी की भरमार है। विद्यार्थियों को शिक्षक ठीक से नहीं पढ़ाते हैं और विद्यार्थी ठीक से नहीं पढ़ते हैं यह कर्त्तव्य चोरी है। परीक्षा में नकल करना भी चोरी है, रिश्वत लेकर शिक्षा विभागीय अधिकारी एवं शिक्षक आदि के द्वारा विद्यार्थियों को प्रश्न-पत्र पहले से ही दे देना, अधिक नम्बर दे देना, अनुत्तीर्ण विद्यार्थी को उत्तीर्ण करना आदि चोरी है। न्यायालय में रिश्वत लेकर सही को झूठ करना एवं झूठ को सत्य करना बहुत बड़ी चोरी है, जिससे निर्दोष मारा जाता है, दोष बढ़ता है, नैतिक पतन होता है एवं सत्य का हनन होता है। प्रायः करके न्यायालय अभी अन्यायालय हैं, न्यायाधीश अन्यायाधीश है। सत्य के नाम पर असत्य का ही साम्राज्य चलता है। इसी प्रकार शासकीय नेता वर्ग, ऑफिसर आदि प्रायः रिश्वत लेकर ही काम करते हैं परन्तु अपना पवित्र कर्त्तव्य मानकर काम करने वाले बहुत कम हैं।

पूँजीपति व्यापारी वर्ग भी मार्केट में वस्तुओं का शार्टेज उत्पन्न करके मनमाना मूल्य बढ़ाकर साधारण प्रजा का शोषण करते हैं जो कि रक्त शोषण, गला काटने से कुछ कम नहीं है। इससे समाज, देश, राष्ट्र में हाहाकार मच जाता है एवं कुछ साधारण मनुष्य भी चोरी आदि कुकृत्य करने के लिये बाध्य हो जाते हैं। अतः देश राष्ट्र की शान्ति के लिये उपरोक्त चौर्य कर्म का त्याग करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्त्तव्य है।

चोरी का फल :-

चोरी करने वालों को चोर कहकर पुकारते हैं, उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते हैं, उसको अपने समीप में, घर में, ग्राम में, नगरादि में नहीं रखना चाहते हैं, उसका कोई विश्वास नहीं करते हैं, उसको राजदण्ड मिलता है, देश से भी निकाल देते हैं। परभव में निर्धन, भिखारी बनता है, कठोर परिश्रम करने पर भी पेट भरना दुर्लभ हो जाता है। दूसरे भव में उसकी धन सम्पत्ति भी अग्नि से, पानी से , भूकम्प से, चोरी आदि से नष्ट हो जाती है।

धन हरण प्राण हरण

अर्था नाम यदेते प्राणाः बहिश्चराः पुंसाम्।
हरति स तस्य प्राणान् यो यस्य जनो हरत्यर्थान्।।103।।

He, who seizes the property of another person deprives him of his vitalities, for all objects are external vitalities of men.

व्याख्या-भावानुवाद :- धन-सम्पत्ति मनुष्य के बहिरंग प्राण हैं। इसलिये जो व्यक्ति दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण करता है मानो वह उसका प्राण ही हरण करता है। नाम शब्द यहाँ कोमल सम्बोधन के लिये प्रयोग किया गया है। सुवर्ण, धन-सम्पत्ति आदि पुरुष के लिये बहिरंग प्राण है तो श्वास आदि अन्तरंग प्राण हैं। जो व्यक्ति दूसरों की सुवर्ण, चाँदी आदि सम्पत्ति का अपहरण करता है, चोरी करता है, शोषण करता है, ठगता है वह दूसरों के अन्तरंग प्राण का भी अपहरण करता है क्योंकि संसारी जीव बाह्य सम्पत्ति के आधार पर जीवन निर्वाह करता है। उसके अभाव से उसका जीना दूभर हो जाता है। इसलिये सम्पत्ति की चोरी से अनके व्यक्ति प्राण त्याग भी कर लेते हैं। इसलिये चोरी करना भी हिंसा है। इसलिये चोरी करना त्याग कर देना चाहिए।

समीक्षाः- सामान्यतः रूढ़िवशात् जो अहिंसा को मानते हैं वे केवल अस्त्र

शस्त्र से दूसरों को काटना, मारना ही हिंसा समझते हैं। परन्तु आचार्य श्री ने इसमें स्पष्ट निर्देश दिया है कि जो दूसरों को अस्त्र शस्त्र से भी नहीं काटता है परन्तु जो दूसरों की सम्पत्ति का अनैतिकपूर्ण अपहरण करता है वह भी पूर्ण हिंसक ही है। अनेक व्यापारी तथा उद्योगपति विचार करते हैं कि यह तो हमारा व्यापार है और दूसरों को ठगना हमारी व्यापारिक कला है। वे भले अवचेतन संतुष्टि कर ले तथापि उसका अन्तरंग अपराध बोध से ग्रसित रहता है, चोरी धोखा-धड़ी पकड़ने में न आ जावे इस विचार से भयभीत, आतंकित रहता है। सरकार छापा मारकर उसका धन छीन लेती है, दूसरे लोग उसे दिन का सफेद चोर मानते हैं, पाप बंध होता है जिसके कारण उसका भविष्य दयनीय हो जाता है।

जहाँ चोरी वहाँ हिंसा

हिंसायां स्तेयस्य च नाऽव्याप्तिः सुघट एव हि स यस्मात्।
ग्रहणे प्रमत्त-योगो द्रव्यस्य स्वीकृतस्याऽन्यैः।।104।।

There is no exclusivity between Himsa and theft. It is well included in theft, because in taking what belongs to another (there is) Pramatta Yoga.

व्याख्या-भावानुवाद :- अन्य के द्वारा स्वीकार किया गया द्रव्य ग्रहण करने में प्रमत्तयोग सुघटित होने से चोरी में हिंसा की अव्याप्ति नहीं है अर्थात् अन्य के द्रव्य को प्रमाद से ग्रहण करने रूप चोरी भी हिंसा है अतः जहाँ चोरी है वहाँ अवश्य ही हिंसा है। लक्ष्य के एकदेश में लक्षण का होना अव्याप्ति है। यथा श्रृंगवान् धवल पशु गौ है। यह गौ का लक्षण कृष्ण गौ में अव्यापक है। ऐसा अव्यापकपना चोरी एवं हिंसा में नहीं है क्योंकि प्रमत्तयोग से ही चोरी होती है। इसलिए चोरी में हिंसा की व्यापकता है।

समीक्षाः- आचार्य श्री इस श्लोक में यह जोर देकर सिद्ध कर रहे हैं कि जो भले दूसरों के द्रव्य तथा भाव प्राण का हनन नहीं कर रहा है परन्तु चोरी करता है तो वह भी प्राण हरण करने वालों के समान ही हिंसक है। उससे थोड़ा भी कम हिंसक नहीं है। इससे सिद्ध होता है जो दूसरों के द्रव्य चोरी, डकैती, ठगी, घोटाला आदि से प्राप्त करता है वह भी पूर्ण हिंसक ही है।

वीतरागी अहिंसक

नातिव्याप्तिश्च तयोः प्रमत्त-योगैक-कारण-विरोधात्।
अपि कर्माऽनुग्रहणे, नीरागाणामविद्यमानत्वात्।।105।।

Nor is there the defect of overlapping. There is no (Himsa), when passionless saints take in karmic molecules because of the absence of Pramatta Yoga, the chief motive.

व्याख्या भावानुवादः- प्रश्न- कर्म, नो कर्म ग्रहण भी चोरी होगी क्योंकि कर्म नोकर्म भी दूसरों से अदत्त होने से?

उत्तरः- वीतरागी मुनियों के प्रमत्तयोग का अभाव होने से उनके कर्म ग्रहण से भी हिंसा/चोरी की अतिव्याप्ति नहीं है अर्थात् कर्म ग्रहण से वीतरागी मुनियों को हिंसा/चोरी का दोष नहीं लगता है। लक्ष्य को अतिक्रम करके लक्षण का बाहर निकल जाना अतिव्याप्ति है। यथा- गौ चतुष्पदी होती है। यह लक्षण महिषादि में भी चला जाता है। वीतरागी मुनियों के प्रमत्त योग का विरोध/निरोध होने से उन्हें कर्म ग्रहण से भी हिंसा, चोरी का दोष नहीं लगता है। अन्यत्र नहीं। कर्मादि ग्रहण में दाता कोई नहीं होता है। प्रमाद रहित आत्माधीन मुनि के प्रमाद के कारणभूत परिग्रहादि का उनके विरोध/अभाव होने से किस प्रकार उनको हिंसा, असत्य, चोरी की परिणति हो सकती है? क्योंकि परिग्रहरूपी कारण से हिंसा, स्तेय रूपी कार्य होता है। कारण के अभाव से कार्य कैसे संभव है? अतः मुनि के कर्मग्रहण में अचौर्यत्व है।

समीक्षाः- उपर्युक्त श्लोक में आचार्य श्री ने जो वर्णन किया है वह व्यवहार से है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर कर्म ग्रहण भी दोष कारक है। बृहत् मुनि प्रतिक्रमण में गणधर गौतम स्वामी ने परिग्रह परित्याग रूप पंचम महाव्रत के दण्डक में कर्म को अन्तरंग परिग्रह रूप में स्वीकार किया है। यथा -

अहावरे पंचमे महाव्वदे परिग्गहादो वेरमणं सो वि परिग्गहो दुविहो अब्भंतरो बाहिरो चेदि। तत्थ अब्भंतरो परिग्गहो णाणावरणीयं, दंसणावरणीयं, मोहणीयं, आउग्गं, णामं, गोदं, अंतरायं चेदि अट्ठविहो। तत्थ बाहिरो परिग्गहो उवयरण-भंड-फलह-पीढ़-कमण्डलु-संथार-सेज्ज-उवसेज्ज, भत्त-पाणादि-भेदेण अणेयविहो, एदेण परिग्गहेण अटठविहं कम्मरयं बद्धं बद्धाविय, बद्धज्झन्तं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।5।।

अर्थात् पंचम महाव्रत में परिग्रह से विरमण होता है। वह परिग्रह (1) आभ्यन्तर (2) बाह्य रूप से दो प्रकार का है। उसमें से आभ्यन्तर परिग्रह (1) ज्ञानावरणीय (2) दर्शनावरणीय (3) वेदनीय (4) मोहनीय (5) आयु (6) नाम (7) गोत्र (8) अंतराय ऐसे आठ प्रकार के हैं। उसमें बाह्य परिग्रह, उपकरण, भाण्ड, फलक, पीठ, कमण्डल, संस्तर, शैय्या, उपशैय्या, भोजन पानादि भेद से अनेक प्रकार

के हैं। इस परिग्रह से आठ प्रकार के कर्मरज को बांधा, बंधवाया बन्धते हुए की अनुमोदना की हो वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो।

उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि ज्ञानावरणादि कर्म भी परिग्रह है। प्रथम गुणस्थान में तो जीव मिथ्यात्व आदि अन्तरंग समस्त परिग्रह/प्रमाद सहित ज्ञानावरणदि आठों कर्म को बांधता है। चतुर्थ गुणस्थान में मिथ्यात्व से रहित अन्यान्य प्रमाद से युक्त होकर जीव यथायोग्य आठों कर्मों को बांधता है। छठे गुण स्थान तक प्रमाद रहता ही है। इसलिए छठे गुणस्थान को प्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

इसलिये यहाँ भी जो कर्मबन्ध होता है वह भी प्रमाद से युक्त होकर होता है। भले ही प्रथम से लेकर पंचम गुणस्थान तक जिस तीव्रता से जितने कर्मबन्ध होते हैं उतनी तीव्रता से उतने कर्मबन्ध नहीं होते हैं। अप्रमत्त अवस्था सप्तम गुणस्थान से प्रारंभ होती है। इस अवस्था में भी कर्मबन्ध होता है। भले ही उस कर्म की स्थिति या शक्ति कम क्यों न हो। क्योंकि दसवें गुणस्थान तक कषाय का सद्भाव है। कषाय भी अन्तरंग प्रमाद है, परिग्रह है। इसके कारण जो कर्मबन्ध होता है वह भी परिग्रह ही है। परन्तु इस श्लोक में आचार्य श्री ने कहा है कि ''वीतरागी मुनियों को जो कर्मबन्ध है, परिग्रह नहीं है'' यह कथन पूर्ण रूप से बारहवें तेरहवें गुण स्थान में घटित होता है। छठे गुणस्थान में स्थूल रूप से घटित होने पर भी सूक्ष्म रूप से घटित नहीं होता है- परन्तु यहाँ पर भी आचार्य श्री का कथन खण्डित नहीं होता है क्योंकि उन्होंने वीतरागी विशेषण देकर छठे गुणस्थान को स्वीकार न करते हुए किया है। मूर्च्छा रूप प्रमाद के अभाव से बारहवें गुणस्थान तक जो कर्मबन्ध होता है वह अनिच्छापूर्वक पूर्व कर्म के उदय से तज्योग्य योग एवं उपयोग के कारण कर्मबन्ध होता है। अनिच्छापूर्वक ग्रहण को गौण करने पर आचार्य श्री का कथन ठीक बैठता है। दूसरा एक दृष्टिकोण यह है कि जहाँ पर जिस द्रव्य का कोई मालिक होता है तथा लेन-देन का व्यवहार होता है वहाँ बिना दिए द्रव्य को लेना चोरी है। परन्तु कर्म-परमाणु का कोई मालिक नहीं है और संसार में इसका लेनदेन नहीं होता है। इस अपेक्षा से भी आचार्य श्री का कथन ठीक है।

चोरी छोड़ने का उपदेश

असमर्था ये कर्त्तुं निपान-तोयादि-हरण-विनिवृत्तिम्।
तैरपि समस्तमपरं नित्यदत्तं परित्याज्यम्।।106।।

Those also who do not feel strong enough to refrain

from taking well water, etc. should totally abstain from taking anything else which is not given to them.

व्याख्या भावानुवादः- जो कूपजलादि का बिना दिये हुए ग्रहण करने का त्याग के लिये असमर्थ है वह भी अन्य समस्त अदत्त द्रव्यों का त्याग करें। जो लोगो के द्वारा अंगीकृत सर्वजन प्रवृत्ति स्वरूप बिना दिया हुआ द्रव्य का ग्रहण है उसे चोरी कहते हैं ऐसा स्तेय त्यजनीय है। चोरी में हिंसा समावेश हो जाती है। हिंसा का कारण चोरी है।

समीक्षाः- जो प्राकृतिक सर्वजनोपयोगी वस्तु यथा- नदी, झरना आदि का पानी, मिट्टी, वायु, सूर्यकिरण तथा सर्वसाधारण के लिए निर्मित तालाब, बावडी, कुआँ आदि का पानी, रास्ता, धर्मशाला, बगीचा आदि का प्रयोग करना चोरी नहीं है क्योंकि प्राकृतिक वस्तु का कोई मालिक नहीं होता है और सर्वसाधारण के लिये जो वस्तु है उसका मालिक कोई एक व्यक्ति न होकर जनसाधारण ही है।

कूटलेखक्रिया - परप्रयोग से अनुक्त पद्धतिकर्म कूटलेखक्रिया है। किसी के नहीं कहने पर भी किसी दूसरे की प्रेरणा से यह कहना कि 'उसने ऐसा कहा है या ऐसा अनुष्ठान किया है' इस प्रकार वचन के निमित्त (ठगने के लिए) लेख लिखना कूटलेखक्रिया है।

न्यासापहार - हिरण्य आदि निक्षेप में अल्पसंख्या का अनुज्ञा वचन न्यासापहार है। सुवर्ण आदि गहना रखने वाले द्वारा भूल से अल्पशः (कम) माँगने पर जानते हुए भी 'जो तुम माँगते हो ले जाओ' इस प्रकार अनुज्ञा वचन कहना, उसका कम देना न्यासापहार नामक अतिचार कहलाता है।

साकारमन्त्रभेद - प्रयोजन आदि के द्वारा पर के गुप्त अभिप्राय का प्रकाशन साकारमन्त्रभेद है। प्रयोजन, प्रकरण, अंगविकार अथवा भूक्षेप आदि के द्वारा दूसरे के अभिप्राय को जानकर ईर्षावश उसे प्रकट कर देना साकारमन्त्रभेद है। ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचार

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मान प्रतिरूपकव्यवहाराः। (27)

The Partial Transgressions of the third vow अचौर्याणुव्रत are :

1. **स्तेनप्रयोग** – Abetment of theft.
2. **तदाहृतादान** – Receiving stolen property.
3. **विरुद्धराज्यातिक्रम** – Illegal traffic e.g. by selling things at inordinate prices in time of war or to alien enemies, etc.
4. **हीनाधिकमानोन्मान** – False weights and measures.
5. **प्रतिरूपक व्यवहार** – Adulteration.

स्तेनप्रयोग, स्तेनआहृतानदान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान और प्रतिरूपकव्यवहार ये अचौर्य अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

स्तेनप्रयोग – चोर को चौर्य कर्म में स्वयं प्रयुक्त करना स्तेन प्रयोग है। अर्थात् चोरी करने वाले को स्वयं प्रयोग (उपाय) बतलाना व दूसरे के द्वारा उसको चोरी में प्रयुक्त-प्रवृत्त कराना और उस चोरी की वा चोर की मन से प्रशंसा करना, चोरी करना अच्छा मानना, ये सब स्तेनप्रयोग हैं, ऐसा जानना चाहिए।

तदाहृतादान – चोर के द्वारा लाये गये द्रव्य को ग्रहण करना तदाहृतादान है। अपने द्वारा जिसके उपाय नहीं बताये गये है और न जिसकी अनुमोदना ही की है ऐसे चोर के, चोरी करके लाए हुए द्रव्य को खरीदना तदाहृतादान है; ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न – तदाहृतादान में क्या दोष है?

उत्तर– चोरी का माल खरीदने (तदाहृतादान) से, पर-पीड़ा, राजभय आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। इसके विरुद्ध राज्यातिक्रम आदि भी जानना चाहिए। अर्थात् राज्य के विरुद्ध कार्य करने से भी पर-पीड़ा, राजभय आदि अनेक दोष उत्पन्न होते है।

विरुद्धराज्यातिक्रम – उचित न्याय से अधिक भाग को ग्रहण करना अतिक्रम है। उचित न्याय भाग से अधिक भाग दूसरे उपायों से ग्रहण करना अतिक्रम कहलाता है। विरुद्धराज्य (राज्य के नियमों के विरुद्ध) राज्य परिवर्तन के समय अल्प मूल्य वाली वस्तुओं को अधिक मूल्य की बताना। अर्थात् अल्प मूल्य प्राप्त वस्तु को महाकीमत में देने का प्रयत्न करना विरुद्धराज्यातिक्रम है।

हीनाधिकमानोन्मान – क्रय-विक्रय प्रयोग में कूटप्रस्थ, तराजू आदि को हीनाधिक रखना हीनाधिकमानोन्मान है। प्रस्थादि मान कहलाते हैं और तराजू आदि उन्मान। दूसरे को देते समय कम बाँटों (कम वजन वाले बाँटों) से देना और लेते समय अधिक वजन वाले बाँटों का प्रयोग करना हीनाधिकमानोन्मान कहलाता है।

प्रतिरूपक व्यवहार – कृत्रिम सुवर्ण आदि बनाना प्रतिरूपक व्यवहार है। कृत्रिम सुवर्ण आदि के द्वारा वंचनापूर्वक व्यवहार करना अर्थात् कृत्रिम वस्तुओं को असली वस्तु में मिलाकर दूसरों को ठगना प्रतिरूपक व्यवहार कहलाता है। ये अदत्तादान विरति के पाँच अतिचार हैं।

समृद्धि प्राप्त करना

जब हम भयभीत हो जाते हैं तो हम सबकुछ नियंत्रित करना चाहते हैं और तभी हमारी अच्छाई का प्रवाह बंद हो जाता है। जीवन का भरोसा कीजिए। वह हर चीज, जो हमें चाहिए, वह यहाँ उपलब्ध है।

हमारे भीतर की शक्ति हमारे सपनों को साकार करने के लिए तैयार रहती है। वह हमें सबकुछ जल्द-से-जल्द देने के लिए तैयार है। समस्या यह है कि उन्हें प्राप्त करने के लिए हमने स्वयं को रोक रखा है। उन प्राप्तियों के लिए हम खुले ही नहीं हैं। यदि हमें कुछ चाहिए तो हमारी उच्चतर शक्ति ऐसा नहीं कहती, ''मैं इस पर विचार करूँगी।'' वह बड़ी तत्परता से प्रत्युत्तर देते हुए उसे भेज देती है। लेकिन हमें इसके लिए तैयार रहना चाहिए। यदि हम तैयार नहीं रहते तो यह निष्फल इच्छा के स्टोर हाउस में वापस लौट जाती है।

मेरे व्याख्यानों में आने वाले बहुत से लोग अपने हाथ बाँधकर बैठते हैं। मेरा मानना है कि वे कैसे किसी चीज को आत्मसात् करेंगे। अपनी बाँहों को पूरी तरह खुला रखना आश्चर्यजनक प्रतीकात्मक भाव है, ताकि ब्रह्मांड हमारी ओर उन्मुख होकर हमें प्रतिसाद दे सके। कुछ लोगों के लिए बाँहें फैलाने की भाव-मुद्रा काफी भयावह होती है, क्योंकि यदि वे स्वयं को खुला रखते हैं तो उन्हें लगता है कि वे दुःखदायी चीजों को आत्मसात् करेंगे और शायद उन्हें तब तक मिलेगा भी यही, जब

तक वे अपने भीतर के दुःख-दर्द को प्राप्त करने का नकारात्मक विचार मन से बाहर न निकाल दें।

जब हम 'समृद्धि' शब्द का प्रयोग करते हैं तो बहुत से लोग इसका आशय पैसे-रुपए से लगाते हैं। किंतु ऐसी बहुत सी अवधारणाएँ हैं, जो समृद्धि के दायरे में आती हैं; जैसे कि समय, प्रेम, सफलता, आराम, सुंदरता, ज्ञान, संबंध, स्वास्थ्य और बेशक पैसा।

यदि आप हमेशा हड़बड़ी में रहते हैं और जो आप करना चाहते हैं, उसके लिए आपके पास समय नहीं रहता तो आपके पास समय का अभाव है। यदि आप महसूस करते हैं कि सफलता आपकी पहुँच से बाहर है तो यह आपको हासिल भी नहीं होगी। यदि जीवन आपको बोझ और उबाऊ लगता है तो आप हमेशा स्वयं को असहज महसूस करेंगे। यदि आप सोचते हैं कि आप बहुत ज्यादा नहीं जानते और आप इतने मूढ़ हैं कि किसी बात का आपको आभास व अंदाज भी नहीं होता तो आप कभी भी ब्रह्मांड के ज्ञान से जुड़ा महसूस नहीं करेंगे। फिर आपके जीवन में प्रेम को अपनी ओर आकृष्ट करना काफी कठिन होगा।

खूबसूरती क्या है? हमारे आस-पास हर तरफ खूबसूरती है। क्या आपको इस धरती पर विद्यमान सुंदरता की प्रचुरता का एहसास है? या फिर आपको सबकुछ कुरूप, व्यर्थ और गंदा नजर आता है? आपका स्वास्थ्य कैसा है? क्या आप हर समय बीमार रहते हैं? आपको सर्दी आसानी से लग जाती है? क्या आपको बहुत सारी पीड़ा व कष्ट रहता है? अंत में बात पैसे पर आती है। आपमें से बहुत से लोग मुझे बतलाते हैं, आपके जीवन में पर्याप्त पैसा नहीं है। आप स्वयं को क्या रखने देते हैं? या शायद आप महसूस करते हैं कि आपकी निश्चित आमदनी है। इसे किसने निश्चित किया?

उपर्युक्त में कुछ भी प्राप्त करना सरोकार नहीं रखता। लोग प्रायः सोचते हैं, 'मुझे यह चाहिए, वह चाहिए।' किंतु प्रचुरता या समृद्धता से आशय स्वीकृति के लिए स्वयं को तैयार करने से है। आप जो चाहते हैं, जब वह आपको नहीं मिल रहा होता तो किसी स्तर पर आप स्वयं ही उसे स्वीकार करने से रोक रहे होते हैं। यदि हम

जीवन के प्रति कृपणता का भाव अपनाते हैं तो जीवन भी हमारे लिए कृपण हो जाता है। यदि जीवन से हम चोरी करते हैं तो जीवन भी हमसे चोरी कर लेगा।

स्वयं के प्रति ईमानदार होना

'ईमानदारी' एक ऐसा शब्द है, जिसे हम बहुत ज्यादा प्रयोग करते हैं, लेकिन ईमानदार होने का सही अर्थ हम नहीं जान पाते। इसका आशय नैतिकता या बहुत अच्छा होने से नहीं है। ईमानदार होने का आशय पकड़े जाने और जेल जाने से नहीं है। यह हमारे प्रति प्रेम का कृत्य है।

जीवन में ईमानदारी का प्रमुख मूल्य यही है कि जो भी हम देते हैं, वह हमें वापस होगा। कारण और परिणाम का नियम सदा लागू रहता है। यदि हम दूसरे को कम आँकते हैं या कोई राय बनाते हैं तो हमारे प्रति भी राय बन जाती है। यदि हम सदा नाराज रहते हैं तो हम जहाँ कहीं भी जाते हैं, हमें गुस्से का ही सामना करना पड़ता है। जो प्रेम हम स्वयं के प्रति रखते हैं, वह हमें उस प्रेम के साथ लयबद्ध रखता है, जो जीवन हमारे लिए रखता है।

उदाहरण के लिए, फर्ज करो कि अभी ही आपके अपार्टमेंट में सेंधमारी की गई है। क्या तुंरत ही सोच लेते हैं कि आप इस घटना के शिकार हो गए हैं? ''मेरे घर में सेंधमारी हुई है। मेरे साथ ऐसा किसने किया?'' जब ऐसा कुछ होता है तो हम भावनात्मक उथल-पुथल के दौर से गुजरते हैं। किंतु क्या आप यह भी सोचने के लिए रुकते हैं कि आपने इस अनुभव को क्यों और कैसे आकर्षित किया?

हमारे अनुभवों को स्वयं निर्मित करने की जिम्मेदारी स्वीकारना यह सिद्ध नहीं करता कि हममें से कई सारा स्वीकार करते हैं, बल्कि कुछ समय ही स्वीकार करते हैं। हमारे साथ होने वाली किसी घटना के लिए बाहर की किसी भी चीज को दोष देना सबसे सरल होता हैं, किंतु हमारा आध्यात्मिक विकास तभी प्रारंभ होता है, जब हम यही पहचान जाते हैं कि हमारे बाहर की कोई चीज मूल्यवान् नहीं होती, सबकुछ हमारे भीतर से ही आता है।

जब मैं सुनती हूँ कि किसी को लूट लिया गया है या उसे किसी नुकसान का अनुभव हुआ है तो पहला प्रश्न मैं यही पूछती हूँ, ''हाल ही में तुमने किसकी चोरी की

थी?'' यदि उसके चेहरे पर उत्सुकता के भाव नजर आते हैं तो मुझे आभास हो जाता है कि मैंने उसके मर्म को छू लिया।

जब हम कोई ऐसी चीज ले लेते हैं, जो हमारी अपनी नहीं है तो हम उससे ज्यादा कीमत की कोई चीज खो देते हैं। हम किसी से पैसा या कुछ वस्तु ले सकते है और बदले में हमें संबंध खोना पड़ेगा। यदि हम संबंध खो देते हैं तो हम अपनी नौकरी या व्यवसाय खो सकते हैं। यदि किसी कार्यालय से हम स्टांप व कलम उठा लेते हैं तो हमारी ट्रेन छूट सकती है या हम डिनर से चूक सकते हैं। इससे होने वाला नुकसान हमेशा जीवन के किसी महत्वपूर्ण क्षेत्र में दुःख का कारण बनता है।

बड़े दुःख की बात है कि बहुत से लोग बड़ी-बड़ी कंपनियों, डिपार्टमेंटल स्टोर, रेस्टोरेंट या होटलों से इस तर्क के साथ चोरी कर लेते हैं कि इतने बड़े व्यवसायों को कोई फर्क नहीं पड़ सकता। ऐसे तर्क कोई औचित्य नहीं रखते। कारण और परिणाम का नियम हम सभी पर प्रभावी बना रहता है। यदि छीनते या चोरी करते हैं तो हमें सोचना पड़ जाता है, यदि हम देते हैं तो हमें प्राप्त होता है। इससे अलग कुछ भी नहीं हो सकता।

यदि हमारे जीवन में नुकसान-ही-नुकसान है या गड़बड़-ही-गड़बड़ बनी रहती है तो आपको अपनी प्राप्तियों के माध्यम या तरीकों की जाँच करनी पड़ेगी। आत्मसम्मान व समय छीन लेते हैं। जब-जब हम किसी व्यक्ति को अपराध-बोध महसूस कराते हैं, तब-तब हम उससे उसकी आत्म-क्षमता व योग्यता का हरण कर लेते हैं। सही अर्थों में पूरी तरह ईमानदार होने में बहुत अधिक आत्म-परीक्षण और स्व-चेतना की जरूरत होती है।

जब हम कोई ऐसी चीज ले लेते हैं, जो हमारी नहीं है तो उसके परिणामस्वरूप हम ब्रह्मांड को यह आदेश दे रहे हैं कि हम स्वयं को कमाने लायक नहीं समझते। हम बहुत अच्छे नहीं हैं। हम चाहते हैं कि हमारा कुछ चोरी हो जाए। हमारे ये सभी विश्वास हमारे चारों ओर दीवार खड़ी कर देते हैं, जो हमें जीवन की प्रचुरता और खुशी महसूस नहीं होने देती।

ये नकारात्मक विश्वास हमारे अस्तित्व का सत्य नहीं हैं। हम वैभवशाली हैं और जो भी सर्वोत्तम है, उसके योग्य हैं। धरती में समस्त चीजें परिपूर्णता से उपलब्ध हैं। हमारी अच्छाइयाँ हमेशा चेतना की यथार्थता से प्राप्त होती हैं। चेतन में हम जो भी कार्य करते हैं, वह हमेशा ही जो हम कहते हैं, सोचते हैं और करते हैं, उन्हें परिष्कृत करता है। जब हम स्पष्ट रूप से समझ जाते हैं कि हमारे विचार ही हमारी वास्तविकता निर्मित करते हैं तो हम विचारों का प्रयोग स्वयं के बदलाव के लिए करते हैं। स्वयं के प्रति प्रेम के कारण ही हम ईमानदार होने का चुनाव करते हैं। ईमानदारी हमारे जीवन को ज्यदा बड़े आराम से सहजता के साथ चलाने में मदद करती है। यदि आप किसी दुकान में जाते हैं और वहाँ कुछ भी खरीदते हैं, उसका भुगतान दुकानदार आपसे लेना भूल जाता है तो यह आपकी आध्यात्मिक जिम्मेदारी है कि आप उसे उसके बारे में बतलाएँ। यदि आप जागरूक हैं तो आप उनका ध्यान इस ओर दिलाते हैं और यदि आपको भुगतान न किए होने का ध्यान नहीं है या घर पहुँचकर बाद में आप इसे महसूस करते हैं तो बात अलग है।

यदि बेईमानी से हमारे जीवन में उथल-पुथल उत्पन्न होती है तो जरा सोचिए कि प्रेम और ईमानदारी क्या सृजन कर सकते हैं। हमारे जीवन में जो भी अच्छाइयाँ और अहं आश्चर्यजनक चीजें हैं, वे भी हमने ही निर्मित की हैं। जब हम ईमानदारी व निःशर्त प्रेम से स्वयं के भीतर झाँकते हैं तो हमें अपनी शक्ति के बारे में बहुत कुछ ज्ञात होता है। जो हम स्वयं की चेतना से निर्मित कर सकते हैं, उसका प्रभाव हमारे द्वारा चोरी की हुई या गलत माध्यमों से प्राप्त किए गए पैसे की किसी भी बड़ी रकम की अपेक्षा अधिक होगा। (जीत का जश्न)

एक साल में भ्रष्टाचार बढ़ा, करप्शन इंडेक्स में भारत 81वें नंबर पर आया

दो अंक पिछड़ा, पाक-श्रीलंका हमसे भ्रष्ट

नई दिल्ली। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल ने वर्ष 2017 के लिए दुनियाभर के देशों

का करप्शन इंडेक्स जारी कर दिया है। भ्रष्टाचार के मामले में भारत दो पायदान फिसलकर 183 देशों में 81वें स्थान पर जा पहुंचा है। 2016 में भारत 79वें नंबर पर था। रैंकिंग के लिए ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल ने 0 (सबसे ज्यादा भ्रष्ट) से 100 अंक (भ्रष्टाचार मुक्त) के पैमान पर 183 देशों में सरकारी संगठनों और कंपनियों में भ्रष्टाचार का आकलन किया है। भारत को इस बार भी 2016 के बराबर 40 अंक मिले हैं। जिस देश का जितना ज्यादा स्कोर होता है वह उतना ही कम भ्रष्ट माना जाता है। बर्लिन स्थित यह भ्रष्टाचार निरोधी संगठन विश्व बैंक, वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम और अन्य संगठनों के आंकड़ों के आधार पर दुनिया भर के सरकारी प्रतिष्ठानों में भ्रष्टाचार का आकलन करता है।

भ्रष्टाचार और प्रेस की स्वतंत्रता के मामले में भारत सबसे ज्यादा कमजोर देशों में शुमार :

ट्रांसपेरेंसी ने भारत को एशिया-प्रशांत क्षेत्र में भ्रष्टाचार और प्रेस की स्वतंत्रता के लिहाज से सबसे कमजोर देशों में शामिल किया है। संगठन ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि फिलीपींस, भारत और मालदीव जैसे देशों में न केवल भ्रष्टाचार बल्कि पत्रकारों की हत्या के मामले भी ज्यादा हैं। रिपोर्ट के मुताबिक बीते छह साल में 10 पत्रकारों में से नौ उन देशों में मारे गए हैं, जिन्हें करप्शन इंडेक्स में 45 या इससे कम अंक मिले हैं। ऐसे देशों की संख्या दो तिहाई से ज्यादा है।

न्यूजीलैण्ड सबसे कम, सोमालिया सबसे भ्रष्ट

सबसे कम भ्रष्ट 3 देश			सबसे भ्रष्ट देश		
रैंक	देश	स्कोर	रैंक	देश	स्कोर
1.	न्यूजीलैण्ड	89	183.	सोमालिया	9
2.	डेनमार्क	88	182.	द. सुडान	12
3.	फिनलैंड	85	181.	सीरिया	14

अपराधियों के प्रति यह दोहरा नजरिया क्यों?

नीरव मोदी से पहले ललित मोदी और विजय माल्या जैसे महाघोटालेबाजों का गिरफ्तारी से ठीक पहले देश छोड़कर विदेश भाग जाना ताकतवर एवं कमजोर तबकों के प्रति व्यवस्था के भेदभाव की ओर संकेत करता है। नेशनल क्राईम रिकॉर्ड

ब्यूरों द्वारा जारी वर्ष 2012 के आंकड़ों के अनुसार देश के कुल सजायाफ्ता कैदियों में 82.73 फीसदी पिछड़े वर्गों से सम्बंधित पाये गये। कमोबेश यही दशा गत वर्षों में रही और सम्भावना है कि ऐसी ही स्थिति आने वाले सालों की होगी। आंकड़ों का यह परिदृश्य इसलिए है कि इन तबकों के पास वह ताकत नहीं है जिसके बलबूते पर इनमें से आने वाले आरोपी अदालतों में अपना बचाव ठीक ढ़ंग से कर सकें। न्याय प्रणाली पर हुए एक शोध के अनुसार भारतीय व्यवस्था कुलीन आधारित है। सुविधाविहीन वर्ग के व्यक्ति झूठे-सच्चे अपराधों की एवज में कैदी के रूप में सजा काटने को मजबूर हैं। सजा पूरी होने पर कारागृह से मुक्त तो हो जाते हैं। अब उससे भी बड़ा सवाल यह उठता है कि ऐसे दोयम दर्जे के कैदियों को समाज पुनः अपने में शामिल नहीं करता, सामर्थ्यवान के लिए यह किसी झंझट का विषय नहीं। आयकर चोरी अथवा मिलावटी खाद्य सामग्री के अपराधी का नाम मीडिया में नहीं आता। हम सिर्फ यह पढ़-देख सकते हैं कि एक व्यापारी के यहां छापा पड़ा और इतना घोटाला पकड़ा गया। उधर किसी छोटी-मोटी चोरी के अपराधी को जब पुलिस पकड़ती है तो उसके पूरे खानदान का नाम मीडिया के मार्फत सामने आ जाता है। बदनाम होने के बावजूद उनकी बदनामी नहीं और यहां थोड़ा बहुत और वह भी विवशता में कर दिया तो उसके कृत्य से हजार गुणा बदनामी। यहां तक सुना जाता है कि जिसके यहां आयकर छापा पड़ता है, समाज में उसका स्तर ऊंचा मान लिया जाता है। यह कहकर कि अरे भई ए पैसे वाला है तभी तो छापा पड़ा। उनका तात्पर्य है कि हर किसी ऐरे-गैरे के यहां छापा थोड़े ही पड़ जाता है। अर्थात् आपराधिक कृत्य करने के पश्चात् भी वह बंदा समाज में सही सलामत रहता है, यह क्या खेल है? और दुसरी तरफ स्थिति भिन्न होती है जो सीधा ताल्लुक रखती है दोयम दर्जे के कैदियों के पुनर्वास के मुद्दे से। यहां कहने का तात्पर्य यह नहीं कि उनका अपराध, अपराध की श्रेणी में नहीं आता सवाल यह है कि व्यवस्था के स्तर पर किया जाने वाला यह भेदभावयुक्त व्यवहार क्यों? किसी व्यक्ति ने अपराध कर भी दिया तो उसके लिए भविष्य में सजा एवं उसकी समाप्ति पर ऐसी व्यवस्था करो जिससे वह पुनः अपराध जगत् से कोई वास्ता नहीं रख सके।

इंडिया इक्लिटी रिपोर्ट 2018

ज्यादा कमाई वालों पर ज्यादा टैक्स लगे, संपत्ति कर दोबारा लागू हो और विरासत में मिलने वाली संपत्ति पर टैक्स लगे

देश के 101 अरबपतियों की संपत्ति जीडीपी के 15% के बराबर

ऑक्सफैम इंडिया की रिपोर्ट, 5 साल पहले इनकी नेटवर्थ जीडीपी के 10% के बराबर थी

भारत में असमानता तीन दशक से लगातार बढ़ रही है। इसका स्तर इतना ज्यादा हो गया है कि देश के अरबपतियों की संपत्ति जीडीपी के 15% तक पहुंच गई है। पांच साल पहले उनके पास जीडीपी का 10% के बराबर संपत्ति थी। ऑक्सफैम इंडिया ने गुरुवार को जारी रिपोर्ट में यह जानकारी दी है। अमीरों की अमीरी और गरीबों की गरीबी बढ़ने के लिए इसने सरकारी नीतियों को जिम्मेदार ठहराया है।

भारत की जीडीपी 2.6 लाख करोड़ डॉलर यानी करीब 168 लाख करोड़ रुपए है। 2017 में यहां अरबपतियों की संख्या (6,500 करोड़ से ज्यादा नेटवर्थ वाले) 101 थी। 'इंडिया इक्लिटी रिपोर्ट 2018' में कहा गया है कि भारत दुनिया के सबसे असमान देशों में है। यहां असमानता का पैमाना कमाई, खर्च और संपत्ति को रखा गया है।

रपोर्ट लिखने वाले प्रो. हिमांशु के अनुसार चिंता की बात यह है कि अमीर-गरीब का अंतर ऐसे समाज में बढ़ रहा है जो पहले ही धर्म, जाति और क्षेत्र के आधार पर बंटा हुआ है। इसे रोकने का एकमात्र तरीका है कि ज्यादा कमाई वालों पर ज्यादा टैक्स लगाया जाए। संपत्ति कर दोबारा लागू हो और विरासत में मिलने वाली संपत्ति पर टैक्स लगे। यह रकम गरीबों की सेहत, शिक्षा और पोषण पर खर्च की जाए।करीब एक महीने पहले दावोस में वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम की बैठक शुरू होने से पहले ऑक्सफैम ने एक रिपोर्ट जारी की थी। इसमें कहा गया था कि 2017 में भारत में जो संपत्ति पैदा हुई उसका 73% हिस्सा एक फीसदी बड़े अमीरो को मिला। भारत की इकोनॉमी तेजी से बढ़ रही है। इसलिए जिन मुट्ठी भर लोगों के हाथों में संपत्ति है, उनकी अमीरी में भी तेजी से इजाफा हो रहा है।

2017 में भारत के 67 करोड़ गरीबों की संपत्ति में सिर्फ 1% बढ़ोतरी हुई

उदारीकरण से श्रम के बजाय पूंजी को फायदा हुआ

1991 में शुरू हुआ आर्थिक उदारीकरण असमानता की प्रमुख वजह है। सरकारों ने ऐसी नीतियां बनाई जिनसे श्रम के बजाय पूंजी को फायदा हुआ। कुशल श्रमिकों को तरजीह दी गई।

1980 के दशक तक भारत में अमीर-गरीब का अंतर लगभग स्थिर था। लेकिन 1991 के बाद यह अंतर बढ़ना शुरू हुआ और 2017 में अब तक के चरम पर पहुंच गया।

भारत में : 20.9 लाख करोड़ रु. बढ़ी 1% अमीरों की संपत्ति

2017 में देश में जो संपत्ति पैदा हुई उसका 73% हिस्सा एक फीसदी बड़े अमीरों को मिला।

20.9 लाख करोड़ का इजाफा 1% अमीरों की संपत्ति में, 67 करोड़ गरीबों की संपत्ति 1% बढ़ी।

दुनिया में : सिर्फ 8 लोगों के पास आधे गरीबों के बराबर संपत्ति

2015 से दुनिया के सबसे अमीर 1% लोगों के पास बाकी लोगों की तुलना में ज्यादा संपत्ति है।

सिर्फ 8 लोगों की संपत्ति सबसे गरीब आधे लोगों के बराबर है।

20 वर्षों में 500 लोग अपने वारिसों को 136 लाख करोड़ रुपए की संपत्ति विरासत में देंगे। यह रकम भारत की मौजुदा जीडीपी से थोड़ा ही कम है।

1988 से 2011 के दौरान सबसे गरीब 10% लोगों की संपत्ति 200 रुपए से भी कम बढ़ी, जबकि शीर्ष 1% की कमाई में 182 गुना इजाफा हुआ।

दिल से गरीब क्यों हैं हमारे धनकुबेर!

पिछले दिनों ऑक्सफेम ने एक रिपोर्ट जारी की जिसमें बताया गया है कि 1 फीसदी धनाढ्य भारत के 73 फीसदी धन के मालिक हैं। अरबपतियों की संख्या तेजी से बढ़ी है। वर्ष 2010 से 13 प्रतिशत की रफ्तार से बढ़ी है जबकि मजदूरी केवल 2 प्रतिशत भारतीय धनाढ्यों के धन की वृद्धि 20.9 लाख करोड़ रुपए है जो भारत सरकार के बजट के बराबर है। दूसरी अप्रिय और दुःख की बात है कि भारत

की उठती हुई आर्थिक व्यवस्था जरूर है पर समावेशी विकास सूचकांक में हम पाकिस्तान 47वें और चीन का स्थान 26वां है। इस सूचकांक में रहन-सहन का स्तर, पर्यावरण की दृष्टि से टिकाऊपन और भविष्य की पीढ़ियों को और कर्ज के बोझ से संरक्षण आदि पहलुओं को शामिल किया जाता है। समावेशी विकास सूचकांक में सबसे आगे लिथुआनिया, हंगरी, अजरबैजान, लात्विया और पोलैंड है। हमारे देश श्रीलंका 40वें स्थान पर और बांग्लादेश 24वें स्थान पर काबिज है। दुनिया में कई अन्य मायनों में जो देश पिछड़े माने जाते हैं, वे भी भारत से आगे हैं। इनमें माली, युगांडा, रवांडा, बुरुडी, घाना, युक्रेन, सर्बिया, फिलीपीन्स, इंडोनेशिया, ईरान, मैक्सिको, थाईलैंड और मलेशिया आदि है। अगर घरेलु सकल उत्पाद, वस्तु व सेवा उत्पादन का सूचकांक है तो समावेशी विकास में आम नागरिक की भलाई और भविष्य की चिंता करती है। गरीब और अमीर अन्य देशों में भी हैं लेकिन हमारे देश के जैसे अमीर अन्य देशों के अमीरों से कुछ भिन्न हैं। दूसरे देशों के अमीरों और कॉर्पोरेट घरानों की भूमिका उनके देशों के विकास में रही है जबकि हमारे यहाँ ऐसा नहीं है। उद्योगपतियों के विकास का उद्देश्य देश और समाज का कल्याणकारी नहीं होते हुए भी इसका कुछ लाभ तो देश को मिलता है लेकिन उनके इरादे की वजह से नहीं। यूरोप और अमरीका के उद्योगपतियों ने अनुसंधान पर धन लगाया और नई-नई तकनीक का विकास हुआ। हमारे यहां अनुसंधान की जिम्मेदारी सरकारी संस्थओं पर डाल दी गई है। अन्यथा काम तो बाहर की आयातित तकनीक से ही चल रहा है। हार्वर्ड, ऑक्सफोर्ड और येल आदि विश्वविद्यालय निजी घरानों के समर्थन से चले जबकि भारत में यह जिम्मेदारी सरकार के ऊपर ही लाद दी गई है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि विकसित देशों में दूसरी पीढी के अर्थात् बेटा-बेटी मां-बाप पर, भाई बहन पर और बहन भाई पर, दामाद सास-ससुर पर आश्रित नहीं होते। बड़े से बड़े उद्योगपतियों के बच्चे जैसे ही 16-17 साल के होते है, वे अपनी निजी आय से जीवनयापन शुरू कर देते है। हमारे यहां खुद के बच्चे ही नहीं बल्कि नाती-पोते का भी पूरा बंदोबस्त करने में लगे रहते है। इसके अलावा अगले जन्म के लिए भी कमाई करनी पढ़ती है। बहुत सारा धन-सम्पत्ति पूजा-पाठ करे या मंदिर के लिए लगाई जाती है। कोई पूजा-पाठ करे या मंदिर बनाए, इस सब से किसी का क्या सरोकार हो

सकता है? लेकिन, यह सब सादगी से भी तो हो सकता है ताकि फिजूलखर्ची न हो। इस धन को स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए भी लगाया जा सकता है। कुछ लोग तो ऐसे है जो कमाते ही बेटी की शादी के लिए है। महंगी और खर्चीली शादी में जो पैसा लगता है, वह धन अर्थव्यवस्था को मजबूत नहीं करता बल्कि यह खर्च एक बार का होता है। ऐसी शादियां होती हैं, इसे निवेश नहीं कह सकते। इससे भविष्य में कोई फायदा नही होता है। अगर यही पैसा शिक्षा, स्वास्थ्य एवं व्यापार में लगाया जाए तो वह कई गुना हो जाएगा और रोजगार का सृजन भी होगा। कई भारतीय धनाढ्य कर वंचना के लिए बहुत कुछ करते हैं। दो तरह के हिसाब रखते हैं कच्चा और पक्का। धन अधिक हो जाए तो विदेश में जमा कर देते हैं और संपत्ति अर्जित करते हैं। एक घर अगर भारत में है तो कोशिश करेंगे कि दुबई में या हांगकांग, लन्दन या अन्य शहरों में हो। चाहे इन घरों की उपयोगिता ही न हो। प्रायः दान उन्हीं संस्थाओं के लिए करते हैं जिससे कुछ फायदा दिखता हो। शायद ही ऐसा कॉर्पोरेट घराना हो जिसने तकनीकी अनुसंधान करके पैसा कमाया हो। अगर बिल गेट्स धनवान हुए तो विन्डो सॉफ्टवेयर बनाकर। मार्क जुकरबर्ग ने फेसबुक बनाया और फिर पैसा कमाया। ऐसे लोग अपने जीवन में ही सब धन खत्म या दान देकर संसार से विदा होते हैं। वे धन जरूर कमाते हैं लेकिन केवल निजी स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि वे समावेशी अर्थव्यवस्था का निर्माण करते हैं। हाल में वर्ल्ड इकॉनोमिक फोरम ने जो रिपोर्ट जारी की उसमें भारत अपने पड़ोसी देशों बांग्लादेश और पाकिस्तान से भी पीछे है। हमारे समाज में दिनभर प्रवचन और प्रचार चलता रहता है कि धन का लालच नहीं करना चाहिए लेकिन होता तो उसके विपरीत ही है। केवल सरकार की ही जिम्मेदारी नहीं होती कि वह रोजगार दे और लोगों की जिंदगी की अन्य जरूरते पूरी करे बल्कि धनाढ्यों का भी तो कुछ कर्तव्य है। वे ऐसा नहीं करते तो यह क्रूरता और स्वार्थीपन है।

बदलाव जो शिक्षा, सेहत की तस्वीर बदल देगा

संदर्भ... डेढ़ दशक के दौरान भारत में निजी स्तर पर दान में छह गुना बढ़ोंतरी ने देश के धनी वर्ग के बारे में कई धारणाएं तोड़ी

वर्ष 1960 में हुई दो घटनाओं का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। जब मैं

17 वर्ष का था तो मुझे अमरीका की हार्वर्ड यूनिवर्सिटी से अंडरग्रेजुएट स्कॉलरशिप मिली। मैं वहां सिर्फ इसलिए जा पाया, क्योंकि एक अज्ञात अमेरिकी परिवार ने स्कॉलरशिप का पैसा दिया। मुझे कभी उस परिवार का पता नहीं चला। मैं जब विदेश में पढ़ रहा था तो मुझे शर्म आती थी, क्योंकि अखबार भारत को 'बास्केट केस' कहते थे। सूखे के वर्षों में अमेरीका से अनाज से लदा जहाज 'हर दस मिनट' में भारतीय बंदरगाह पर पहुंचता था ताकि भारतीयों को भूखों मरने से बचाया जा सके। लेकिन, जल्द ही परिस्थिति दर्शनीय रूप से बदल गई। अमेरिकी वैज्ञानिक नारमन बोरलॉग ने मैक्सिको के रिसर्च सेंटर में गेहूं की एक चमत्कारी संकर किस्म खोजने में भूमिका निभाई। इस रिसर्च सेंटर में रॉकफेलर फाउंडेशन ने फंडिंग की थी। इस खोज ने भारत में 'हरित क्रांति' लाने में मदद की। इसका श्रेय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के कृषि मंत्री सी. सुब्रह्मण्यम को भी है, जिन्होंने तत्काल दो हवाई जहाज भरकर इस चमत्कारी बीज का ऑर्डर दिया और उन्हें पंजाब में बोया गया।

इन दो घटनाओं को जो जोड़ता है वह है निजी स्तर पर अमेरिकी परोपकार की परम्परा। व्यक्तिगत स्तर पर एक अज्ञात दानदाता ने यह संभव बनाया कि मैं दुनिया की श्रेष्ठतम शिक्षा हासिल करूं। राष्ट्रीय स्तर पर रॉकफेलर की परोपकारिता ने ऐसी वैज्ञानिक सफलता दिलाई, जिसने भारत को समृद्धि दिलाई। इन दो कहानियों को याद करने का मेरा उद्देश्य यह बताना है कि ऐसा ही कुछ इन दिनों भारत में हो रहा है- परोपकार के क्षेत्र में मौन क्रांति। प्रतिष्ठित बैन/दसरा इंडिया फिलैंथ्रॉपी रिपोर्ट 2017 के मुताबिक पिछले पांच वर्षों में विदेशी दान या कॉर्पोरेट दान अथवा सरकारी कल्याण कार्यक्रमों में फंडिंग की तुलना में व्यक्तिगत स्तर पर निजी दान अधिक तेजी से बढ़ा है। यह 2001 में 6000 करोड़ से छह गुना बढ़कर 2016 में 36000 करोड़ रुपए हो गया। सरकार अब भी कल्याणकारी कार्यक्रमों पर 1,50,000 करोड़ रुपए खर्च करके सबसे अधिक योगदान दे रही है लेकिन यदि यही ट्रेंड जारी रहता है तो निजी स्तर पर होने वाली परोपकारिता भविष्य में शिक्षा, स्वास्थ्य में सुधार लाने और गरीबी मिटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

इससे यह धारणा खारिज होती है कि धनी भारतीय व्यवसायी चैरिटेबल नहीं

हैं- जब वे पैसे देते भी हैं तो मंदिरों में ईश्वर को खुश करने के लिए। हमें यह याद रखना होगा कि 1991 में 97 फीसदी टैक्स रेट वाला 'लाइसेंस राज' जाने के बाद भारतीयों ने गंभीरता से संपदा इकट्ठा करना शुरू किया। आमतौर पर पहली पीढ़ी पैसा कमाती है और उसका दिखावा करती है जैसे लक्ष्मी मित्तल ने फ्रांस में अपनी बेटी की मशहूर शादी के अवसर पर किया। दूसरी पीढ़ी को पैसे की नहीं, सत्ता की कामना होती है, इसीलिए केनेडी और रॉकफेलर राजनीति में आए। पैसे तथा सत्ता में जन्मी तीसरी पीढ़ी सम्मान चाहती है और खुद को परोपकार तथा कलाओं के प्रति समर्पित कर देती है। 19वीं और 20वीं सदी की शुरुआत में अमेरिका के 'रॉबर बैरान' (अनैतिक व एकाधिकार वादी तरीकों से खूब पैसा इकट्ठा करने वाले और जबर्दस्त राजनीतिक प्रभाव वाले बिजनेसमैन) में भी स्टील किंग एंड्रयू कारनेगी ने अपनी 90 फीसदी संपत्ति अमेरिकी शहरों में सार्वजनिक लाइब्रेरी स्थापित करने के लिए दे दी। उनका यह कथन मशहूर है, 'जो धनी होकर मरा है, वह अपमानित होकर मरता है।'

जिस तरह ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में संपदा उत्पन्न करने का चक्र छोटा हो गया है, चक फीनी से प्रेरित बिल गेट्स ने तीन पीढ़ियों का चक्र तोड़ दिया और अपने ही जीवन में पैसा दे दिया। वारेन बफे ने भी यही किया। गेट्स अपने 'गिविंग प्लेज' (देने के संकल्प) से दुनियाभर के युवा आंत्रप्रेन्योर को अपने ही जीवनकाल में आधी संपत्ति देने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। उन्होंने अजीम प्रेमजी, नंदन नीलेकणि, शिव नादर, सुनील मित्तल, आशीष धवन और कई उदार लोगों को प्रेरित किया है। धवन के मामले में इसका नतीजा विश्वस्तरीय लिबरल आर्ट्स यूनिवर्सिटी की रचना में हुआ, जिसके उनकी जैसी सोच वाले कई संस्थापक हैं। यदि आपको अशोका में प्रवेश मिल जाए तो आपको किसी अज्ञात दानदाता से स्कॉलरशिप मिलना तय है। नादर भी विश्वस्तरीय संग्रहालय बना रहे हैं।

पंचतंत्र की शुरुआत में ही एक बहुत अच्छी कहानी है जो बताती है कि एक अधिक उम्र का व्यापारी युवा व्यापारी को सलाह देता है कि सफल जीवन के लिए चार हुनर चाहिए। एक, वह कहता है तुम्हें पैसा कमाना सीखना चाहिए। दो फिर इसे संरक्षित रखना सीखना होगा। इसे कालीन के नीचे छिपाइए मत बल्कि इस पर ब्याज

कमाकर इसे बढ़ाइए। तीन, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इसे कैसे खर्च करें- कंजूस न बनें तो शाहखर्च होने से भी बचें आखिर में, इसे देना सीखो।

बहुत धनी लोगों की भी अपनी समस्या होती है। वे अपने बच्चों को इतना पैसा देना चाहते हैं कि वे उनमें जिस भी चीज के लिए जुनून हो, उसे वे सीख सकें पर वे इतना नहीं देना चाहते कि वे कुछ भी करें ही नहीं। अमेरिका के सबसे धनी परिवारों में से एक के बेटे जॉन डी रॉकफेलर ने कहा है, मुझे शुरुआत से ही काम करने, पैसा बचाने और दान देने का प्रशिक्षण मिला। भारत मानव विकास सूचकांक पर 130वें स्थान पर होने से धनी भारतीय गरीबों की जिंदगी में सुधार लाने के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। वे कभी सरकार की जगह नहीं ले सकते। किंतु बुद्धिमत्तापूर्वक श्रेष्ठतम एनजीओ पैसे का ठीक से उपयोग कर, वे बहुत बड़ा फर्क ला सकते हैं। कई कंपनियां मूल्यवान काम करने में सीएसआर लॉ (जिसके तहत कंपनी को 50 फीसदी फंड डेवलपमेंट चैरिटी को देना होता है) का इस्तेमाल कर रही हैं। इसमें सबसे अच्छा यह है कि वे अपने कर्मचारियों को हफ्ते के कुछ घंटे एनजीओ को कोई कौशल सिखाने के लिए देने को कहती हैं ताकि उनका चैरिटेबल योगदान अधिक, असरदार हो सकें। आप इसे कुछ भी कहें- परोपकार, चैरिटी, स्वेच्छा दान लेकिन भारतीय इससे बहुत कुछ सीख सकते हैं, जो वाकई अमेरिकी परम्परा का मुकुट-मणि है।

बैंकों की पूंजी डकारते रसूखदार, नियम ताक पर

रु 22,743 करोड़ की धोखाधड़ी सरकारी बैंकों में 2012-16 के दौरान

रु 11,400 करोड़ का है हालिया पीएनबी का घोटाला ...

बैंको का घोषित घाटा

2,416.37	एसबीआई
2,341.20	बीओबी
1,985.22	ओबीसी
1,664.22	सेंट्रल बैंक

1,524.31	आईडीबीआई
1,263.79	इलाहाबाद
1,249.85	यूनियन
1,240.49	कॉरपोरेशन
1,016.43	यूको
971.17	आईओबी
869.77	सिंडिकेट
637.53	यूनाइटेड
596.70	बीओएम
532.02	आन्ध्रा बैंक
380.07	देना बैंक

(राशि करोड़ रुपए में)

आंकड़े दिसंबर 2017 की अंतिम तिमाही के अनुसार...

एनपीए ऐसा मर्ज है, जो अनदेखी से और बढ़ता है। फिर बेकाबू होकर समूचे सिस्टम को निगल जाता है। - **रघुराम राजन, पूर्व गवर्नर, आरबीआई**

पिछले 5 वर्ष के दौरान 3 बड़े बैंकों में धोखाधड़ी

पीएनबी	बीओबी	बीओआई
रु 6,562	रु 4,473	रु 4,050
389 केस	388 केस	231 केस

पीएनबी का हालिया घोटाला शामिल नहीं (राशि करोड़ रुपए में)

10 लाख से कम की लेनदेन बैंक धोखाधड़ी (2017 में)

455 मामले : आईसीआईसीआई
429 मामले : स्टेट बैंक ऑफ इंडिया
244 मामले : स्टैंडर्ड चार्टेड बैंक
237 मामले : एचडीएफसी बैंक

हाल के बड़े डूबत कर्ज

जून 2017 तक देश में 7 लाख 33 हजार करोड़ रुपए एनपीए घोषित हो चुका है।

भूषण स्टील्स- 44,478 करोड़ रुपए माफ...

कंपनी के बिजनेस के लिए लोन लिया और अब ये कर्ज बट्टे खाते में डाल दिया गया है। नेशनल कंपनी लॉ ट्रिब्यूनल में लोन माफ करने की अर्जी दे दी लेकिन लोन नहीं दे पाएंगे।

लैंको इंफ्राटेक- 44,364 करोड़ रु ले दिवालिया

इस कंपनी की स्थापना एलपी राजगोपाल ने की थी। कंपनी का विस्तार करने के लिए बैंकों से लोन लिया और अब खुद को दिवालिया घोषित करने की बात कह रहे हैं।

रुइया बंधु- 37,284 करोड़ का चुकारा नहीं

स्टील मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी एसआर स्टील लिमिटेड के रुइया बंधु ने अपने उद्योग को बढ़ाने के लिए बैंको से कर्ज लिया जिसे देने में अब असमर्थता जता चुके है।

कामकाज में दखल ...

सहकारी बैंको में सियासत ने लगाई सेंध ...

भारत में सहकारिता की बुनियाद 1904 में इसलिए रखी थी कि किसानों को प्रगति की राह पर लाया जाए। लेकिन भ्रष्टाचारियों और बिचौलियों के कारण सहकारी बैंक किसानों से नहीं जुड़ सके। सहकारी बैंको पर राजनीति हावी हो गई और नेता अपनी राजनीति चमकाने के लिए इनका इस्तेमाल करने लगे। सहकारी समितियों को लेकर केन्द्र या राज्य सरकार भी कभी गंभीर नहीं रही। समितियां बन गई तो उसकी मॉनिटरिंग के लिए कोई ठोस नीति नहीं बनी। देशभर में जिला सहकारी बैंकों की संख्या 3571 और इनके सदस्य 25 करोड़ से अधिक है। अधिकांश जिला सहकारी बैंक सीबीएस यानी कंप्यूट्रीकृत बैंक सिस्टम न होने की वजह से इनकी कार्यप्रणाली अपारदर्शी है। साथ ही इनके कामकाज में स्थानीय नेताओं का दखल भी रहता है। सहकारी बैंको की खस्ता हालत का बड़ा कारण इन पर नेताओं का कब्जा होना है। इससे सहकारी क्षेत्र के कई बैंक कर्ज के तले दबे है या फिर घोटालो की जांच से जूझ रहे हैं।

मैकएफी और सीएसआईएस की रिपोर्ट :

इंटरनेट पर फ्रॉड से 2014 में नुकसान 29 लाख करोड़ था, बीते साल इसमें 33 फीसदी इजाफा हुआ

साइबर क्राइम से 2017 में दुनिया को 39 लाख करोड़ रु. का नुकसान

दुनिया में साइबर अपराध बढ़ता जा रहा है। इसके कारण दुनिया में बीते साल 39 लाख करोड़ रु का नुकसान हुआ। यह दावा ग्लोबल साइबर सिक्योरिटी फर्म मैकएफी और सेंटर फॉर स्ट्रेटजिक एंड इंटरनेशनल स्टडीज (सीएसआईएस) ने इकोनॉमिक इंपैक्ट ऑफ साइबरक्राइम नो स्लोइंग डाउन नामक रिपोर्ट में किया है। रिपोर्ट के अनुसार साइबर अपराध के मामले में रूस सबसे आगे है। उसके हैकर्स खासकर पश्चिमी देशों को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाते है। साइबर अपराध में रूस के बाद उत्तरकोरिया का नंबर है। वह साइबर अपराध से प्राप्त रकम और क्रिप्टोकरेंसी यानी ऑनलाइन वर्चुअल मुद्रा का शासन को सशक्त बनाने में इस्तेमाल करता है। 2017 में दुनियाभर में हुई वन्नाक्राई रैनसमवेयर साइबर हमले में अमेरिका की जांच मे उत्तर कोरिया को ही आरोपी ठहराया गया। रूस और उत्तर कोरिया के अलावा साइबर अपराध करने वाले देशों में ब्राजील, भारत और वियतनाम का नाम भी है। वही चीन साइबर जासूसी में अव्वल है।

जो हानि हुई वो 80 देशों की जीडीपी के बराबर

वैश्विक अर्थव्यवस्था में साइबर अपराध से 2017 में जो नुकसान हुआ, वो 80 देशों की जीडीपी के बराबर है। इन देशों में मालदीव, ग्रीनलैंड, भूटान, अफगानिस्तान, जिम्बॉब्वे समेत कई अफ्रीकी देश शामिल है।

150 देशों के कंप्यूटर लॉक, बिटकॉइन में फिरौती मांगी

पिछले साल मई में साइबर अपराधियों ने एक साथ कई देशों के कंम्पयूटरों को हैक करके रैनसमवेयर सॉफ्टवेयरर के जरिए उनको लॉक कर दिया था। उसे खोलने के एवज में फिरौती बिटकॉइन के रूप में मांगी गई थी। इस समय 150 देशों के दो लाख से भी अधिक कंम्प्यूटर इसकी चपेट में आए थे।

भारत में 2017 में 53 हजार साइबर हमले हुए

बीते साल भारत में 53,000 साइबर हमले हुए। इनमें से 40 फीसदी हमलो का शिकार फाइनेंस सेक्टर हुआ। इसी कारण भारत को रिपोर्ट में वेब एप्लिकेशन अटैक के निशाने पर रहने वाले देशों की सूची में 7वें स्थान पर रखा गया है। हैकरों का पंसदीदा निशाना बैंक, इनवेस्टमेंट एजेंसी और बीमा कंपनिया है।

रूस हैकिंग का सरगना, चीन सबसे ज्यादा जासूसी करवा रहा हैं

मैक्सिको 2016 में 20 हजार करोड़ रुपए गंवाए
ब्राजील साइबर फिरौती आदि में आगे है
कनाडा 2014 के मुकाबले 45% क्राइम बढ़ा
यूएस 6500 करोड़ रुपए का साइबर सिक्योरिटी इंश्योरेंस बेचा गया।
जर्मनी 4.2 लाख करोड़ रु खोए बीते साल में
रूस दुनिया में साइबर अपराध का सरगना
जापान 70 हजार साइबर हमले हुए 2017 में
चीन जासूसी कराने में सबसे आगे हैं
ऑस्ट्रेलिया 1.14 लाख साइबर हमले झेले
यूएई 9 हजार करोड़ का नुकसान हुआ
उत्तरी अमेरिका में 10 लाख करोड़ का नुकसान हुआ
लैटिन अमेरिका में 1.5 लाख करोड़ की हानि
यूरोप म. एशिया में 11 लाख करोड़ रु की हानि
मिडिल ईस्ट, नॉर्थ अफ्रीका में 23 हजार करोड़ रू गए
सहारा अफ्रीका में 13 हजार करोड़ रु गए
दक्षिण एशिया में 71 हजार करोड़ रु का नुकसान
प्रशांत-पूर्व एशिया में 10.5 लाख करोड़ रु गए

परीक्षा में भारी कारोबार

राज्यों में बिक रही हैं 300-300 करोड़ की कुंजियां
अकेले दिल्ली में बिकते हैं एक लाख सैंपल पेपर
10 हजार करोड़ के स्टेशनरी व्यापार का 50% इन दिनों

देशभर में परीक्षा का मौसम शुरू हो चुका है। इस समय विभिन्न प्रकाशक और

स्टेशनरी बनाने वाली कंपनियां जितनी कमाई 8 महीने में नहीं करती उससे ज्यादा परीक्षा के सीजन में कर रही हैं। दिसंबर से लेकर मार्च तक कुंजी, गाइड, सॉल्व्ड-अनसॉल्वड क्वेश्चन बैंक आदि तैयार करने वाले 80 फीसदी से ज्यादा कारोबार इन महीनों में ही करते हैं। कंपनियां 50 फीसदी के करीब एजुकेशन स्टेशनरी का कारोबार भी इन चार महिनों में ही करती हैं। चित्रा प्रकाशन के निदेशक अजय स्तोगी कहते हैं कि पढ़ाई के पैटर्न में बदलाव आ गया है, आज से 10 वर्ष पहले हमारे वर्षभर के कारोबार में टेक्स्ट बुक और गाइड की हिस्सेदारी 60% थी और क्वेश्चन बैंक की 40% रहती थी। लेकिन वर्तमान में क्वेश्चन बैंक की हिस्सेदारी 60% हो गई है। हमारे 80फीसदी क्वेश्चन बैंक, सॉल्व्ड, अनसॉल्व्ड पेपर आदि इन्हीं चार महीनों में बिकते हैं।

उद्योग संगठन एसोचैम के सेक्रेटरी जनरल डी.एस. रावत के मुताबिक देश में एज्युकेशन स्टेशनरी का संगठित बाजार करीब 10 हजार करोड़ रुपए का है। यह 8 से 10 फीसदी प्रतिवर्ष की रफ्तार से बढ़ रहा है। देश में होने वाली स्टेशनरी की 70 फीसदी बिक्री जनवरी से जून माह के दौरान होती है। हमारा अनुमान है कि जनवरी से अप्रैल के दौरान करीब 50 फीसदी बिक्री एजुकेशन स्टेशनरी की हो जाती है। परीक्षा के सीजन के दौरान एजुकेशन स्टेशनरी की डिमांड बढ़ जाती है।

10 % की दर से बढ़ रहा है स्टेशनरी का कारोबार

राजस्थान

3 महीने में करोड़ों का काम, फिर दूसरा धंधा

राजस्थान में किताबों के साथ पास बुक्स, वनडे सीरीज, वन वीक सीरीज, आदि का कारोबार बड़े पैमाने पर हैं। प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं के अनुसार इन चीजों का सालभर में करीब 300 करोड़ का कारोबार होता है। इनमें से 50 से 60 फीसदी कारोबार दिसंबर से मार्च तक में होता है। सारथी सॉल्व्ड पेपर के प्रकाशक गोविंद अग्रवाल का कहना है कि सारथी सॉल्व्ड पेपर की अधिकतम बिक्री दीपावली से होली तक होती है। इन चार-पांच महीनो में ही हम इस पेपर का अधिकतम कारोबार कर लेते हैं। फिर हम दूसरे कारोबार में लग जाते हैं।

दिल्ली

9 माह के बराबर सिर्फ 3 माह में होती है बिक्री

पुस्तक विक्रेता हितकारी संघ के सचिव रमेश वशिष्ठ ने बताया कि दिल्ली में

कुंजी, सैंपल पैपर्स का कारोबार महज तीन महीने में होता है। वही चांदनी चौक के स्टेशनरी प्रोडक्टस व्यापारी मोहित गुप्ता ने बताया कि दिल्ली में साल भर में 120 से 125 करोड़ रुपए का स्टेशनरी का व्यापार होता है। स्कूल के स्टेशनरी आइटम्स का दिसंबर से मार्च महीने के दौरान 60 से 65 करोड़ रूपए का व्यापार होता है। जबकि पूरे साल ही इतना व्यापार हो पाता है।

गुजरात

50 करोड़ की रफ कॉपियां होती हैं इस्तेमाल

परीक्षाओं से तीन-चार महीने में 350 करोड़ रु. की कुंजी और तमात तरह के सॉल्व्ड-अनसॉल्व्ड पेपर बेचे जाते है। परीक्षाओं से पहले 50 से अधिक प्रकाशन तीन से चार महीने पहले रफ कॉपी, रजिस्टर कॉपी, स्कूलों के पुस्तक आदि बेच कर 150 करोड़ का कारोबार कर लेते है। 10वी 12वी के विद्यार्थी 50 करोड़ रु की कीमत की रफ कॉपी का इस्तेमाल कर लेते है। स्टेशनरी, पेंसिल, स्केच, पैन, कलर , ज्योमैट्री बॉक्स, इरेजर और शॉर्पनर आदि का 2000 करोड़ का व्यापार होता है। स्टेशनरी के व्यापार में 50प्रतिशत तक की वृद्धि होती है।

सलाह। माइक्रोसॉफ्ट कोफाउंडर के अनुसार अमेरिकी टैक्स सुधारों से ज्यादा कमाई वालों को फायदा, उन्हें कम टैक्स देना होगा

64 हजार करोड़ टैक्स देने वाले गेट्स ने कहा - मेरे जैसे अमीरों को ज्यादा टैक्स देना चाहिए; टैक्स सुधार का फायदा सुपर रिच को ही होगा

दुनिया के दूसरे सबसे बड़े रईस और माइक्रोसॉफ्ट के कोफाउडंर बिल गेट्स ने कहा कि उन्हें और उनके जैसे दूसरे अमीरों को ज्यादा टैक्स देना चाहिए। सरकार को भी ऐसे लोगों पर ध्यान देना चाहिए जो टैक्स में ज्यादा योगदान दे सके। गेट्स की नेटवर्थ 5.79 लाख करोड़ रुपए है। पिछले साल उन्होंने 64 हजार करोड़ रु. टैक्स अदा किया है, जो किसी भी शख्स की तुलना में ज्यादा है।

हाल ही अमेरिकी सरकार ने नया टैक्स कानून लागु किया है। इसमें कॉरपोरेट्स को टैक्स में छूट का प्रावधान है। ऐसे में गेट्स का यह बयान मायने रखता है। ध्यान

रहे कि अमेजन के जेफ बेजोस के बाद गेट्स दुनिया के दूसरे सबसे अमीर शख्स है। बेजोस की नेटवर्थ 5.82 लाख करोड़ रुपए है। गेट्स ने एक इंटरव्यू में कहा कि नया टैक्स सूधार प्रोग्रेसिव (कमाई बढ़ने के साथ टैक्स रेट बढ़ना) नहीं, बल्कि रिग्रेसिव (ज्यादा कमाई पर कम टैक्स)है। नए नियमों में की गई टैक्स कटौती का फायदा मध्यम वर्ग के लोगों को मिलना चाहिए था। लेकिन इसका सबसे बड़ा फायदा सुपर रिच लोगों को होगा।

गेट्स ने आगे कहा कि गरीब और मध्यम वर्ग के लोगों की तुलना समृद्ध लोगों को आश्चर्यजनक रूप से ज्यादा फायदा मिल जाएगा। ऐसी धारणा है कि अमीर लोग ज्यादा टैक्स दे रहे हैं और उससे सेफ्टा नेट मजबूत हो रही है। जैसा ट्रेड हम देखना चाहते हैं, यह इसके उलट है। 'बढ़ती असमानता' पर गेट्स ने कहा कि सभी समृद्ध लोकतंत्रों को इस बारे में गंभीरता से सोचना चाहिए।

गेट्स ने कहा कि आबादी का छठा हिस्सा चिंताजनक परिस्थितियों में जी रहा है। हमें भी इसे लेकर चिंतित होना चाहिए। सरकार को नीतियों पर फिर से विचार करना होगा। आखिर हम उन लोगों के लिए बेहतर काम क्यों नहीं कर पा रहें? गेट्स अपनी संपत्ति में से 2.5 लाख करोड़ रु. भलाई के कामों के लिए दान कर चुके हैं। इनमें मलेरिया और पोलियों खत्म करने के साथ दक्षिण अफ्रीका में पीने का साफ पानी मुहैया कराने जैसे अभियान प्रमुख हैं।

गेट्स से पहले 400 अमेरिकी रईस भी ऐसा प्रस्ताव दे चुके हैं

गेट्स का यह प्रस्ताव बिल्कुल वैसा है, जो पिछले साल नवंबर में करीब 400 करोड़पतियों और अरबपतियों ने अमेरिकी संसद को दिया था। उन्होंने खुला पत्र लिखकर कहा था कि अमीरों के टैक्स में कटौती नहीं होनी चाहिए। इससे रेवेन्यू का नुकसान होगा और इसका असर शिक्षा और मेडिकल जैसी सेवाओं पर पड़ेगा। इससे देश पर कर्ज का बोझ भी बढ़ेगा और लोगों पर खर्च करने की उसकी क्षमता में कमी आएगी। ज्यादा छूट असमानता को भी बढ़ावा देगी। पत्र लिखने वालों में जॉर्ज सोरोस, स्टीवन रॉकफेलर, जैरी ग्रीनफील्ड और बेन एंड जैरी आइसक्रीम के फाउंडर बेन कोहेन जैसे दिग्गजों के साथ कई डॉक्टर, वकील, लॉयर्स और सीईओ शामिल थे।

11,394 करोड़ रुपए का देश का सबसे बड़ा बैंकिंग घोटाला
सीबीआई अब तक 11 लोगों को गिरफ्तार कर चुकी

मुकेश अंबानी के चचेरे भाई सहित 5 गिरफ्तार

पीएनबी के साथ 11,394 करोड़ रुपए की धोखाधड़ी के मामले में सीबीआई ने मंगलवार रात नीरव मोदी के सीएफओ विपुल अंबानी सहित 5 लोगों को गिरफ्तार कर लिया। नीरव की कंपनी फायरस्टार इंटरनेशनल का सीएफओ विपुल रिलायंस ग्रुप के प्रमुख मुकेश अंबानी का चचेरा भाई है। वह करीब तीन साल से नीरव की कंपनी के साथ जुड़ा है। उसके अलावा नीरव की तीन फर्मों की अथॉराइज्ड सिग्नेटरी कविता मणिकर, फायरस्टार ग्रुप के सीनियर एग्जीक्यूटिव अर्जुन पाटिल, नक्षत्र ग्रुप के सीएफओं कपिल खंडेलवाल और गीतांजलि के मैनेजर नितेन शाही को भी गिरफ्तार किया गया है। सीबीआई अब तक कुल 11 लोगों को गिरफ्तार कर चुकी है। इनमें चार पीएनबी के अधिकारी, एक रिटायर्ड डिप्टी मैनेजर शामिल है। वहीं, छह लोग नीरव मेहुल की कंपनियों से जुड़े हैं।

खुलासे के सातवे दिन बोले वित्त मंत्री
बैंक प्रबंधन और ऑडिटर की नाकामी से हुआ घोटाला : जेटली

पीएनबी घोटाला सामने आने के 7वें दिन चुप्पी तोड़ते हुए वित्त मंत्री अरुण जेटली ने घोटाला पकड़ने में नाकामी के लिए बैंक प्रबंधन व ऑडिटर्स को जिम्मेदार ठहराया। एक कार्यक्रम में जेटली बोले - 'सरकार ने बैंक प्रबंधनों को स्वायत्तता से काम करने का हक दिया है, उम्मीद की जाती है कि उनका प्रयोग प्रभावी रूप से करेंगे। यदि आंतरिक व बाहरी ऑडिटर्स पता नहीं लगा सके तो सीए आत्मावलोकन करें। आरबीआई जैसी नियामक एजेंसिंया भी अतिरिक्त उपाय सोचें।'

रोटोमैक का मालिक और बेटा हिरासत में,
आयकर विभाग ने 14 खाते अटैच किए

सात बैंकों के 3,695 रुपए नहीं चुकाने के मामले में कानपुर में दो दिन तक जांच के बाद सीबीआई और ईडी की टीमें रोटोमैक के मालिक विक्रम कोठारी और उसके बेटे राहुल को हिरासत में लेकर दिल्ली रवाना हो गई। अभी गिरफ्तारी की पुष्टि

नहीं हुई है। इसी बीच आयकर विभाग ने कोठारी के खिलाफ कार्रवाई कर उसके 14 बैंक खाते अटैच कर दिए है।

एनपीपीए ने किया दिल्ली के चार अस्पतालों का विश्लेषण, तब खुलासा

निजी अस्पतालों ने लिया 1200% तक मुनाफा, 14 रु. का इंजेक्शन 5 हजार में

नई दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में स्थित चार प्राइवेट अस्पतालों में मरीजों से गैरअधिसूचित दवाओं और डायग्नोस्टिक सेवाओं पर 1192 प्रतिशत तक की प्रॉफिट मार्जिन वसूली जा रही है।

यहां तक की 14.70 रुपए का इंजेक्शन पर एमआरपी 189.95 रुपए लिखा होता है और अस्पताल ने इस इंजेक्शन पर मरीज से 5,318.60 रुपए वसूल किए। इसमें टैक्स शामिल नहीं है। यह जानकारी दवा मूल्य नियामक नेशनल फार्मास्यूटिकल प्राइसिंग अथारिटी (एनपीपीए) के एक विश्लेषण से सामने आई है। हालांकि एनपीपीए ने अस्पतालों का नाम सार्वजनिक नहीं किया है।

एनपीपीए के अनुसार बीआई वाल्व जीएस 3040 पर भी मार्जिन बहुत ज्यादा है। अस्पतालों ने इस उपकरण को 5.77 रुपए में खरीदा और 1737 प्रतिशत की मार्जिन पर मरीजों को बेचा। लो ब्लड प्रेशर जैसे इमरजेंसी के मरीजों को दी जाने वाली दवाओं पर अस्पताल 1192 प्रतिशत तक की प्रॉफिट मार्जिन वसूलते है। टुडेसेफ एक एमजी इंजेक्शन को अस्पताल 40.32 रुपए में खरीदते हैं।

इस पर एमआरपी 430 लिखा होता है और मरीज को इसका 860 रुपए बिल दिया गया। एनपीपीए ने कहा कि अधिकांश प्राइवेट अस्पतालों में दवा स्टोर हैं और वे थोकभाव में खरीदी करते हैं, जो बड़े प्रॉफिट मार्जिन पर मरीजों को बेचते हैं। पहले से ही अधिक एमआरपी लिखा होने से वे इसका उल्लंघन भी नहीं कर रहे होते हैं।

दवाओं और जांच पर 12 गुना तक का मुनाफा कमा रहे निजी अस्पताल

नई दिल्ली। पिछले दिनों निजी अस्पतालों में दवाओं और इलाज के नाम पर मनमाना बिल वसूलने की शिकायत के बाद अब सरकारी एजेंसी ने भी इस बात पर

मुहर लगा दी है। नेशनल फार्मास्यूटिकल प्राइसिंग अथॉरिटी (एनपीपीए) की एक स्टडी के अनुसार अस्पताल दवाओं और जांच आदि के नाम पर 1200 प्रतिशत (12 गुना) तक मुनाफा कमा रहे है।

एनपीपीए ने इसके लिए दिल्ली और एनसीआर के चार बड़े निजी अस्पतालों के बिलों की जांच की थी। हालांकि, एनपीपीए ने इन अस्पतालों के नाम पर खुलासा करने से इनकार किया है। मंगलवार को जारी की गई इस रिपोर्ट में कहा गया है कि ज्यादा फायदा दवाई बनाने वालों का नहीं बल्कि अस्पतालों का ही होता है। एनपीपीए के मुताबिक, ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वे अपने आप से कहकर दवाइयों पर ज्यादा रेट प्रिंट करवाते है।

46% खर्च दवा और जांच पर

एनपीपीए के अनुसार एनसीआर के इन अस्पतालों में भर्ती हुए किसी मरीज का जो कुल बिल बनता है उसमें 46 प्रतिशत खर्च दवाई और जांच आदि पर होता है। इसके अलावा डॉक्टरों की सलाह के लिए करीब 13 फीसदी, रूम या बेड के किराए पर करीब 11.61 फीसदी और इक्यूपमेंट चार्ज के नाम पर 7.45 फीसदी का खर्च बताया गया है।

पहचान की दुकान पर बिक्री

रिपोर्ट में कहा गया है कि अस्पताल ज्यादातर ऐसी दवाइयां लिखते हैं जो उनकी या पहचान वाली फार्मेसी द्वारा बनाई जाती है। ऐसे में मरीज या परिजन वो दवाइयाँ कही और से नहीं ले पाते। अस्पताल फार्मेसियों पर दबाव बनाते हैं कि वे अपनी दवाओं पर असल कीमत से ज्यादा एमआरपी लिखें।

6 साल में हुई 239 स्कूलों में फायरिंग, 438 लोग मारे गए

आंकड़े बताते हैं कि अमेरिका में 2012 से अब तक 239 स्कूलों में फायरिंग हुई। इन घटनाओं में 438 लोग मारे गए। जनवरी से अब तक स्कूलों में फायरिंग की 18 वारदातें हो चुकी है।

आबादी 32.3 करोड़, हथियार 30 करोड़

अमेरिका में 2001 के बाद हथियार रखने का चलन बढ़ा है। 88.8% लोग गन रखते है।

अमेरिका की आबादी 32.3 करोड़ है, जबकि लोगों के पास 30 करोड़ से ज्यादा गन हैं।

बंदूक रखने में दूसरे नंबर पर यमन है जहां 54.8% लोगो के पास हथियार है।

अमेरिका में फायरिंग दर 10 लाख लोगों पर 29.7% है, जो दुनिया में सबसे ज्यादा है।

फायरिंग में मरने वालों में 15 से 24 साल के 92% लोग, उसके बाद महिलाओं का नंबर

अमेरिका में 1968 से 2011 तक फायरिंग से 15 लाख लोग मारे गए। 2015 में ही 13000 से ज्यादा लोग मारे गए। मृतकों में 92% लोग 15 से 24 साल के थे। नेशनल राइफल एसोसिएशन सख्त गन पॉलिसी बनने से रोकने के लिए 20 साल में 1300 अरब रूपए खर्च चुकी है।

निर्माल्य का व्यापक स्वरूप व उसके अपहरण के कुफल

(देवपूजा में ही चढायें हुए द्रव्य ही नहीं है निर्माल्य)

(चाल :- 1. जय हनुमान .... 2. आत्मशक्ति ....)

निर्माल्य द्रव्यों का स्वरूप जानो, दान-पूजादि के द्रव्यों (धन) को निर्माल्य मानो।
पूजामें समर्पित ही नहीं (है) निर्माल्य द्रव्य, समस्त धार्मिक धन होते निर्माल्य द्रव्य।।

दान में दिये हुए द्रव्य सभी ही निर्माल्य, मन्दिर-मूर्ति से ले सभी ही उपकरण।
भूमि व रूपये सोना-चांदी व बर्तन, धर्मशाला-कुँआ-खेती-बगीचा दुकान।।(1)

प्रतिष्ठा-विधान-चातुर्मास-केशलोंच, तीर्थयात्रा-साधुसंघ की व्यवस्था निमित्त।
साहित्य प्रकाशन व संगोष्ठी-शिविर, प्रवचन से ले साधु संघ के विहार।।
आहार-औषधि-ज्ञान व अभय दान, वसतिका-पिच्छी-कमण्डल व उपकरण।
चटाई-पाटा आदि व्यवस्था हेतु देय दान, ये सभी ही निर्माल्य (है) दयादत्ति के धन।।(2)

इसे जो अपहरण करे या स्व-व्यापार में ले, हेरा-फेरी करके जो स्व-स्वार्थ को साधे।
स्व-पर-परिवार के स्वार्थ हेतु, व्याजमें देना यह सब नरक हेतु।।

शक्ति-भक्ति स्वेच्छा से दान देना विधेय, धर्म कार्य में बोली न आगम विधेय।
(तो भी) बोली के भी धन न देते शीघ्र, इसमें भी होते दबाव-प्रलोभन भय।।(3)
अंहकार प्रदर्शन हेतु भीड़ में बोलते बोली, इसमें भी होती मायाचार से ले चोरी।
कलह विषमता से ले होते फूट व लूट, इसमें भी होता निर्माल्य खाने का दोष।।
पूजा अर्पित द्रव्य छूने से तो दोष मानते, छू जाने पर पानी से हाथ भी धोते।
उक्त निर्माल्य से जो हाथ साफ करते, उस पाप को सफाई से छिपा भी लेते।।(4)
ऐसे जीव करते विविध महान् पाप, चोरी-झूठ-माया-अन्तराय पाप।
धर्म प्रभावनाका वे करते नाश, कलह विषमतासे ले सामाजिक विनाश।।
इससे बनते वे नारकी तीर्यंच जीव, विकलांग, रोगी से ले दीन व दरीद्र।
अतः निर्माल्य द्रव्य न ग्रहण योग्य, पाप से बचाने हेतु 'कनक' बनाया काव्य।। (5)
गन्धोदक व आशीका भी ग्रहण योग्य,भले पूजा में समर्पित ये न निर्माल्य द्रव्य।
पूजा में समर्पित द्रव्य छूना ही न पाप, दान पूजा समग्र करना होता है धर्म।।(6)

ओबरी 17/02/2018 रात्रि 08:07

संदर्भ - प्रतिष्ठा आदि के लिये रखे हुए द्रव्य का फल प्रतिष्ठा करते समय प्राप्त होगा वह प्रतिष्ठा के लिये रखे हुए द्रव्य को खा जाने से नष्ट हो गया और प्रतिष्ठा से होने वाली प्रभावना भी नष्ट हो गयी, इसी प्रकार धार्मिक कार्य को कायम रखने के लिए प्रदान किये हुए दान को भक्षण करने से नरक गति होती है। निर्माल्य भक्षण करने से केवल अंतराय कर्म का बंध होता है, ऐसा श्री राजवर्तिक में कहा है, इससे स्पष्ट है कि निर्माल्य भक्षण से पूजा प्रतिष्ठा आदि का संरक्षित द्रव्य भक्षण करना महापाप है।

निर्माल्य द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम

जिण्णुद्धार पतिट्ठा जिणपूजा तित्थवंदण विसयं धणं।
जो भुंजइ सो भुंजइ जिणदिट्ठ णरयगय दुक्खं।।32।।

भावार्थ :- जो पुण्यात्मा भव्यात्मा पुरुष जिनमंदिर जीर्णोद्धार, जिनबिंब प्रतिष्ठा, जिनपूजा अर्थात् प्रतिदिन भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा पंचामृताभिषेक आदि तथा मुनि त्यागी संघ को तीर्थ क्षेत्रों की वंदना दर्शनार्थ ले जाने के लिए दिया हुआ,

रथोत्सव, जिनशासन प्रकाशन में रखा हुआ धन, रूपया आदि विशेषकर अनेक प्रकार धर्मानुष्ठान के लिए दिया गया जमीन दुकान मकान आदि खा लेना ऐसे मनुष्य प्राणी नरकगति के तीव्र दुःखों को भोगता है ऐसा जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है।

विशेषार्थ :- किसी भी प्रकार का धन, किसी भी प्रकार के जिनेन्द्र भगवान् के आयतनों के कार्यें में, मुनिसंघ सेवा आदि में दिया हुआ धन, रूपया आदि नष्ट करना एवं अपने व्यापार उद्योग में लगा लेना आदि करने से मोक्ष मार्ग में अरगला लगा देते हैं वे मनुष्य दुर्गति दुःख को भोगते हैं।

पूजा-दान आदि के द्रव्य के अपहरण का परिणाम

पुत्तकलित्तविदूरो दारिद्दो पंगु मूक बहिरंधो।
चण्डालाइ कुजादो पूजादाणाइ दव्वहरो।।33।।

अर्थः- जो मनुष्य पूजा प्रतिष्ठा तीर्थयात्रा जीर्णोद्धार आदि के लिए सुरक्षा में दिया गया दान-द्रव्य का अपहरण करता है वह पुत्र स्त्री भाई आप्तगण आदि कुंटुंबी जनों से रहित होता है, और चाण्डाल आदि जाति में, नीच गति में उत्पन्न होता है। दरिद्री धनहीन बनता है, पंगु, गूंगा, बहरा, अंधा होकर जन्म लेता है।

पूजा-दान के द्रव्य का अपहरण बीमारियों का घर

इत्थियफलं ण लब्भइ जइ लब्भइ सो ण भुंजदे णियदं।
वाहीणमायरो सो पूजादाणाइदव्वहरो।।34।।

अर्थः- जो मनुष्य पूजा के निमित्त प्रदान किये हुए द्रव्य का अपहरण करता है उसे किसी भी प्रकार की कदापि द्रव्य प्राप्ति नहीं होती है। अर्थात् इच्छित फल को प्राप्त नहीं होता है। उसके पुण्य के उदय कदापि नहीं होता है। कदाचित् इष्ट वस्तु का संयोग प्राप्त हो जाय तो भी उसका फल भोग नहीं सकता क्योंकि रोगादि से पीड़ित होता है या अन्य कुछ कारण बनते हैं कि उसका भोग नहीं ले सकता है।

दानद्रव्य के अपहरण से विकलांग

गयहत्थपायणासिय कण्णउरं गुलविहीणदिट्ठीए।
जो तिव्वदुक्खमूलो पूयादाणाइ दव्वहरो।।35

अर्थः- जो मनुष्य पूजा प्रतिष्ठादि के निमित्त प्रदान किए हुए द्रव्य का अपहरण

करता है वह हाथ पैर नासिका कर्ण अंगुलि आदि रहित हीनांग होता है। आखों से अन्धा होता है और तीव्रतर दुःख को प्राप्त होता है।

पूजा-दानादि धर्मकार्यों में अन्तराय करने का फल

खयकुट्ठमूलसूलो लूयभयंदरजलोयरक्खिसिरो।
सीदुण्ह वाहिराइ पूजादाणांतरायकम्मफलं।।36।।

अर्थः- जो मनुष्य लोभ मोह के वश होकर श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा के निमित्त दान किये हुए द्रव्य का अपहरण कर पूजादि धार्मिक कार्यों में अंतराय डालता है, विघ्न करता है, पुण्योत्पादक कार्य का विध्वंस करता है वह क्षय, कोढ़, लूला, जलोदर, भगंदर, गलकुष्टि, बात, पित्त, कफ और सन्निपात आदि रोगों की तीव्र वेदना को प्राप्त होता है।

भावार्थः- जिनशासन और धर्मायतनों का उद्योत करने के लिए, धर्म को बढ़ाने के लिए धर्म प्रभावना के लिए, धर्म शास्त्र प्रकाशन के लिए, महापूजा, विधिविधान, पंचकल्याणक आदि धर्म कार्यों में विघ्न डालता है, अंतराय करता है, दान देने वाले को रोकता है। ऐसे ऐसे कार्यों को करने नहीं देता है। रोडा अटकाता है। छत्र चामर, पैसा आदि लोप करता है। मंदिर के द्रव्य से आजिविका चलाता है। धर्मकार्यों को बंद करता है। ऐसा व्यक्ति अंतराय कर्म को बांधता है। और तीव्र दुःखों को प्राप्त होता है।

वंदना और स्वाध्याय आदि

धर्म कार्यों में विघ्न डालने का फल

णरइतिरियाइदुगइदारिद्दवियलंगहाणिदुक्खाणि।
देवगुरु सत्थवन्दणसुयभेयसज्झादाणविघणफलं।।37।।

अर्थ :- जो मनुष्य देव, गुरु, शास्त्र के उद्धार, वंदना और पूजा, प्रतिष्ठा आदि के निमित्त होने वाले दान में अथवा प्रदान किये हुए दान मे श्रुत की वृद्धि, पाठशाला, विद्यालय और स्वाध्याय आदि के लिए दान में विघ्न करता है, देने नहीं देता, रूकावट डालता है, उसको नरक, तिर्यंच आदि दुर्गति के दुःख और मनुष्य गति में दरिद्रता, विकलांगता तथा विविध प्रकार के कष्ट प्राप्त होते हैं।

पंचमकाल में विशुद्धि की हीनता (काल प्रभाव)

सम्मविसोही तवगुण चारित्त सण्णाण दाण परिहीणं।
भरहे दुस्समकाले मणुयाणं जायदे णियदं।।38।।

भावार्थः- भरत क्षेत्र में पंचमकाल में अट्ठाईस मूलगुण धारक तप व्रत और सम्यक् चारित्र सम्यक् ज्ञान और दान में हीनता होती है अर्थात् पायी जाती है।

दुर्गति का पात्र कौन?

णहि दाणं णहि पूया णहि सीलं णहि गुणं ण चारित्तं।
जे जइणा भणिया ते णेरइया हुंति कुमाणुसा तिरिया।।39।।

अर्थः- जिन जीवों ने मनुष्य पर्याय प्राप्त करके सुपात्र को दान नहीं दिया, श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा नहीं की, शीलव्रत (स्वदारसंतोष-परस्त्रीत्याग) पालन नहीं किया, मूलगुण और उत्तरगुण पालन नहीं किया चारित्र का पालन नहीं किया और श्री जिनेन्द्र देव की आज्ञा पालन नहीं की अर्थात् धर्म के आचरण को नहीं किया। ऐसे वे मनुष्य मरकर परलोक में नारकी तिर्यंच अथवा कुमनुष्य होते हैं। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

हेयोपादेय से रहित जीव मिथ्यादृष्टि है

ण वि जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं च पुण्ण पावं हि।
तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्मउम्मुक्को।।40।।

अर्थः- जो मनुष्य कार्य अकार्य को, हित अहित को अर्थात् सेवन करने योग्य व असेवन करने योग्य क्या है, पुण्य क्या है और पाप क्या है, धर्म क्या है-अधर्म क्या है, तत्त्व क्या है, अतत्व क्या है, इसका विवेक नहीं है वह मनुष्य सम्यक्त्व से रहित है अर्थात् मिथ्यादृष्टि है।

हेयोपादेय रहित जीव के सम्यक्त्व कहां?

ण वि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउम्मुक्को।।41।।

अर्थः- जो मानव अमूल्य ऐसे इस मानव देह को प्राप्त करके भी विवेक पूर्वक अब मेरे लिए क्या हेय-त्यागने योग्य है और उपादेय-ग्रहण करने योग्य क्या है, इस प्रकार हेय उपादेय के विवेक रहित प्रमादी मनुष्य निरंतर पापों की प्रवृत्ति करता है।

सत्यार्थ क्या है, असत्यार्थ क्या है, नित्य का अर्थ क्या है अनित्य का अर्थ क्या है भव्य कौन है अभव्य कौन है भव्य अभव्य क्यों कहते हैं, सम्यक्त्व मिथ्यात्व क्यों कहते हैं इनका लक्षण क्या है आदि का जिनको विवेक विचार ज्ञान नहीं है वह मनुष्य सम्यक्त्व से रहित है अर्थात् धर्म से तत्त्वज्ञान से रहित मिथ्यादृष्टि है।

मेरा विश्व रूप

(मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय)
(मेरी अनन्त भूत-वर्तमान तथा अनन्त भविष्यतका स्वरूप)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- उडिया-बंगला राग... कोथाये स्वर्ग, कोथाये नर्क के बोले ते बहुदूर-रवीन्द्र संगीत...)

कहाँ भी नहीं ... मुझमें ही सही... द्रव्य-गुण-पर्याय मुझमें स्थित।
आस्त्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष ... मेरे सुख-दुःखादि मुझमें स्थित।।(ध्रुव)
''सद् द्रव्य लक्षणं'' होने से मैं सत्य, मैं हूँ जीव द्रव्य स्वयंभू-शाश्वत।
जबसे है विश्व तबसे मैं स्थित, अजर-अमर-नित्य-अमृत।।
''गुण-पर्ययवत् द्रव्यं'' होने से, अनन्त गुण-पर्याय मुझमें स्थित।
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्, भले इस हेतु अन्य द्रव्य निमित्त।।(1)
अनादि कालीन कर्म बन्ध से, अभी मैं अशुद्ध रूप में स्थित।
गुण-पर्याय आदि अभी अशुद्ध, अशुद्धता भी मेरी मुझमें स्थित।।
राग-द्वेष व मोह के कारण ही, मेरे आत्मप्रदेश में होते कम्पन।
जिससे होता है कर्मों का आस्त्रव, आस्त्रव से होता कर्मों का बन्ध।।(2)
इससे ही मेरे जन्म व मरण, चौरासीलक्ष्ययोनीयों में किया भ्रमण।
पंचपरिवर्तन रूपी चतुर्गतिमें, विश्वके मध्य में किया भ्रमण।।
पंचलब्धि देव-शास्त्र-गुरु पाकर, मेरे गुण मुझमें हो रहे उजागर।
'तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' पाकर, मेरे अनन्त गुणों का करूँ श्रद्धान।।(3)
इससे मेरे ज्ञान हुए सम्यक्, मतिश्रुत दोनों हुए सम्यक्।
जिससे विश्वका हो रहा सही ज्ञान, अतः मम ज्ञान वीतराग विज्ञान।।
इससे हुआ स्व-पर भेद विज्ञान, मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध-आनन्द घन।

मुझसे परे सभी से मैं हूँ भिन्न, 'अहंकार' ममकार हो रहे क्षीण।।(4)
यहाँ से प्रारम्भ मम श्रमणावस्था, स्व-उपलब्धि हेतु (स्वयं में) करूँ पुरुषार्थ।
ज्ञान-ध्यान-तप रूप करूँ प्रवृत्ति, समता-शान्ति व वैराग्य वृत्ति।।
अतः मेरी बाह्य प्रवृत्ति हो रही क्षीण, ख्याति-पूजा-लाभ में न लगे मन।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश हो रहे दूर, आकर्षण-विकर्षण द्वन्द भी चूर।।(5)
अपना-पराया भेद-भाव से परे, स्व-पर-विश्वकल्याण भावना भरे।
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थभाव, उदार-सहिष्णु व पावन भाव।।
यह मोक्षमार्ग मुझमें प्रारम्भ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।
मम मोक्षमार्गमें मम है गमन, मेरे द्वारा (ही) मुझमें परिणमन।।(6)
इससे मम हो रहे संवर-निर्जरा, आत्मविकास करूँगा श्रेणी आरोहन द्वारा।
परम विशुद्ध भाव से करूँगा कर्म क्षय, जिससे पाऊँगा सुख अनन्त अक्षय।।
मेरे सद्भाव से मम यह सम्भव, मेरे अभाव से यह नहीं सम्भव।
अतएव मैं मेरा कर्त्ता व भोक्ता, 'कनक' अन्यका न कर्त्ता-भोक्ता।।(7)

ओबरी 05/03/2018 मध्याह्न 01:08

तू (मैं) कौन हूँ!?

(तू (मैं) की संसार से मुक्ति की अवस्थायें)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः- चन्दा है तू ....)

पुण्य है तू पाप है तू ... पुण्य-पाप रहित मुक्त है तू ...
द्रव्य है तू गुण है तू ... दोनों से सहित जीव है तू ...
उत्पाद तू व्यय भी तू ... ध्रौव्य सहित सत् है तू ...
ज्ञान है तू ज्ञाता है तू ... दोनों से सहित चैतन्य तू ...
कर्त्ता है तू भोक्ता है तू ... दोनों से सहित आनन्द तू ...
अस्ति भी तू नास्ति भी तू ... अस्ति-नास्ति परे अव्यक्त तू ...
अनादि तू अनन्त भी तू ... स्वयंभू सनातन-सम्पूर्ण तू ...
तेरा श्रद्धान ही आत्मविश्वास ... तेरा ज्ञान ही आत्मविज्ञान ...

तेरा कल्याण ही आत्मकल्याण ... (तेरी) उपलब्धि ही परिनिर्वाण ...
तेरा ध्यान ही आत्म का ध्यान ... तेरा सम्मान ही आत्मसम्मान ...
तेरा स्वाध्याय ही परम-स्वाध्याय/(तप)... तव प्राप्ति हेतु त्याग ही त्याग ...
तेरे उपवेशन से होता उपवास ... तव प्राप्ति ही परम लक्ष्य ...
तेरा विकास ही आत्मविकास ... तेरे पतन से सर्वविनाश ...
तूझे ही कहते 'सोऽहं' व 'अहं'... 'निज'-'अपना'-'आप'-'आत्मा' व 'स्वयं'...
तुझे ही कहते 'मैं' व 'खुद' ... तुझे ही कहते 'स्व' या 'स्वभाव' ...
तेरे अभाव से उक्त मेरे अभाव ... 'अहंकार' 'ममकार' भी नहीं सम्भव ...
तेरे अभाव से मम न कोई अस्तित्त्व ... संसार से लेकर मोक्ष तक ...
तुझे न जानते अज्ञानी-मोही ... जडशरीर को मानते 'मैं' ही 'मैं' ...
उसके सम्बन्ध से मानते 'मेरा' ... इससे परे परको माने पराया ...
ये ही अन्धविश्वास-कुज्ञान ... इससे युक्त सभी धर्म कुधर्म ...
'मिथ्यात्व'-'कुदृष्टि' 'माया' या 'मोह'... 'अविद्या'-'कुविद्या'-'मिथ्या'-'विभाव' ...
तेरे हेतु ही चक्री बने साधु ... साधना करते तेरी प्राप्ति हेतु ...
तेरे द्वारा ही तुझे में तुझे पाऊँ ... 'तू' ही 'मैं' हूँ 'कनक' अन्य 'मैं' नहीं ...

ओबरी 05/03/2018 रात्रि 08:58

सच्ची-भावना अवश्य फल देती

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल :-1. क्या मिलिए...2.आत्मशक्ति....)

मेरे कुछ अनुभवों को कर रहा हूँ मैं यहाँ वर्णन।
जिससे अन्य गुणग्राही जन भी करेंगे गुण ग्रहण।।(1)
सच्ची-अच्छी भावनाओं का फल भी मिलते हैं अवश्य।
आगामी भव में तो अधिक मिलेंगे इस भव में भी यथायोग्य।।(2)
कर्मसिद्धान्त व मनोविज्ञान भी इसे मानते है सत्य-तथ्य।
मेरे भी हो रहे अनुभव अनेक बाल्यकाल से अभी तक।।(3)
बाल्यकाल से रही मेरी तीव्रभावना जानने हेतु सत्य-असत्य।

धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, विश्व-रहस्य से ले आत्म-परमात्म।।(4)
स्वपर विश्व की मंगलकामना रही है मेरी विद्यार्थी अवस्था से।
इस हेतु मेरी भावना रही है बनूँ मैं नेता - वैज्ञानिक या सन्त।।(5)
इस हेतु मैंने बाल विद्यार्थी अवस्था में लिया हूँ दो दृढ़-प्रतिज्ञा।
आजीवन मैं विद्यार्थी रहूँगा, रहूँगा बालक सम सरल-सहज।।(6)
इसके फल स्वरूप मैं विद्यार्थी अवस्था से पढ़ा रहा हूँ निःशुल्क।
विद्यार्थी-साधु-साध्वी वैज्ञानिक-प्रोफेसर्स जैन-अजैन आदिक।।(7)
इससे प्रेरित होकर मैं अध्ययन कर रहा हूँ देशी-विदेशी साहित्य।
धर्म-दर्शन-विज्ञान-गणित-मनोविज्ञान-तर्क से ले आयुर्वेद।।(8)
इस हेतु अनेक देशी-विदेशी भाषाओं का भी कर रहा हूँ अध्ययन।
आधुनिक वैज्ञानिक शोध परिज्ञान हेतु देख रहा हूँ (टी.वी.) वैज्ञानिक चैनल।।(9)
इसके फल स्वरूप हो रहे साहित्य सृजन तथाहि प्रकाशन।
इसका अध्ययन तथा शोध कार्य कर रहे हैं विभिन्न विद्यार्थी गण।।(10)
देश-विदेशों में मेरे वैज्ञानिक शिष्य कर रहे हैं धर्म प्रचार।
स्वेच्छा से भक्त जन कर रहे है दान-सहयोगादि हर प्रकार।।(11)
जैन एकता व विश्वशान्ति हेतु कर रहे हैं देश-विदेशों में काम।
विश्वधर्म सांसद से ले अनेक देशों में कर रहे हैं स्वेच्छा से काम।।(12)
दिगम्बर-श्वेताम्बर जैन कर रहे हैं चातुर्मास से ले उक्त भी काम।
हिन्दूराजा भी चातुर्मास हेतु कर रहे हैं निवेदन व सहयोग।।(13)
''गायत्री परिवार'' व ''संघ परिवार'' व ''नारायण सेवा संस्थान'' सहयोगी।
''अखिल भारतीय जैन एकता संस्थान'' भी कर रहा है चातुर्मास आदि।।(14)
छोटे-छोटे ग्राम नन्दौड़ - चितरी आदि में एक-एक परिवार द्वारा।
हो रहे हैं चातुर्मास और भी अनेक परिवार द्वारा चातुर्मास हेतु निवेदन।।(15)
गुरुभक्त-ऊर्जावान नितिन द्वारा सीपुर में आजीवन चातुर्मास हेतु सत्याग्रह।
ऐसी ही भावना भूपेश द्वारा भी तथाहि उनके सहयोगी मण्डल द्वारा।।(16)
''सागवाड़ा (राजचन्द्र)'' आश्रम कोबा व ऋषभ जैन का भी निवेदन चातुर्मास हेतु।
'धर्म तीर्थ आदि में प्रायः दो सौ चार्तुमास' हेतु निवेदन भक्त शिष्य द्वारा।।(17)

ब्रह्मचारी खुषपाल-आशादेवी-सन्ध्या, मणिभद्र, दीपेश, मयंक, मधोक।
खेतानी परिवार व अनेक गुप्तदानी कर रहे है सेवा-दानादि अनेक।।(18)

एकान्त-मौन-निस्पृह-निराडम्बर-आत्म साधना प्रभावना की भावना।
हो रही है स्वयंमेव सफल अनुभव-प्रयोग से ये सभी जाना।।(19)

सच्ची-अच्छी भावना-साधना से जब होती है आत्मा की उपलब्धि/(मुक्ति)।
उक्त सभी कार्य होना प्राथमिक फल है, 'कनक' का लक्ष्य आत्मोपलब्धि।।(20)

आधुनिक हिन्दी कविता की दुर्दशा से चिन्तित होकर मैंने।
गुप्तिनंदी-क्षमाश्री (1992) को सही कविता सृजन हेतु किया था प्रेरित।

मेरी यह तीव्र भावना सीपुर (2011) से हो रही सफलीभूत।
अभी तक अट्ठासी (88) गीताञ्जलीयाँ हो गई है प्रकाशित।।

आत्मविशुद्धि बिन बाह्य तप संयम से मोक्ष नहीं

(चाल :-आत्मशक्ति से....)

केवल बाह्य तप त्याग संयम से नहीं होता आत्मकल्याण।
जब तक न होती आत्मशुद्धि आत्म श्रद्धान युक्त आत्म ज्ञान(1)

राग द्वेष मोह काम क्रोध व ईर्ष्या तृष्णा घृणादि रहित भाव।
होती है आत्मविशुद्धि ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व रहित भाव।।(2)

आत्म श्रद्धान होता है जब होता है श्रद्धान स्व शुद्धात्मा(का)
मैं हूँ निश्चय से शुद्ध-बुद्ध-आनन्द स्वरूप परमात्मा।।(3)

किन्तु अनादि कर्म के कारण बना हूँ अशुद्ध संसारी आत्मा।
अभी मैं स्व-आत्म साधना से लक्ष्य बनाया हूँ बनना परमात्मा।।(4)

इस हेतु होता है देव-शास्त्र गुरु व द्रव्य-तत्त्व का भी सही श्रद्धान।
तदनुकूल होता है सम्यग्ज्ञान, निश्चय-व्यवहार नय प्रमाण।।(5)

दोनों से सहित होता है श्रावक या श्रमण धर्म पालन।
शक्ति हो तो श्रमण धर्म अन्यथा पालन होता श्रावक धर्म।।(6)

आत्म श्रद्धान ज्ञान चारित्र बिन बाह्य तप त्याग संयम से न होता मोक्ष।
यथा बीज के बिन केवल मृदाजल वायु सूर्य किरण से न होता वृक्ष।।(7)

आत्म विशुद्धि से ही होते हैं कर्म संवर-निर्जरा व मोक्ष।
अतएव आत्म विशुद्धि ही मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रमुख कारण।।(8)

आत्म विशुद्धि बिन होता है 'बाह्य तप' या मिथ्या साधना।
यह है सर्वज्ञ द्वारा कथित सत्य 'कनक' करे आत्म साधना।।(9)

सांसारिक कामों के त्यागी श्रमण

(चाल :-तुम दिल की....)

धन्य गुरुवर धन्य हो तुम...जो ज्ञान-ध्यान-तप करते हो।
लौकिक कामों को त्याग कर...स्व-पर-विश्व हित करते हो।।(ध्रुव)
आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र युक्त...आपने त्यागा समस्त परिग्रह।
अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य...महाव्रत सहित समिति पंच।।
क्षमा-मार्दव-आर्जव-शौच...तप-त्याग व आकिंचन्य।
आत्मविशुद्धि-आत्मविकास हेतु...रहते सतत प्रयत्नवान्।।(1)
ज्ञानदान आप करते हो...अभयदान भी प्रमुखता से।
आहार-औषधि-ज्ञानदान...अभयदान का करते उपदेश।।
ना करते हो अर्थ आधारित दान...क्योंकि आप अपरिग्रही हो।
दान हेतु न करते याचना...न करते हो चन्दा-संग्रह भी।।(2)
आप न करते हो व्यापार-कृषि...शिल्प-नौकरी आदि आर्थिक काम।
ज्योतिष-मंत्र-तंत्रादि व्यापार...पशुपालन आदि गृहस्थ व्यापार।।
राजनीति व कानूनी व्यवसाय...विवाह आदि पापारंभ कर्म।
ये सभी संसारवर्धक काम...इससे परे करते हो मोक्ष पुरुषार्थ।।(3)
इन सभी काम त्याग से आप...बने हो दिगम्बर जैन श्रमण।
पुनः ये काम करना तो मानो...स्व-वमन/(उल्टी) को पुनः करना भक्षण।।
श्रावक धर्माश्रित व्रत-नियम...दान-पूजा-विधान-पंचकल्याणक।
इस सम्बन्धी करते हो ज्ञानदान...उसी हेतु न करते स्व-व्रतदूषण।।(4)
दान-पूजादि हेतु करते उपदेश...जिससे होती धर्म प्रभावना।
सातिशय पुण्य होता उपार्जन...स्वर्ग-मोक्ष हेतु होता कारण।।
संक्लेश रहित देते हो मार्गदर्शन...ख्याति-पूजा-लाभ नहीं प्रयोजन।

आगम अनुसार करते आचरण...आत्मविशुद्धि ही मुख्य प्रयोजन।।(5)
श्रमण धर्म तो उत्कृष्ट धर्म है...इसे पाने हेतु श्रावक पाले धर्म।
श्रावक धर्म से न मिलता मोक्ष...मोक्ष हेतु श्रावक बनते श्रमण।।
अतएव आप तो पूजनीय हो...चक्रवती से ले देवेन्द्र से।
आप के अनुयायी 'सूरी कनक' भी...प्राप्त करने हेतु आत्मवैभव ही।।(6)
सागवाडा 26/05/2018 मध्यान 02:45

निस्पृह स्वपरउद्धारक श्रमण

(चाल :-मधुबन खुशबू देता है...)

आचार्य/(पाठक) गुरुवर ज्ञानी है...ज्ञान-विज्ञान सिखाते हैं।
आत्मा को परमात्मा बनाने का....भेद-विज्ञान सिखाते हैं।।(ध्रुव)
स्वयं सिखते व सीखाते हैं...स्वयं चलकर दिखाते हैं...
स्व-पर प्रकाशी बनकर वे...तरण-तारण बनते हैं...
राग-द्वेष-मोह वे त्यागते हैं...ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा छोड़ते हैं...(1)
ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व परे...निस्पृह-समता धरते/(साधते) हैं...
ज्ञान-ध्यान-तप वे करते हैं...आत्मविशुद्धि वे करते हैं करते हैं...2
संकल्प-विकल्प त्यागते हैं...आत्मा में रमण करते हैं...(2)
आत्म प्रभावना ऐसी करते...धर्म प्रभावना भी स्वयं होती...
दबाव-प्रलोभन-नाम-झाम बिन...अच्छी भावना से होती है 2
केवल वे परोपदेशी न बनते...उसी हेतु वे (बाह्य) आडम्बर न करते हैं...(3)
याचना-भय-चन्दा-भीड से...राग-द्वेष-मोह न बढ़ाते...
जो ऐसे करते हैं आडम्बर...आत्मपतन तो वे करते हैं 2
लोभी गुरु लालची चेला सम...नरक (जेल) में ढेलम ढेला करते हैं...(4)
आप तो वीतरागी निस्पृह सन्त...सूर्यसम प्रकाशी होते हो...
अहेतुक विश्व बन्धु आप हो...'कनक' आप को पूजते है ...2
आचार्य गुरुवर ज्ञानी है...ज्ञान-विज्ञान सिखाते हैं...(5)